[वा]र्षिक अंक 1994

कुरुक्षेत्र

अक्तूबर 1994

छह रुपये

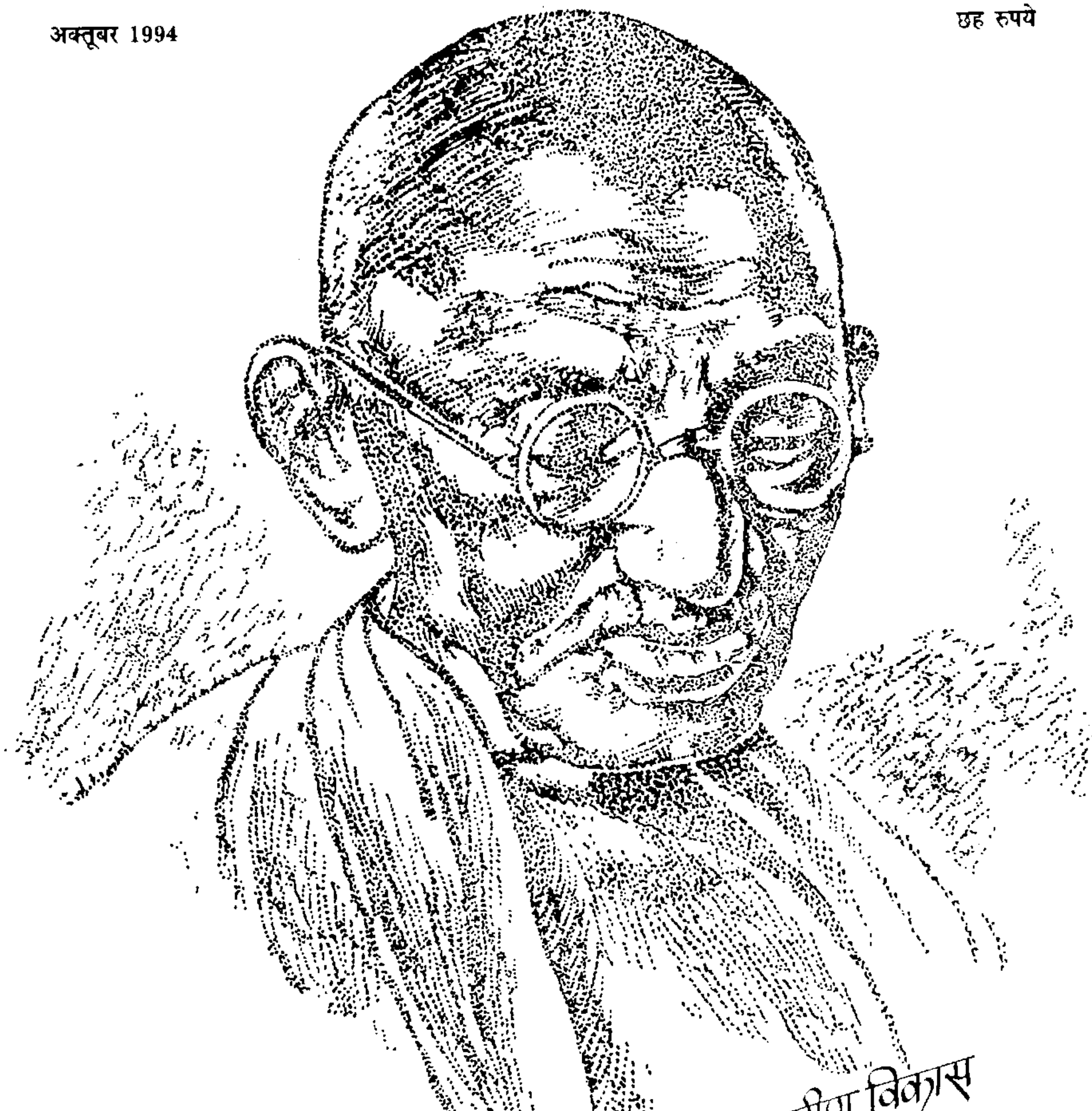

ग्रामीण विकास

बापू के सपनों के कितने करीब ?

आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिये। हर एक गांव में जमहूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा – अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटने के लायक बन जाये। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाये; या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाये। कल्पना यह है कि सब लोग आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे।

–महात्मा गांधी

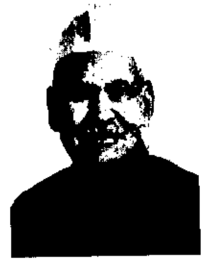

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

इस बार दो अक्तूबर से हम महात्मा गांधी की 125 वीं जयन्ती मना रहे हैं ।

बापू हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के नेतृत्वकर्ता ही नहीं थे, बल्कि वे हमारी स्वतंत्रता की आकांक्षा के प्रतीक भी थे, जिन्होंने अपने देश की दबी हुई आवाज को बुलंद किया ।

उन्होंने हमें सत्य और नैतिकता का मार्ग दिखाया और बताया कि समाज का विकास और अस्तित्व अहिंसा पर आधारित होता है । उनकी सत्याग्रह की भावना दुनिया के कोने-कोने के लोगों को अन्याय और बुराइयों के विरुद्ध उन्हें संघर्ष के लिए उत्साहित करती है ।

बापू भारतीय जन-मानस से गहरे रूप से जुड़े हुए थे । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे समाज की नींव सर्वधर्मसमभाव और मिली-जुली संस्कृति पर आधारित है । वे कहा करते थे, "सभी धर्म सही हैं, और वे सभी मुझे उसी तरह प्रिय हैं, जिस तरह कि मेरा अपना धर्म ।" उनका यह कथन उनके दर्शन का सार है, और इसी के लिए उन्होंने आखिरी में अपनी कुर्बानी दी ।

बापू अपने देश के लोगों से गहरे रूप से जुड़े हुए थे । जन-समूह में गहराई से डूबे रहने के कारण समाज के बारे में उनके पास अपनी एक अनोखी अंतर्दृष्टि थी । उनकी बातें हमें मानवीय जीवन के सभी पक्षों पर काम करने की प्रेरणा देती हैं; चाहे वह समाज सुधार हो, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास और सरकार का संचालन हो ।

महात्मा गांधी का संदेश हमेशा प्रासंगिक रहेगा । बापू की हत्या पर पंडित जी ने कहा था - "उन्होंने हम लोगों को जीने का रास्ता दिखाया । उन्होंने हम लोगों को मरने का रास्ता दिखाया । और यदि हम उनके इस पाठ को नहीं समझ सके, तो बेहतर है कि हम उनकी कोई यादगार न बनाएँ । उनके लिए सबसे अच्छी श्रद्धांजलि यही होगी कि हम पूरे मन से उनके द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलें, और अपनी जिंदगी और मौत पर अपना फर्ज निभाएँ ।" आज के दिन बापू को दी गई यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी ।

(शंकर दयाल शर्मा)

नई दिल्ली
19 सितंबर, 1994

प्रधान मंत्री का संदेश

आपके 6 सितम्बर 1994 के पत्र के लिए प्रधान मंत्री का धन्यवाद। महात्मा गांधी की 125वीं जयंती के अवसर पर 'कुरुक्षेत्र' के वार्षिक अंक के लिए उनकी ओर से शुभ कामनाएं। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यह वार्षिक अंक सरकार की आर्थिक सुधारों की नीति के अंतर्गत ग्रामीण विकास पर बल विषय को लेकर निकाला जा रहा है।

हस्ताक्षर

(पी० वी० आर० के० प्रसाद)

प्रधान मंत्री के सूचना सलाहकार

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 39 अंक 12 आश्विन-कार्तिक 1916, अक्तूबर 1994

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	अनिल दुग्गल
आवरण सज्जा	:	अलका

एक प्रति : तीन रुपये **वार्षिक चंदा : 30 रुपये**
वार्षिक अंक : छह रुपये

इस अंक में

ग्रामीण विकास पर गांधीवादी दृष्टिकोण	वसंत साठे	5
योजनाएं बुनियाद से	डा० विशम्भरनाथ पांडे	10
विकास का गांधी-मार्ग	सिद्धराज ढड्ढा	15
अब तक का विकास : गांधी की नजर में	राममूर्ति	20
सबै भूमि गोपाल की	सुरेश राम भाई	25
बापू की आखिरी वसीयत और ग्रामीण विकास	डा० रामजीसिंह	29
गांधी जी का व्यावहारिक समाजशास्त्र ही आशा की अंतिम किरण	आशारानी व्होरा	33
ग्राम स्वराज–ग्रामीण विकास का आदर्श माडल	प्रो० आर० पी० मिश्र	40
ग्रामीण विकास और गांधी जी	राजीव वोरा	44
हमारी अर्थनीति की दिशा और दशा	यशपाल जैन	47
ग्रामीण विकास - गांधी जी के अनुरूप	प्रो० के. डी. गंगराडे	50
गांधी जी की राह पर हम कितना चले हैं?	डा० गिरीश मिश्र	54
गांधी के सपने और आमूल परिवर्तन का प्रश्न	प्रदीप पंत	59
आजादी के बाद ग्राम-विकास और बापू की सोच	डा० प्रमिला शर्मा	65
ग्रामीण विकास का गांधी जी का सपना	डा० संध्या चौधरी	71
रास्ते से हटे नहीं, भटके हैं	सुभाष 'सत्य'	75
गांधी जी का मार्ग अपनाना जरूरी	रश्मि सुधा पुरी	80
आज गांधी जी के ग्रामीण विकास संबंधी विचारों की उपादेयता	डा० गणेश कुमार पाठक	84

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

सम्पादकीय

इस वर्ष यह वार्षिक अंक हम बापू को उनकी 125वीं जयंती के अवसर पर समर्पित कर रहे हैं। इस बार विषय रखा गया है : "देश के विकास में, विशेष रूप से ग्रामीण विकास में क्या हम गांधी जी के रास्ते से हट तो नहीं गये हैं?"

इस विषय पर जाने-माने अर्थशास्त्रियों, गांधीवादी चिंतकों और विद्वानों से जो लेख प्राप्त हुए उनसे कुछ निष्कर्ष उभर कर आये हैं। इस बात से सब लेखक सहमत हैं कि पिछले 47 वर्षों के दौरान देश में काफी आर्थिक विकास हुआ है। बड़े-बड़े कारखाने खुले हैं। कृषि और औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई है और देश के लोगों की आर्थिक दशा बेहतर हुई है। आज का गरीब पहले के गरीब से कम गरीब है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि आजादी के बाद भारत को उन्नत और औद्योगिक देश बनाने के लिए योजनाबद्ध विकास का रास्ता अपनाया गया जबकि गांधी जी इस बात पर जोर देते थे कि समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति की ओर सबसे पहले ध्यान दिया जाए। वे दरिद्रनारायण पर पड़ने वाले विकास के प्रभाव को उसकी कसौटी मानते थे। बापू ग्रामीण पुनर्निर्माण को देश के विकास की पहली सीढ़ी मानते थे।

दूसरा निष्कर्ष यह सामने आया है कि ग्रामीण विकास के लिये सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। ग्रामीण विकास की परियोजनाओं की सफलता के लिये उनमें लोगों की भागीदारी जरूरी है। पंचायती राज से संबंधित 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 को इस दिशा में सही कदम बताया गया है।

यह सुझाव भी दिया गया है कि अब ग्रामीण विकास में तेजी लाने के लिये उपभोक्ता वस्तुओं के कारखाने गांवों के आसपास लगाए जाएं ताकि ग्रामीण बेरोजगार युवकों को रोजगार मिले और शहरों की तरफ उनका पलायन कम हो। इससे शहरों में भीड़भाड़ कम होगी और वहां गंदगी, बीमारी और प्रदूषण जैसी समस्याओं से निपटने में मदद मिलेगी।

सरकार ग्रामीण विकास की ओर काफी ध्यान दे रही है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास के लिए 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्ह राव ने हाल ही में नौंवी योजना में इस राशि को दुगुना करने की संभावना व्यक्त की। आशा है कि इससे निकट भविष्य में गांवों में समृद्धि आएगी।

ग्रामीण विकास पर गांधीवादी दृष्टिकोण

✍ वसंत साठे*

लेखक ने लेख में बताया है कि गांधी जी बड़े कारखाने लगाने और सत्ता के केन्द्रीकरण का समर्थन क्यों नहीं करते थे। दरअसल वे चाहते थे गांवों में ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार मिले ताकि गांवों से शहरों की ओर पलायन न हो। लेखक के अनुसार हाल ही में पारित 73वें संविधान संशोधन से ग्राम पंचायतों को अधिक अधिकार मिलेंगे, इसलिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण की ओर यह सही कदम है। लेखक कृषि से जुड़ी और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के कारखाने ग्रामीण क्षेत्रों में लगाने का पक्षधर है ताकि गांवों का संतुलित विकास हो और शहरों में भीड़भाड़ कम हो।

स्वतंत्रता के बाद के 45 वर्षों के दौरान भारत की आम जनता ने विश्व को दिखा दिया है कि यद्यपि उनमें से अधिकांश लोग अनपढ़ हैं लेकिन उन्हें नैतिक और सामाजिक आदर्शों के मूल सिद्धांतों का ज्ञान है। उन्होंने ऋषि मुनियों और साधु सन्तों के हजारों वर्षों से मिले उपदेशों को आत्मसात किया है। इसी के साथ इन लोगों को ग्रामीण स्वशासन की एक व्यवस्था, पंचायती राज अथवा लोगों द्वारा निर्वाचित पंचों (बड़े बूढ़ों) का शासन भी विरासत में मिला है। स्थानीय स्वशासन अथवा प्रत्यक्ष लोकतंत्र की इन इकाइयों ने भारतीय सभ्यता को स्थिरता प्रदान की है और उसकी रक्षा की इन इकाइयों का आधार नैतिकता और सर्वमान्य सामाजिक व्यवस्था थी। इसी कारण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भी सभी राजनीतिक दलों के नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था कायम की जाएगी यानी भारत का शासन जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में होगा। इसी तरह, इस स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, जो आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निबाह रही थी, योजनाबद्ध आर्थिक विकास और आधुनिक उद्योगों तथा प्रौद्योगिकी के जरिए कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास पर विचार किया और उसे स्वीकार किया।

मैं यहां संक्षेप में आर्थिक क्षेत्र में गांधी जी के विचारों पर चर्चा करना चाहूंगा। गांधी जी न केवल ऐसे नेता थे, जिन्होंने अहिंसक आन्दोलन के जरिए देश को स्वतंत्रता दिलाई, बल्कि ऐसे व्यक्ति थे जिनकी जीवन के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि थी। अन्य महान पुरुषों की तरह, वह मनुष्य और जीवन पर उसके समग्र रूप में विचार करते थे। उन्होंने वास्तव में जीवन के सभी पहलुओं पर अपने विचार लिपिबद्ध किए और प्रकट किए। उनका तत्वज्ञान सृष्टि के रचयिता ईश्वर के अस्तित्व में गहन आस्था पर आधारित था। वह मनुष्य सहित ईश्वर की सभी रचनाओं में सामंजस्य करने का प्रयत्न करते थे। इसलिए उन्होंने विभिन्न संघर्षरत हितों के बीच, चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक क्षेत्र में थे, शान्तिपूर्ण समन्वय का प्रयत्न किया। आर्थिक क्षेत्र में, चाहे 1920 के दशक में मालिकों के विरुद्ध कपड़ा मजदूरों का आन्दोलन था अथवा भूमि सुधारों और किसानों के अधिकारों की मांगों के समर्थन में आन्दोलन, जिसका नेतृत्व उन्होंने चम्पारण में किया था, गांधी जी ने सत्याग्रह अथवा सत्य के लिए आग्रह के अहिंसक दृष्टिकोण पर जोर दिया। उन्होंने विपक्षियों पर हिंसक तरीकों से दबाव डालने के प्रयत्नों का सदैव विरोध किया। उनका कहना था कि जमीदारों को अपने को काश्तकारों, भूमिहीनों और शेष समाज के लोगों का ट्रस्टी समझना चाहिए और उनके प्रति उनका आचरण ऐसा ही होना चाहिए। उन्होंने विकेन्द्रीकृत और कृषि आधारित कुटीर और छोटे उद्योग क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था विकसित करने के लिए आर्थिक विशेषज्ञों से सहायता मांगी। वह आशा करते थे कि इस तरह की सामाजिक-आर्थिक अर्थ व्यवस्था का विकास होने पर भारत की अधिकांश जनता जो गांवों में रहती है अपनी अन्न, कपड़े और मकान जैसी दैनिक बुनियादी आवश्यकताओं के मामले में आत्म-निर्भर हो जाएगी। वे आधुनिक औद्योगिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके बड़े कल-कारखानों की स्थापना और केन्द्रीकृत उत्पादन के विरुद्ध थे। उनकी राय थी कि इससे विकेन्द्रीकृत क्षेत्र में काम कर रहे अनेक लोगों जैसे कि कपड़ा क्षेत्र में लगे लोगों को रोजगार से हाथ धोना पड़ेगा।

मैं यहां पर यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि गांधी जी आधुनिक संचार साधनों जैसे कि रेलों, जहाजों, मोटर गाड़ियों और विमानों के विरुद्ध नहीं थे। वे चिकित्सा, शल्य चिकित्सा और अनुसंधान

* भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री। सम्प्रति : अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली।

एवं विकास के अन्य क्षेत्रों में आधुनिक वैज्ञानिक गतिविधियों के विरुद्ध भी नहीं थे। वह अक्सर रेलगाड़ी से यात्रा करते थे और उन्होंने अपेनडिक्स (आंत के उपांग) का आपरेशन करवाया था। गांधी जी स्वयं सुशिक्षित आधुनिक बैरिस्टर थे। वह कट्टरपंथी नहीं थे। वह जानते थे कि इस्पात, रेलवे इंजन, रेल के डिब्बों, मोटरगाड़ियों, बसों, बड़े जहाजों, विमानों और इसी तरह बड़ी मशीनों आदि का निर्माण केवल केन्द्रीकृत उत्पादन के तरीकों से किया जा सकता है। लेकिन इन मामलों में भी वह इस बात पर जोर देते थे कि सहायक हिस्से पुर्जों आदि का उत्पादन विकेन्द्रीकृत आधार पर किया जाए जैसा कि आज जापान जैसे देशों में किया जा रहा है। इसलिए गांधीवादी अर्थ व्यवस्था की सही व्याख्या की जाए तो यह आर्थिक उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करती है। इसे आर्थिक क्षेत्र का मध्य मार्ग भी कहा जा सकता है। अगर सही संदर्भ में, परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो विकेन्द्रीकृत उत्पादन और वितरण की गांधीवादी व्यवस्था स्वामित्व के केन्द्रीकरण, उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण और परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण पर रोक लगाती है। सभी जानते हैं कि कुछ थोड़े लोगों के हाथों में इस अतिरिक्त पूंजी के संग्रह और नियंत्रण के कारण इन थोड़े लोगों द्वारा अधिक लोगों का राजनीतिक और आर्थिक शोषण होता है।

इस प्रकार यह किसी एक व्यक्ति का दोष नहीं, बल्कि व्यवस्था का दोष है, जो पूर्ववर्ती सामन्तवादी प्रथा की तरह कुछ ही लोगों के हाथों में अथवा गुटों के हाथों में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता केन्द्रीकृत कर देती है। इन लोगों अथवा गुटों को कम्पनी कार्टेल बहुराष्ट्रीय एजेंसी, निगम आदि अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इस तरह अधिकार और सत्ता की वह अनैतिक दौड़ शुरू हो जाती है, जो इस बात की चिन्ता नहीं करती कि इसका देश के भीतर और बाहर लाखों लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

भारत जैसे देश में जहां आज भी जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि और कृषि उद्योगों के सहारे अपनी गुजर-बसर करता है, योजनाबद्ध विकास की सम्पूर्ण संकल्पना का उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में फैली जनसंख्या के लिए विकास के अवसर बढ़ाना होना चाहिए। वास्तव में इतने सारे लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का इसके अलावा और कोई आसान तरीका नहीं है।

भारत जैसे देश में जहां आज भी जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि और कृषि उद्योगों के सहारे अपनी गुजर-बसर करता है, योजनाबद्ध विकास की सम्पूर्ण संकल्पना का उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में फैली जनसंख्या के लिए विकास के अवसर बढ़ाना होना चाहिए। वास्तव में इतने सारे लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का इसके अलावा और कोई आसान तरीका नहीं है। इस तरह के योजनाबद्ध विकास में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में ही की जाए और उन्हें वहीं फलने-फूलने के अवसर प्रदान किए जाएं। इससे निरंतर बढ़ती ग्रामीण युवकों की जनसंख्या को अपने रहने के स्थान के आसपास ही बड़े पैमाने पर रोजगार मिल जाएगा। निस्सन्देह यह स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की परम्परागत संकल्पना के अनुसार होगा। जब तक उपभोक्ता माल के विकेन्द्रीकृत उत्पादन द्वारा यह नहीं किया जाता कि ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की क्रय शक्ति बढ़े और वहां बाजारों का विकास हो तब तक ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या का उग्र रूप धारण करने का गंभीर खतरा है। उस हालत में लोग बड़े पैमाने पर ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों को पलायन शुरू कर सकते हैं। भीड़भाड़ भरे नगरों में इन लोगों के आने से न केवल आर्थिक समस्याएं उत्पन्न होंगी बल्कि सफाई और नैतिक मूल्यों में शिथिलता संबंधी समस्याएं भी पैदा होंगी। इससे आर्थिक और राजनीतिक तनाव भी बढ़ेंगे। भीड़-भाड़ से भरे इन नगरों में होने वाला पर्यावरण प्रदूषण पास-पड़ोस की सफाई और लोगों के स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक है।

इस सन्दर्भ में नरसिम्ह राव सरकार ने सुधार के जो उपाय किए उनमें सबसे दूरगामी और उल्लेखनीय है 73वां संविधान (संशोधन) अधिनियम 1992, जो ग्रामीण स्तर तक राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। आशा है कि इस दीर्घ प्रतीक्षित उपाय से प्रत्येक ग्राम में स्वराज लाने का गांधी जी का स्वप्न सत्य होगा।

इस सन्दर्भ में नरसिम्ह राव सरकार ने सुधार के जो उपाय किए उनमें सबसे दूरगामी और उल्लेखनीय है 73वां संविधान (संशोधन) अधिनियम 1992, जो ग्रामीण स्तर तक राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। आशा है कि इस दीर्घ प्रतीक्षित उपाय से प्रत्येक ग्राम में स्वराज लाने का गांधी जी का स्वप्न सत्य होगा। प्रत्येक गांव को एक गणतंत्र अथवा पंचायत माना जाएगा और उसे अपना भाग्य निर्धारित करने और इच्छानुसार विकास करने का पूरा अधिकार होगा।

इस महत्वपूर्ण कानून का उद्देश्य सर्वत्र सन्तुलित आर्थिक

विकास सुनिश्चित करना और ग्राम स्तर पर जनता को राजनीतिक और वित्तीय सत्ता सौंपना है। गांधी जी और विनोबा भावे ने ऐसे ही ग्राम स्वराज की कल्पना की थी। भारतीय ग्राम के आर्थिक ढांचे में सद्भावपूर्ण आत्म-निर्भरता की व्यवस्था की गई थी। परम्परागत रूप से किसी समुदाय को गांव का स्वरूप तभी मिलता था जब स्थिर ग्रामीण जीवन के लिए आवश्यक सभी या अधिकांश सुविधाएं ग्राम में ही उपलब्ध होती थीं। औद्योगिक समाज के विकसित होने के साथ गांव का जीवन और उसकी स्वावलम्बी अर्थ व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग, जो सदियों से अपने परम्परागत पेशों पर निर्भर करता था, अपने जीविका अर्जन के साधनों से वंचित हो गया। नये समाज ने उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक जीविका अर्जन के साधन उपलब्ध नहीं कराए। ग्रामीणों को या तो भूमिहीन बन कर गांवों में मजदूरी करनी पड़ी अथवा उन्हें काम की तलाश में अनिच्छा से नगरों को जाना पड़ा।

कृषि पर आधारित उद्योगों और उपभोक्ता सामान को तैयार करने से ही हमारी विशाल जनसंख्या को समुचित रोजगार मिल सकता है और उनका संतुलित विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि बाजार अर्थ व्यवस्था तभी न्यायपूर्ण ढंग से कार्य कर सकती है, जब समाज के सभी लोग उस बाजार में भाग लेने की स्थिति में हों। जब बहुसंख्यक लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं होती, तब बाजार अर्थ व्यवस्था का अर्थ होता है अभिजात वर्ग या उपभोक्ता संस्कृति के थोड़े से पृष्ठ पोषकों के लाभ के लिए बहुसंख्यक जनता का शोषण। इसलिए, आर्थिक सुधार भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए।

निश्चय ही, पंचायती राज पर संविधान संशोधन अधिनियम यह सुनिश्चित करेगा कि अब पंचायती राज संस्थाएं अफसरशाही के मनमाने आदेशों को लागू करने का साधन मात्र न रहें। अब गांव के लोग पंचायतों की नई तस्वीर का निर्धारण करेंगे। यह अधिनियम ग्रामीण भारत में उत्तरदायी और अनुकूल प्रशासन की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा— दूसरे शब्दों में सच्चे पंचायती राज की स्थापना— जनता को प्रशासकीय और वित्तीय दोनों अधिकार प्रदान करके की जाएगी, सत्ता का स्रोत अब केवल उतनी दूर होगा जितना पंचायत घर, अब सत्ता का केन्द्र सुदूर प्रान्त या देश की राजधानी नहीं होगा। और इस प्रकार वोट देने वाले लोगों को ही अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को मूर्त रूप प्रदान करने का अधिकार होगा। इस तरह सत्ता के दलालों की भूमिका समाप्त हो जाएगी।

यहां पर मैं आपको चौकस करने के लिए कुछ कहना चाहूंगा। केवल एक निर्वाचित संस्था की व्यवस्था करने से ही, चाहे वह संस्था कितनी ही प्रभावशाली और उसका आधार कितना ही व्यापक क्यों न हो, गांवों में रहने वाले लोगों की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। यह बात याद रखी जानी चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद देश में जो पंचायतराज व्यवस्था शुरू की गई, वह सफल नहीं हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय विकसित हो रहे औद्योगिक समाज में केन्द्रीकरण पर जोर दिया जा रहा था, अतः वह अप्रासंगिक हो गई थी। केन्द्रीकरण की यह भावना पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों में समान रूप से है। दोनों बड़ी मशीनों से लाभप्रद तरीके से माल तैयार करने में विश्वास करते हैं और बड़ी संख्या में लोगों को बेकार बनाते हैं। अतः यह जरूरी है कि राजनीतिक दृष्टि से विकेन्द्रीकृत पंचायती राज आर्थिक दृष्टि से 'ग्राम स्वराज' बने।

पंचायती-राज का विचार मूलतः इस सिद्धान्त पर आधारित है कि लोगों को अपने मामलों का प्रबंध करने की जिम्मेदारी सौंपी जाए। क्योंकि यह लोगों को ही मालूम होता है कि उनकी समस्याएं क्या हैं, उनकी प्राथमिकताएं क्या हैं और कैसे उनकी आवश्यकताओं को सर्वोत्तम तरीके से पूरा किया जा सकता है। वे लोग इस बात को भली भांति जानते हैं कि उनकी दुख-तकलीफों की एक मात्र संजीवनी रोजगार है। हमें नीति संबंधी यह निर्णय करना पड़ेगा कि सभी उपभोक्ता सामान जो विकेन्द्रीकृत और श्रम-बहुल कुटीर उद्योग क्षेत्र में बनाया जा सकता है वहीं बनाया

हमें नीति संबंधी यह निर्णय करना पड़ेगा कि सभी उपभोक्ता सामान जो विकेन्द्रीकृत और श्रम-बहुल कुटीर उद्योग क्षेत्र में बनाया जा सकता है वहीं बनाया जाए। हमें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह निर्णय पूरी तरह से लागू किया जाए। इसके लिए हमें बड़े कारखानों में इस तरह की वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाना होगा। और ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि इन वस्तुओं का उत्पादन देश भर में अलग-अलग स्थानों में किया जाए।

जाए। हमें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह निर्णय पूरी तरह से लागू किया जाए। इसके लिए हमें बड़े कारखानों में इस तरह की वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाना होगा। इस तरह की वस्तुओं के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण करना होगा और ऐसी

व्यवस्था करनी होगी कि इन वस्तुओं का उत्पादन देश भर में अलग-अलग स्थानों में किया जाए। आधुनिक औद्योगिकी और वैज्ञानिक विकास के कारण अब यह संभव हो गया है कि गांवों में या जिले के भीतर ऐसे छोटे-छोटे कारखानों की स्थापना की जाए जहां उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की लगभग हर वस्तु का उत्पादन किया जाए। यह सोचना सही नहीं है कि विकेन्द्रीकृत तरीके से सामान का उत्पादन नहीं किया जा सकता। यह संभव है कि मोटर से चलने वाली मशीनों या औजारों से विकेन्द्रीकृत आधार पर इन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए। यह ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न उद्यमों के प्रचलन की हमारी राष्ट्रीय परम्परा के अनुरूप होगा। इसमें अन्तर केवल यह होगा कि उद्यमों का यह आधुनिक वितरण जाति व्यवस्था पर आधारित नहीं होगा।

यह विचार तभी सफल हो सकता है अगर हम बहुत बड़े पैमाने और उचित मूल्यों पर बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करा सकें। इस तरह की बुनियादी सुविधाओं में शामिल हैं: विजली, बुनियादी धातु जैसे कि इस्पात और अल्युमिनियम, प्लास्टिक, कृत्रिम तागा और रेशा, उर्वरक, सड़कें और संचार के अन्य साधन, भंडारण और बिक्री आदि। बुनियादी सुविधा के इन निवेशों का उत्पादन केवल बड़े कारखानों में किया जा सकता है, जिन पर पूंजी भी अधिक लगती है। लेकिन यहां भी आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण बिजली, इस्पात, कोयले, आदि का उत्पादन मझौले और लघु उद्योग क्षेत्र में किया जा सकता है। हमें निहित स्वार्थों के इस दबाव का विरोध करना चाहिए कि मझौले और लघु उद्योग क्षेत्र में इन वस्तुओं का उत्पादन नहीं किया जाए। अन्तिम उद्देश्य यह होना चाहिए इन निविष्टियों का न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन हो। इस तरह तैयार निविष्टियों के दाम अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दृष्टि से उचित और प्रतियोगी होने चाहिए। मैं सोचता हूं कि ग्रामीण विकास के लिए सबसे बुनियादी और आवश्यक बुनियादी सुविधा बिजली है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस क्षेत्र में हुई जोरदार प्रगति के बावजूद हजारों गांव अभी ऐसे हैं, जहां विकास और समृद्धि की यह बुनियादी जरूरत अभी नहीं पहुंची है। मैं समझता हूं कि समय आ गया है जब हम सौर और वायु ऊर्जा व्यवस्था में बड़ी मात्रा में पूंजी लगाने का साहसपूर्ण फैसला करें। इससे देश के दूर दराज और दुर्गम गांवों को बिजली मिल सकेगी और कम से कम समय के भीतर हमारे ग्रामीण, विकास के लिए पर्याप्त बिजली प्राप्त कर सकेंगे।

हम जिस तरह की स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की स्थापना पर विचार कर रहे हैं, उसके लिए उपर्युक्त बुनियादी निविष्टियों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना बहुत जरूरी है। जैसा कि पहले कहा गया है, इसका उद्देश्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उन वस्तुओं को तैयार करने की व्यवस्था की जाए जिनकी वहां मांग है। इससे वहां रोजगार के अवसर पैदा होंगे और मांग में वृद्धि होगी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की क्रय शक्ति बढ़ेगी और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली विशाल जनता के लिए मंडी का विकास होगा। जब मांग और सप्लाई की प्रक्रिया साथ-साथ चलेगी

मैं सोचता हूं कि ग्रामीण विकास के लिए सबसे बुनियादी और आवश्यक बुनियादी सुविधा बिजली है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस क्षेत्र में हुई जोरदार प्रगति के बावजूद हजारों गांव अभी ऐसे हैं, जहां विकास और समृद्धि की यह बुनियादी जरूरत अभी नहीं पहुंची है। मैं समझता हूं कि समय आ गया है जब हम सौर और वायु ऊर्जा व्यवस्था में बड़ी मात्रा में पूंजी लगाने का साहसपूर्ण फैसला करें। इससे देश के दूर दराज और दुर्गम गांवों को बिजली मिल सकेगी और कम से कम समय के भीतर हमारे ग्रामीण, विकास के लिए पर्याप्त बिजली प्राप्त कर सकेंगे।

और ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित होगी तभी समग्र जनता का विकेन्द्रीकृत और संतुलित विकास संभव होगा। तभी ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक विकेन्द्रीकरण यथार्थ रूप लेगा। इससे हमारे ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में क्रांतिकारी परिवर्तन होगा। तथापि, इसी के साथ हमें अपने शहरों की भीड़भाड़ कम करनी होगी। केवल इस तरह के दूरगामी परिवर्तन हमारे राष्ट्र का संतुलित विकास सुनिश्चित करेंगे और अत्यधिक विकृत और शोषणवादी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का विकास रोकेंगे, जो आज न केवल हमारे आर्थिक बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन को खतरे में डाल रहे हैं। इससे एक तरह से हमारे देश की एकता और अखंडता को खतरा उत्पन्न हो रहा है।

इस तरह की विकेन्द्रीकृत और संतुलित अर्थ व्यवस्था कायम करने के लिए यह जरूरी है कि बुनियादी सुविधाओं की निविष्टियों की लागत और दाम इस तरह निर्धारित किए जाएं कि ग्रामीण क्षेत्रों का औसत आदमी उन्हें स्वयं खरीद सके या उसे बिना स्फीतिकारी दबाव किए इन्हें खरीदने के लिए ऋण सुविधा मिले। अंतिम विश्लेषण में मुद्रास्फीति का अर्थ है उपलब्ध वस्तुओं की तुलना में अधिक धन की आपूर्ति और धन की प्रचुरता, विशेष रूप से अगर वह थोड़े से हाथों में हो, बहुत खतरनाक लक्षण है। यह सुनिश्चित करना होगा कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में माल और सेवाओं के उत्पादकों को पर्याप्त पारिश्रमिक और लाभ दिया जाए। तभी उनकी क्रय शक्ति में वृद्धि होगी और वह ग्रामीण बाजार के लाभप्रद सदस्य बन सकेंगे। केवल इस तरह की स्थिति में उदार

अर्थ व्यवस्था के ढांचे के भीतर मांग और आपूर्ति का नियम मुक्त रूप से कार्य करेगा।

उन गतिशील परिवर्तनों को जो निचले स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था की शुरुआत के साथ, ग्रामीण और शहरी इलाकों में करने प्रस्ताव है, हमें एकदम नई आर्थिक नीति के बारे में सोचना होगा जो गांवों के स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को आवश्यक वित्तीय साधन उपलब्ध कराए। क्योंकि, जनता के हाथों में प्रतिनिधिक सत्ता निहित होने और जनता की आकांक्षाओं में वृद्धि होने के साथ अगर उन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए आर्थिक साधन प्रदान नहीं किए गए तो जनता में निराशा की भावना फैलेगी जो कालान्तर में अत्यधिक विस्फोटक रूप धारण कर सकती है।

मैं इस ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि देश के बहुत बड़े भाग में जहां कृषि विकास में ठहराव आ गया है अथवा जहां कृषि विकास की गति बहुत ही कम है वहां कृषि क्षेत्र में ऊंची दर और अधिक स्थिर दर प्राप्त करने की काफी गुंजाइश है। इससे रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि होगी। इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ाने की रणनीति का ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और बेरोजगारी समाप्त करने की समस्या पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। उन क्षेत्रों में, जहां तुलनात्मक रूप से कृषि का अच्छा विकास हुआ है, अगर अधिक मूल्य वाली गैर खाद्य फसलों जैसे कि सब्जियों, फलों और फूलों का उत्पादन शुरू किया जाए और कृषि आधारित उद्योगों का विकास किया जाए तो रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हो सकती है।

देश के कुछ भागों में ग्रामीण अर्थ व्यवस्था नया रूप ले रही है। कृषि के अलावा अन्य गतिविधियां शुरू की जा रही हैं। इस प्रवृत्ति को उचित नीतियां बनाकर बढ़ावा देने की जरूरत है। कृषि से जुड़ी गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। स्थानीय कुशलता का इस्तेमाल करने वाले और स्थानीय बाजार की मांग पूरी करने वाले उद्यमों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा कि इन गतिविधियों में से अधिकांश में बेहतर प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाए यद्यपि पिछड़ी और घिसी पिटी प्रौद्योगिकी के कारण तैयार वस्तुओं के लिए बाजार भी अभी उपलब्ध है। बुनियादी सुविधाओं जैसे कि ग्रामीण सड़कों और स्कूलों के निर्माण और ग्रामीण क्षेत्रों में एक विशाल आवास कार्यक्रम शुरू करने को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस तरह की योजनाओं में कुशल और अकुशल श्रमिकों को, विशेष रूप से गैर फसली दिनों में दैनिक मजदूरी पर रोजगार मिलता है।

बुनियादी सुविधाओं जैसे कि ग्रामीण सड़कों और स्कूलों के निर्माण और ग्रामीण क्षेत्रों में एक विशाल आवास कार्यक्रम शुरू करने को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस तरह की योजनाओं में कुशल और अकुशल श्रमिकों को विशेष रूप से गैर फसली दिनों में दैनिक मजदूरी पर रोजगार मिलता है।

अस्सी के दशक में, विशेष रूप से नरसिम्ह राव सरकार के सत्ता संभालने के बाद, औद्योगिक मोर्चे पर प्रमुख परिवर्तन हुए हैं। भारत सरकार ने अनेक मामलों में पहल की है। इसके परिणामस्वरूप अनावश्यक नियंत्रणों को समाप्त कर दिया गया है और उद्योगों की स्थापना और अबाध एवं मुक्त विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ है। इससे उत्पादकता में वृद्धि, लागत में कमी और गुणवत्ता में सुधार हुआ है। पिछले तीन वर्षों के दौरान आर्थिक सुधार के कार्यक्रमों ने गति पकड़ ली है। नियंत्रण समाप्त करने, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के शेयर जनता को बेचने और नौकरशाही की जकड़ को ढीला करके खुली, विदेशी पूंजी निवेश को आकृष्ट करने वाली, निर्यातोन्मुख और विश्व अर्थ व्यवस्था के साथ मेल रखने वाली अर्थ व्यवस्था ने परिणाम दिखाने शुरू कर दिए हैं। विदेशी सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं, विश्वभर में व्यापार और निवेश प्रतिष्ठानों और विद्वानों ने भारत के आर्थिक सुधारों का स्वागत किया है। विभिन्न राजनीतिक दलों, व्यापारिक और संबंधित हितों के बीच आम सहमति होने के बाद इन सुधारों के रोके जाने की कोई संभावना नहीं है।

उपर्युक्त घटनाएं हमारे ग्रामीण क्षेत्र के लिए आशा की उज्ज्वल किरणों का पूर्वाभास हैं। भारत तभी महाशक्ति बनेगा जब उसकी ग्रामीण जनता आर्थिक समृद्धि और आत्मनिर्भरता प्राप्त करेगी। यह वक्त आ गया है जब हम ग्रामों में रहने वाले अपने भाइयों की ओर ध्यान दें और उनकी समृद्धि के लिए कार्य करें।

योजनाएं बुनियाद से

✍ डा० विशम्भरनाथ पांडे
उपाध्यक्ष, गांधी स्मृति और दर्शनसमिति, नई दिल्ली

इस लेख में लेखक ने बताया है कि गांधी जी देश के विकास के लिए किस तरह की योजनाएं चाहते थे। गांधी जी का विचार था कि विकास योजनाओं का केन्द्र-बिंदु गांव हो और उनका उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना हो। गांधी जी ने इच्छा व्यक्त की थी कि किसान करों का भुगतान नकदी के स्थान पर जिन्सों में करें। वे शहरों द्वारा गांवों के शोषण के खिलाफ थे। लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि यद्यपि गांधी जी प्रखर राष्ट्रवादी थे किंतु विश्व शांति के लिए उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता में विलीन हो जाती थी।

हमारे देशवासियों में यह एक बड़ी घातक भावना समाई हुई है कि क्या हुआ जो हम गिरी हुई हालत में हैं हमारा अतीत महान था और हमारा भविष्य भी महान होगा। वर्तमान अवनति की पीड़ा को हम अतीत या भविष्य की सुखद कल्पना में भूल जाना चाहते हैं। अल्डुअस हक्सले के अनुसार–"उज्ज्वल और महान भविष्य की कल्पना वर्तमान की प्रगति की सबसे बड़ी बाधा है।"[1] गांधी जी को ऐसी योजनाओं के प्रति स्वाभाविक अविश्वास था जिनका सम्बन्ध मुख्यतः भावी प्रगति से हो। वे आज मिलने वाली मक्खन रोटी की तराजू पर कल मिलने वाले जैम और मुरब्बे को नहीं तोलते थे। ऊपर से लादी हुई शानदार योजनाओं में सदा एक खतरा मौजूद रहता है कि उन योजनाओं के फलप्रद बनने तक भाग्यशाली वर्ग को जीवन की जो सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं वे प्राप्त होती रहें। योजना की आड़ में इस तरह के स्थायी वर्ग-हित की रक्षा को गांधी जी उचित नहीं समझते थे, न वे इसको ही उचित समझते थे कि सुविधा-प्राप्त वर्ग के दायरे को विस्तृत करके इसमें और भागीदारों को शामिल कर लिया जाए। इस तरह तो यह वर्ग-हित मिटने के बजाय और दृढ़ हो जाएंगे।

गांधी जी चाहते थे कि सुविधाएं-प्राप्त वर्ग न केवल सर्वहारावर्ग के साथ अपनी समस्त सुख-सुविधाओं का बंटवारा करे वरन् सर्वहारावर्ग के उन अभावों में भी हिस्सा बंटाये जब तक वे अभाव दूर नहीं होते। गांधी जी के अनुसार देश के उच्च वर्ग को ऐसी किसी भी सुख-सुविधा का उपभोग नहीं करना चाहिए जो समस्त देशवासियों को प्राप्त नहीं है। योजना बनाने वालों का यह कथन, कि देश के सर्वहारावर्ग के अभाव प्रगति के मार्ग पर बाधक बनकर नहीं खड़े हो सकते; ईश्वर की दया से अभाव कभी-न-कभी तो दूर होंगे ही – गांधी जी को संतुष्ट नहीं करता था। उनका यह निश्चित मत था कि जब ऊपर के लोग उन बुनियादी सुविधाओं का भी परित्याग करेंगे जो 95 प्रतिशत लोगों को प्राप्त नहीं हैं तब योजना बनाने वालों और उसे कार्यान्वित करने वालों में एक बेचैनी पैदा होगी और वे चेष्टा करेंगे कि बुनियादी अभावों की पूर्ति शीघ्र से शीघ्र हो।

गांधी जी इस बात पर जोर देते थे कि जनता की जो बुनियादी आवश्यकताएं हैं और समाज के सबसे गरीब वर्ग की जिन बुनियादी आवश्यकताओं की अब तक हमने अवहेलना की है, हमारी योजना पहले उनकी पूर्ति करेगी। जब तक उनकी पूर्ति न हो जाए तब तक बड़ी-बड़ी भारी भरकम योजनाएं प्रतीक्षा कर सकती हैं। जनता की बुनियादी आवश्यकताओं की जब पूर्ति हो जाए और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो तब जनता की राय और इच्छा के अनुसार बड़ी योजनाएं हाथ में ली जाएं। जनता को हर कदम पर यह मालूम होता रहे कि अब सरकार किस योजना की पूर्ति में लगी है। इस तरह जनता की इच्छा और सहयोग से जो योजनाएं कार्यान्वित की जाएंगी उनका आधार जनता की शक्ति, सामर्थ्य और बल होगा। ऐसी योजनाओं की प्रगति से जनता की समृद्धि निरन्तर बढ़ती रहेगी। ऐसी हर योजना पर जनता की चारित्रिक छाप होगी। अपनी उन्नति की ऐसी योजनाओं में भाग लेने से जनता में समझ और शक्ति बढ़ेगी। कमजोर से कमजोर व्यक्ति को उससे प्रोत्साहन मिलेगा। प्रगति की वेदी पर दुर्बल और दीन-हीन नागरिकों की बलि नहीं चढ़ेगी। आर्थिक प्रगति का यह अर्थ नहीं है कि समाज के दीन-हीन नागरिक योजनाओं की प्रगति के नाम पर निरन्तर कष्ट सहते रहें, और आत्म-त्याग करते रहें, इस भावी आशा के सहारे कि आज के कष्ट और त्याग के बदले कल आराम और सुख-चैन मिलेगा। पता नहीं

1. लिबर्टी एण्ड पीस, अल्डुअस हक्सले

वह सुखद कल आएगा भी या नहीं और तब तक शासक वर्ग और उसकी निरन्तर बढ़ती हुई नौकरशाही योजनाओं के फलों का बेफिक्री से मजा चखते रहें।

गांधी जी सर डैनिअल हैमिल्टन के इस सिद्धान्त से सहमत थे कि "बहुसंख्यक मनुष्यों के बीच पैसों की कमी का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उनका धन तो उनका श्रम है।" डैनिअल हैमिल्टन के अनुसार सरकारी पावना को श्रम से चुकाने में जितना लाभ राज्य को है उतना ही समाज को है। "बहुधा यह बात पाई जायेगी कि श्रम के रूप में पावने की अदायगी से राज्य को उससे कहीं अधिक लाभ होगा जो उसे मुद्रा के रूप में अदायगी से होगा। श्रम के रूप में पावना चुकता करने से राष्ट्र में एक नई जवानी का उभार आता है। जहां नागरिक समाज की सेवा के लिये स्वयं श्रम करने के लिए तत्पर हों वहां मुद्रा के माध्यम से चुकता-पावना निरर्थक हो जाता है। कर वसूल करने और हिसाब-किताब रखने के परिश्रम से राज्य बच जाता है और इस श्रमदान के परिणाम भी अच्छे होते हैं।"

गांधी जी इसे देश के आर्थिक-जीवन को ग्राम-स्वावलम्बन की संज्ञा देते थे। यदि जनता श्रम के रूप में या जिन्स के रूप में टैक्सों का भुगतान करती है तो किसानों के गाढ़े परिश्रम से उपार्जित पैदावार से प्राप्त जिन्स के रूप में इस टैक्स को कोई हड़प नहीं सकता और अधिकांश में यह उन्हीं के लाभ के लिये खर्च किया जाएगा जिनसे उगाहा गया है। इसका अधिकांश भाग ग्राम में ही रहेगा और ग्रामवासी इससे श्रम के भुगतान के रूप में धन का काम ले सकते हैं। इस तरह ग्राम की उन्नति की योजनाएं बिना बाहरी आर्थिक सहायता की प्रतीक्षा किए ग्राम में ही पूरी हो सकती हैं।[2]

गांधी जी का विश्वास था कि इस श्रम और जिन्स के रूप में आदान-प्रदान का परिणाम यह होगा कि जहां तक गांव की अपनी आवश्यकताओं का प्रश्न है उनकी पूर्ति के रास्ते में अस्थिर मुद्रा नीति, मुद्रा अवमूल्यन या मुद्रा-आस्फालन का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। गांवों का आर्थिक जीवन संगठित और सुरक्षित रहेगा। यही प्रबन्ध गांवों में सच्चे लोकतंत्र की आधार-शिला बनेगा।[3]

हमारे गांव उस समय निर्धन बन गए "जब शहर विदेशी वस्तुओं के विक्रय-केन्द्र बन गये और शहर वालों ने सस्ती और भद्दी वस्तुएं बेचकर गांव वालों का शोषण किया।

गांधी जी की धारणा थी कि पूंजी की शक्ति पर आधारित जितने स्थायी स्वार्थ वाले सरमायादार हैं उन्होंने कैसे अपना सरमाया हासिल किया इसकी जांच होनी चाहिए। लन्दन की सन् 1931 की दूसरी गोलमेज परिषद के समय उन्होंने यह भी चेतावनी दी थी कि ऐसे स्थायी स्वत्व वाले सरमायों की जांच होगी और यदि यह पाया गया कि उन्हें अन्यायपूर्ण तरीके से हासिल किया गया है तो उन्हें जब्त किया जाएगा।[4]

गांधी जी की अर्थ-नीति में ग्राम की इकाई का प्रमुख स्थान था। गांधी जी को यह देखकर पीड़ा होती थी कि आर्थिक दृष्टि से शहर गांव के ऊपर हावी हो रहे हैं। वे कहते थे "वास्तविक भारत शहरों में नहीं सात लाख गांवों में रहता है लेकिन शहर के रहने वाले यह समझते हैं कि शहरों की सेवा के लिए ही गांवों को बनाया गया है।"[5] गांधी जी दुःख के साथ कहते थे "शहरों ने बेरहमी के साथ गांवों का शोषण किया है।"[6] हमारे गांव उस समय निर्धन बन गए "जब शहर विदेशी वस्तुओं के विक्रय-केन्द्र बन गए और शहर वालों ने सस्ती और भद्दी वस्तुएं बेचकर गांव वालों का शोषण किया।"[7]

शहरी लोग गांव वालों को अनाड़ी और अनपढ़ समझकर हिकारत से देखते हैं। ऐसे शहरवालों को गांधी जी चुनौती देते हुए कहते हैं–"जाओ, गांवों में जाकर रहो, गांव वालों को जो खाना नसीब होता है उसे खाकर पेट भरने का प्रयत्न करो। महीने भर के बाद तुम देखोगे कि तुम निर्जीव हो रहे हो और तुम्हारा दम टूट रहा है। तुम देखोगे कि तुम्हारे दिमाग का सन्तुलन बिगड़ रहा है।"[8] उसी नीरस गिजा पर ग्रामवासी सालहा-साल अपनी मुसीबजदा जिन्दगी के दिन काटते हैं। शहरों ने ग्रामवासियों को जिस तरह तबाह किया है उसका प्रायश्चित एक ही है कि ग्रामोद्योगों का विकास करके शहर वाले अपनी उपभोक्ता आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये गांवों पर ही निर्भर करें। यही एक तरीका है जिससे गांवों को जीवनदान मिल सकता है और शहर और गांव गांवों में एक स्वास्थ्यप्रद नैतिक सम्बन्ध कायम हो सकता है।"[9]

एक बार गांधी जी से जब आर्थिक बराबरी के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया तो गांधी जी ने उत्तर देते हुए कहा–यदि भारत को दुनिया के सामने अपनी स्वाधीनता को मिसाल के रूप में पेश करना है तब सफाई कर्मचारियों, डाक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, व्यापारियों, और अन्य सबको ईमानदारी के साथ दिन भर किये गये काम के लिये एक समान वेतन मिलना चाहिये। मुमकिन है

2. हरिजन, 25 मार्च 1939
3. हरिजन, 23 मार्च 1935
4. गांधी द लास्ट फेज-, खण्ड-1, लेखक, प्यारे लाल
5. हरिजन, 14 अप्रैल 1936
6. हरिजन, 14 अप्रैल 1936
7. हरिजन, 27 फरवरी 1937
8. हरिजन, 4 अप्रैल 1936
9. हरिजन, 9 अक्तूबर 1937

भारतीय समाज उस लक्ष्य तक न पहुंचे किन्तु यदि भारत को सुख और संतोष प्राप्त करना है तब हर भारतवासी को उस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होना चाहिये।[10]

ऐसे शहरवालों को गांधी जी चुनौती देते हुए कहते हैं– "जाओ, गांवों में जाकर रहो, गांव वालों को जो खाना नसीब होता है उसे खाकर पेट भरने का प्रयत्न करो। महीने भर के बाद तुम देखोगे कि तुम निर्जीव हो रहे हो और तुम्हारा दम टूट रहा है। तुम देखोगे कि तुम्हारे दिमाग का सन्तुलन विगड़ रहा है।"

मजदूरों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा–"पूंजी की अपेक्षा श्रम का महत्व कहीं अधिक है। विना श्रम के सोना, चांदी और तांवे का कोई महत्व नहीं। श्रमिक ही इन कीमती धातुओं को धरती के गर्भ से निकालते हैं। सोना नहीं श्रम अनमोल है। श्रम के साथ जब तक पूंजी का गठवंधन न हो तब तक पूंजी का कोई महत्व नहीं। दोनों के सहयोग से आश्चर्यजनक परिणाम निकल सकते हैं। इस सहयोग के लिए दोनों के बीच बाइज्जत समानता जरूरी है।"

प्रान्तीयता की भावना को देखकर गांधी जी को बेहद कष्ट होता था। उन्होंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि असमी सोचते हैं कि असम पर केवल उनका ही अधिकार है, किंतु यदि यही भावना सब प्रदेशों में व्याप्त हो जाए तब भारत पर किसका स्वत्व होगा। गांधी जी ने कहा कि सब प्रदेशों के लोग भारत के हैं और भारत सब प्रदेशों का है। कोई भी भारतवासी किसी भी प्रदेश में जाकर वस सकता है सिर्फ एक शर्त होगी कि न तो वह वहां के लोगों का शोपण करे, न उन पर शासन करे, न वहां के लोगों के हितों को कोई हानि पहुंचाए। इसी तरह विहार, वेशक विहारियों का है किंतु विहार पर भारत का भी हक है। कोई भारतवासी विहार में विदेशी नहीं कहा जा सकता।[12]

यूं तो प्रत्यक्ष रूप से गांधी जी राष्ट्रवादी थे किंतु उनके मन में विश्वशांति की उत्कट अभिलापा थी, इसलिए उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता में लीन हो जाती थी। एक बार उन्होंने कहा था–"राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि मेरा देश स्वतंत्र हो जाए किन्तु जरूरत पड़े तो मानव जाति को बचाने के लिए भारत यदि सारा का सारा नष्ट हो जाए तब भी मुझे दुःख न होगा। मेरी राष्ट्रीयता में जातीय घृणा का कोई स्थान नहीं। मैं सारे विश्व के दृष्टिकोण से सोचता हूं। मैं चाहता हूं कि संसार के विविध देशों का लक्ष्य पृथक स्वतंत्रता नहीं वरन् स्वेच्छित अन्तर-निर्भरता हो। ....मैं अपने देश के लिये कोई बहुत बड़ा दावा नहीं करना चाहता किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर-निर्भरता को साकार करना मेरी समझ में कोई बड़ी बात नहीं।[13]

आजादी के पहले और बाद में भारत में राजनैतिक, साम्प्रदायिक और जातीय आधारों पर तरह -तरह की सेनाओं का सृजन होने लगा–राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जमाते इस्लामी, शिव सेना, तमिल सेना, लाचित सेना, हिन्दी सेना आदि। इन सबका लक्ष्य ध्वंसात्मक था। इसके विपरीत गांधी जी एक ऐसी भूमि-सेना की परिकल्पना कर रहे थे जो न केवल देश के निर्माण में सहायता देती वरन् सशस्त्र पुलिस की जगह भी ले लेती। इस सेना के कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने कहा था–"यह सेना अधिक से अधिक अन्न उत्पादन के काम में लगेगी, सड़कें वनाएगी, नहरें, नालियां वनाएगी, जनता को अनुशासन सिखाएगी तथा लोगों से कड़ाई के साथ स्वच्छता और सफाई के नियमों का पालन कराएगी। अपनी निस्वार्थ सेवाओं से वह जनता को स्वेच्छामूलक सहयोग प्राप्त करेगी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि समाज के असामाजिक तत्व पृथक और शक्तिहीन हो जाएंगे एवं राष्ट्र के जीवन से अनुशासनहीनता एवं उच्छृंखलता समाप्त हो जाएगी। इस तरह की भूमि सेना एक अहिंसात्मक समाज रचना को साकार करने का साधन बनेगी। वह राज्य के हाथों में दमन का साधन न बनेगी।[14]

एक वार गांधी जी से जब आर्थिक बरावरी के सम्वन्ध में प्रश्न किया गया तो गांधी जी ने उत्तर देते हुए कहा– यदि भारत को दुनिया के सामने अपनी स्वाधीनता को मिसाल के रूप में पेश करना है तब सफाई कर्मचारियों, डाक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, व्यापारियों और अन्य सबको ईमानदारी के साथ दिनभर किए गए काम के लिए एक समान वेतन मिलना चाहिए।

विदेशों के सहयोग और सहायता से विदेशी उद्योगों को भारत में भरने की प्रक्रिया से गांधी जी चिंतित थे। ऐसे उद्योगों के प्रति अपना रुख स्पष्ट करते हुए गांधी जी ने कहा–

"किसी भी विदेशी उद्योग को भारतीय उद्योग तभी कहा जा सकता है जबकि यह सिद्ध हो जाए कि वह भारत के करोड़ों जन समुदाय के लिए हितकारी है और उसमें काम करने वाले कुशल टेकनीशियन और मजदूर दोनों ही भारतीय हैं। उस कारखाने के निर्माण में जो पूंजी लगाई जाए वह भी भारतीय होनी

10. हरिजन, 16 मार्च 1947
11. हरिजन, 7 सितम्बर 1947
12. हरिजन, 21 सितम्बर 1947
13. गांधी और साम्यवाद, लेखक किशोरी लाल मश्रुवाला
14. महात्मा गांधी : द लास्ट फेज, खण्ड-1, लेखक प्यारेलाल

चाहिए और जहां तक सम्भव हो उस कारखाने में यंत्र भी भारत में बने होने चाहिए। उस उद्योग में जो मजदूर काम करते हों उन्हें जीविका निर्वाह के लिये समुचित रोजी मिलनी ही चाहिए। उनके रहने के क्वार्टर साफ सुथरे और सुभीते वाले होने चाहिए। मेरे निकट भारतीय उद्योग की यह आदर्श व्याख्या है।''[15]

''स्मरणातीत काल से जिस स्वतंत्रता का उपभोग गांव करते आए हैं उसकी रक्षा वे तब तक नहीं कर सकते, जब तक कि वे जीवन की मुख्य आवश्यकताओं के उत्पादन का नियंत्रण खुद न करते हों।''[16] ''साथ ही साथ उतने ही बड़े पैमाने पर वितरण की व्यवस्था न हो तो उत्पादन का एक ही परिणाम हो सकता है—लोगों पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ सकता है।''[17] ''यदि ऐसा नहीं होगा तो चन्द लोगों की तिजोरियों में धन का अस्वाभाविक संग्रह होता रहेगा ओर अधिकांश जनता विपुलता में भी अभाव का अनुभव करती रहेगी। यही अमेरिका में आज हो रहा है।[18]

इसीलिए जब देश में पंचवर्षीय योजना पर विचार शुरू हुआ तो गांधी जी ने चेतावनी देते हुए कहा था—''करोड़ों निर्धन जनता की परवाह न करने वाली कोई भी योजना न तो देश में समतोल कायम रख सकती है और न सब इनसानों को बराबरी का दरजा दे सकती है।[19] इसलिए गांधी जी ने ऐसी योजना की हिमायत की जिसमें गांव को ही अर्थ-रचना का केन्द्र माना जाए।

मजदूरों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—पूंजी की अपेक्षा श्रम का महत्व कहीं अधिक है। बिना श्रम के सोना, चांदी और तांबे का कोई महत्व नहीं। श्रमिक ही इन कीमती धातुओं को धरती के गर्भ से निकालते हैं। सोना नहीं श्रम अनमोल है।

उद्योगीकरण को गांधी जी थोक उत्पादन का ही पर्याय मानते थे। वे कहते हैं —थोक उत्पादन कम से कम लोगों द्वारा जटिल यंत्रों की मदद से किये जाने वाले उत्पादन का सूचक एक परिभाषिक शब्द है।''[20] ''उद्योगीकरण बड़े पैमाने पर किया जाए तो उससे ग्रामवासियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शोषण अवश्य होगा। कारण उससे प्रतियोगिता बढ़ेगी और उत्पन्न माल का बाजारों में खपाने की समस्याएं उत्पन्न होंगी।''[21]

15. हरिजन, 21 अक्तूबर 1947
16. यंग इंडिया, 2 जुलाई 1927
17. हरिजन, 2 नवम्बर 1934
18. हरिजन, 2 नवम्बर 1934
19. हरिजन सेवक, 26 मार्च 1947
20. हरिजन, 2 नवम्बर 1934
21. हरिजन, 29 अगस्त 1936

इसीलिए जब देश में पंचवर्षीय योजना पर विचार शुरू हुआ तो गांधी जी ने चेतावनी देते हुए कहा था—''करोड़ों निर्धन जनता की परवाह न करने वाली कोई भी योजना न तो देश में समतोल कायम रख सकती है और न सब इनसानों को बराबरी का दरजा दे सकती है।''

पश्चिमी देशों में उद्योगवाद ने जो बुराइयां पैदा कीं वे गांधी जी के सामने थीं। उद्योगवाद से पूंजी और सत्ता चन्द लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। उद्योगवाद पराश्रयिता की वृद्धि करता है। उद्योगवाद पूंजी और श्रम में संघर्ष पैदा करता है। उद्योगवाद अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को बढ़ाता है। उद्योगवाद से व्यापार फैलाने और मुनाफा कमाने की वृत्ति बेहद बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि भौतिक समृद्धि की अनियन्त्रित आकांक्षा महायुद्धों का खतरा पैदा करती है।

पश्चिम के दुखद अनुभव से गांधी जी ने यह प्रेरणा ली कि उद्योगवाद की बुराइयों के खतरे को हटाकर ही औद्योगिक विस्तार को ग्रहण करना चाहिए। बड़े पैमाने पर उद्योगवाद विशेषाधिकार, एकाधिकार और पूंजीवाद के भयानक दानवों का सृजन करता है। जो भी वस्तु सबके लिये समान रूप से उपलब्ध न की जा सके, सामान्य जनता को जिसमें हिस्सा न मिले, उसे गांधी जी निषिद्ध मानते थे।

अपने जन्म के समय से ही विदेशी शासन-शक्ति से लड़ने के लिये कांग्रेस की दागबेल एक संघर्षशील संस्था के रूप में डाली गई थी। दीर्घकाल तक उसने संस्था की हैसियत से राजसत्ता की ओर से आंखे फेर रखी थीं। यहां तक कि जब उसने सन् 1935 के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार सन् 1937 में प्रदेशों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बनाने का निर्णय किया तब भी कांगेस के शीर्ष नेता उन मंत्रिमंडलों से बाहर रहे। कांग्रेस की हाइकमान ने, कांग्रेस वर्किंग कमेटी और कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड के माध्यम से, कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के संसदीय कार्यों और कर्तव्यों पर कड़ा नियंत्रण रखा। कांग्रेस हाईकमान उस समय अत्यंत सर्व प्रिय थी। उसे सबका विश्वास प्राप्त था। उसके अधिकार पर कोई उंगली नहीं उठा सकता था। इसलिए मंत्रिमंडलों के नियंत्रण की यह व्यवस्था काफी संतोषजनक रही, कांग्रेस के संगठन ने जनता और कांग्रेसी सरकारों के बीच एक सम्पर्क कड़ी के रूप में काम किया। जहां उसने एक ओर कांग्रेसी सरकारों को जनता का समर्थन प्राप्त कराया वहां दूसरी ओर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को भी कांग्रेस की नीतियों को पूरा करने पर बाध्य किया। कांग्रेसी संगठन और

कांग्रेसी सरकारों के बीच कोई भेद-भाव की लकीर नहीं थी; किंतु सितम्बर 1946 में जब केन्द्र में अंतरिम सरकार बनी तब कांग्रेस के शीर्ष नेताओं ने स्वयं मंत्रिपद स्वीकार कर लिया। कांग्रेस की बागडोर दूसरे दरजे के नेताओं को सौंप दी गई। राष्ट्र के शीर्ष और अनुभवी नेताओं की हैसियत से अन्तरिम सरकार के कांग्रेसी मंत्रियों ने थोड़े बहुत न्यायोचित आधारों पर शायद यह सोचा होगा कि उनके हाथों में राष्ट्र के हित सुरक्षित हैं। यह भी हो सकता है कि शक्ति हाथ में आने के बाद इन नेताओं को जनता की अहिंसात्मक स्वीकृति की अधिक आवश्यकता नहीं रह गई, इसलिए कि वे अब राज्य शक्ति का उपयोग कर सकते थे। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस संगठन मंत्रियों और उनके मंत्रित्व की स्वतंत्रता में बाधक और क्लेशदायक बनने लगा। धीरे-धीरे दोनों के बीच टकराव की सूरतें पैदा होने लगीं। कांग्रेसी मंत्रियों ने कांग्रेस संगठन के हस्तक्षेप की शिकायत शुरू की और संगठन के नेताओं ने कांग्रेसी मंत्रियों पर सहयोग की कमी का आरोप लगाया। आपसी संघर्ष की इस परिस्थिति को देखकर गांधी जी ने पंडित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार पटेल और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि वे स्वतः मंत्रिमंडल से बाहर आकर जनता का नेतृत्व करें। गांधी जी ने सार्वजनिक वक्तव्य देते हुए कहा–

"सर्वोच्च नेताओं को सरकार से बाहर रहना चाहिये, इसे मैं जरूरी समझता हूं। यदि सबके सब श्रेष्ठ नेता मंत्री पद लेकर सरकार में रहेंगे तो वे जनता से कटकर अलग हो जायेंगे। तब ऐसे लोगों के लिए मैदान साफ हो जायेगा जो अपने छल और कपट से लोगों को धोखा देकर वोट लेंगे। समाज में अवसरवादी तत्वों का बोलबाला हो जायेगा। जो भी श्रेष्ठ नेता सत्ता सम्हालेगा वह सत्ता के कलुष से नहीं बचेगा। प्रश्न उठेगा कि आखिर किसी न किसी को तो सत्ता की बेड़िया पहननी पड़ेंगी? ऐसे लोगों को मेरा जवाब होगा–हमारे देश में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जिनमें इस प्रकार के काम की विशेष क्षमता है।......मैं शीर्ष नेताओं से यह कहूंगा कि वे स्वयं अपने ऊपर मंत्री-पद त्याग का आर्डिनेंस लगा लें। वे सरकार से बाहर रहकर भारत की जनता का नेतृत्व करें। उसे अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा दें। शासन चलाने का भार दूसरे दर्जे के कार्यकर्त्ताओं के सुपुर्द करें। श्रेष्ठ नेताओं के मार्ग-दर्शन और अनुभवी निरीक्षण में ये दूसरे दरजे के कार्यकर्त्ता राज्य का शासन चलायेंगे। श्रेष्ठ नेता जब मंत्रिपद से अलग रहेंगे तो मंत्रिपद की चमक-दमक जाती रहेगी, सत्ताधारियों को ऊंची-ऊंची तनखाहें नहीं देनी पड़ेगी। शासन का नियंत्रण उन लोगों के हाथों में रहेगा जिन्होंने अपने आत्म-बलिदान से अपनी सच्चाई साबित की है और जिन्होंने जनता की सेवा और त्याग से अपने को प्रतिष्ठित किया है।"[22] जब हम ऐसा करेंगे तभी भारत में सच्चे जनतंत्र का जन्म होगा।

राजनीतिज्ञों की सबसे बड़ी कमी की ओर इशारा करते हुए गांधी जी ने कहा था–

"हमारी सबसे भयंकर कमी यह है कि जब किसी से किसी बात पर हमारा मतभेद होता है तो हमें उसकी नीयत के संबंध में गलतफहमी होने लगती है। बजाय इसके कि हम उसके दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करें हम उसकी भर्त्सना करने लगते हैं। उसे जनता की नजरों में गिराने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम यह होता है कि दिलों में दरारें पड़ जाती हैं। प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगती है। व्यक्तियों के संघर्ष में लोग सिद्धांतों को भूल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय एकता दृढ़ करने के बजाय लोग दलबंदी के दलदल में फंस जाते हैं।"

उद्योगवाद पूंजी और श्रम में संघर्ष पैदा करता है। उद्योगवाद अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को बढ़ाता है। उद्योगवाद से व्यापार फैलाने और मुनाफा कमाने की वृत्ति बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि भौतिक समृद्धि की अनियंत्रित आकांक्षा महायुद्धों का खतरा पैदा करती है।

जब हम ग्रामीणोन्मुखी हो जाएंगे तब हम पश्चिमी या मशीनों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की नकल नहीं चाहेंगे, बल्कि नए भारत के अपने सपने के अनुसार हम अपनी ऐसी जरूरतें पैदा करेंगे जिससे कि देश में निर्धनता, भूख और बेकारी के लिए कोई जगह न बचे।

–महात्मा गांधी

22. महात्मा गांधी : द लास्ट फेज खण्ड-1, लेखक : प्यारे लाल

विकास का गांधी-मार्ग

✍ सिद्धराज ढड्ढा

लेखक के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में जो आर्थिक विकास हुआ उसमें कुछ खामियां रही हैं। जहां अमीरों की संख्या और अमीरी बढ़ी है वहां गरीबों की संख्या और गरीबी में बढ़ोत्तरी हुई है। लेखक की यह मान्यता है कि सबकी बुनियादी आवश्यकताएं, भोजन, वस्त्र और आवास की पूर्ति के लिए प्रकृति में सब कुछ है पर किसी की लालच की पूर्ति के लिए पृथ्वी के सभी साधन भी अपर्याप्त हैं। अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखते हुए हमें सादा जीवन जीना चाहिए। आज जो भोगवाद की पश्चिमी सभ्यता हमने अपना ली है उसका प्रभाव अनिष्टकारी है और उससे तो पश्चिम के लोग भी परेशान हैं। लेखक का कहना है कि विकास की अवधारणा का अर्थ होना चाहिए सबका विकास। सबको विकास के समान अवसर मिलने चाहिए। अगर यह माना जाए कि सब का विकास एक साथ नहीं हो सकता तो गांधी जी के 'अंत्योदय' के सिद्धांत को माना जाना चाहिए अर्थात् ऐसी व्यवस्था हो कि विकास का लाभ सबसे कमजोर को सबसे पहले मिले।

महात्मा गांधी की 125वीं जयंती का अवसर इस बात के लिए सर्वथा उपयुक्त है कि स्वाधीनता के बाद इन 47 बरसों में देश के विकास, खासकर ग्रामीण विकास की क्या स्थिति है उसका हम जायज़ा लें। सिर्फ इसलिए नहीं कि गांधी जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करना है, बल्कि इसलिए कि गांधी जी ने अपनी अर्न्तदृष्टि, जागतिक परिस्थिति और भारतीय समाज व्यवस्था की गहरी समझ के आधार पर स्वाधीनोत्तर विकास का ऐसा चित्र हमारे सामने रखा था जो अंत्योदय की भावना से अर्थात् विकास का प्रारंभ अंतिम व्यक्ति के उत्थान से हो इस उद्देश्य से प्रेरित था। आजादी के आंदोलन का नेतृत्व करते हुए विकास की इस दृष्टि को उन्होंने बहुत स्पष्टता और उस पर जोर देकर हमारे सामने रखा था।

हालांकि आजादी के समय देश के विभाजन के कारण खड़ी हुई समस्याओं ने राष्ट्रीय कार्यक्रम (ऐजेंडा) में प्राथमिकता प्राप्त कर ली थी और गांधी जी का चिंतन और शक्ति भी इस ओर विशेष रूप से लग रही थी, फिर भी उनकी सर्वोपरि चिंता का विषय तो आजादी के बाद देश के पुनर्निर्माण का ही था। 30 जनवरी 1948 को गांधी जी ने कांग्रेस की महासमिति के विचारार्थ एक प्रस्ताव तैयार किया था जिसमें उन्होंने कहा था कि - "भारत को राजनैतिक आजादी तो मिल गई है......लेकिन उसे अभी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना बाकी है। वह भी, शहरों और कस्बों से भिन्न, उसके 7 लाख गांवों के संदर्भ में।" स्पष्ट है कि गांधी जी का लक्ष्य केवल भौतिक विकास का नहीं था, बल्कि उनके सामने प्रश्न भारतीय जनता के सर्वांगीण विकास का था और उसकी शुरूआत गांवों से होनी थी और गांव में भी अंतिम व्यक्ति के उत्थान से। अगर गांधी जी की दृष्टि से विकास की समीक्षा करनी हो तो यह उसकी मुख्य कसौटी होगी।

पुराने जमाने की सभ्यताएं अक्सर अपने-अपने क्षेत्र में सीमित होती थीं। हर सभ्यता की अपनी आंतरिक शक्ति और गतिशीलता के अनुपात में उनका प्रभाव अपने क्षेत्र से बाहर कम या ज्यादा, नजदीक या दूर तक फैलता था, जैसे भारत, अरब और चीन की सभ्यताओं का। वह प्रभाव भी अधिकतर सांस्कृतिक या सामाजिक होता था। अधिकतर सभ्यताएं क्षेत्रबद्ध रह जाती थीं, जैसे बेबीलोन और 'मय' आदि सभ्यताएं। पर आज आवागमन और संचार-माध्यमों के विकास के कारण तथा हिंसा और शस्त्र बल की मदद से वर्तमान सभ्यता, जिसे हम पश्चिमी सभ्यता के नाम से पहचानते हैं, का प्रभाव करीब-करीब सारे विश्व में फैल गया है।

इस सभ्यता के मूल में स्वार्थ, लालच और अतः हिंसा होने के कारण स्वाभाविक ही इसका प्रभाव अनिष्टकारी हुआ है। इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका के वर्षों के अनुभव के बाद गांधी जी इस नतीजे पर पहुंचे थे कि पश्चिमी सभ्यता मानव-जाति के लिए एक अभिशाप है। यह बात उन्होंने 20वीं सदी के पहले दशक में ही अर्थात् 1908-09 में लिखी गई अपनी मौलिक कृति 'हिंद स्वराज्य' में कही थी। आज 20वीं सदी का अंत आते-आते गांधी जी की समीक्षा की सच्चाई स्पष्ट रूप से सामने आ गई है। सारी मानव जाति के सामने एक अंधी दीवार खड़ी है। जिस रास्ते पर वह चलती जा रही है उस रास्ते पर आगे सर्वनाश निश्चित है। उसके लक्षण हम जगह-जगह देख रहे हैं।

इस सभ्यता के मूल में स्वार्थ, लालच और अतः हिंसा होने के कारण स्वाभाविक ही इसका प्रभाव अनिष्टकारी हुआ है। इग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका के वर्षों के अनुभव के बाद गांधी जी इस नतीजे पर पहुंचे थे कि पश्चिमी सभ्यता मानवजाति के लिए एक अभिशाप है। यह बात उन्होंने 20वीं सदी के पहले दशक में ही अर्थात्-1908-09 में लिखी गई अपनी मौलिक कृति 'हिंद स्वराज्य' में कही थी।

भारत की स्थिति पर एक नजर डालें। देश एक गहरे आर्थिक दलदल में फंस गया है। बड़े-बड़े कारखाने तो बन गए, बड़े-बड़े बांध बन गए, बड़े-बड़े भवन बन गए, इस माने में खूब विकास हुआ, बहुत तरक्की हुई। अमीरों की अमीरी और उनकी संख्या बढ़ी, यह भी तरक्की की निशानी मानी जाती है, लेकिन साथ ही गरीबों की गरीबी और उनकी संख्या भी बढ़ी है यह नहीं भूलना चाहिए। देश में दूध की नदियां तो बह रही हैं, लेकिन गांवों से शहरों की ओर, गांव के बच्चों को दूध तो क्या छाछ भी नसीब नहीं है। नदियां दूध की बह रही हैं लेकिन देश की अधिकांश नदियों का पानी सूख गया है या प्रदूषित हो गया है। जिस गंगा का पानी पवित्र माना जाता है, जिसमें स्नान करके शारीरिक और आंतरिक मैल धुल जाते थे, मनुष्य पावनता महसूस करता था, उसका पानी भी आज इतना दूषित हो गया है कि उसे शुद्ध किए बिना पीने की बात तो दूर उसमें नहाना भी रोगों को निमंत्रण देना है।

स्पष्ट है कि विकास की हमारी यात्रा में कहीं चूक हुई है। इसको समझने के लिए कुछ गहराई में जाना होगा। मनुष्य की कुछ बुनियादी आवश्यकताएं हैं जैसे भोजन, वस्त्र और आवास। इन आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक वस्तुओं से होती है। सृष्टि में सबके भरण-पोषण की पर्याप्त गुंजाइश और व्यवस्था तो है पर किसी एक भी व्यक्ति के लोभ या लालच की पूर्ति के लिए पृथ्वी के पूरे संसाधन भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इच्छाओं या लोभ का कोई अंत नहीं है और प्रकृति के संसाधन आखिरकार सीमित हैं। अतः मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं को बढ़ाते न जाकर संयम से काम लेना चाहिए। संयम या अपरिग्रह सनातन मूल्य हैं। संसार के सब धर्मों ने अपरिग्रह पर अर्थात् संयम या परिग्रह न करने पर बल दिया है। और संयम केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं है, वह एक सामाजिक मूल्य भी है। गांधी जी ने इसके महत्व को बताते हुए कहा था - "मनुष्य को अपनी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति से संतोष होना चाहिए और उस मामले में स्वावलंबी होना चाहिए। अपना संयम वह नहीं बरतेगा तो अपने को बचा नहीं सकेगा।"

आज मनुष्य ने संयम को नहीं, भोग को अपना आदर्श मान रखा है। शरीर-सुख के लिए अधिक से अधिक भौतिक सुख-सामग्री जुटाने की पागल दौड़ में वह लगा हुआ है। कारखानेदार और पूंजीपति अपने मुनाफे के लिये प्रचार और विज्ञापन के द्वारा मनुष्य की इस कमजोरी को बढ़ावा दे रहे हैं। समाजवाद और साम्यवाद की दृष्टि भी इस मामले में साफ नहीं है, बल्कि वे भी भोगवाद को ही प्रोत्साहन देते हैं।

देश में दूध की नदियां तो बह रही हैं, लेकिन गांवों से शहरों की ओर, गांव के बच्चों को दूध तो क्या छाछ भी नसीब नहीं है। नदियां दूध की बह रही हैं लेकिन देश की अधिकांश नदियों का पानी सूख गया है या प्रदूषित हो गया है। जिस गंगा का पानी पवित्र माना जाता है, जिसमें स्नान करके शारीरिक और आंतरिक मैल धुल जाते थे, मनुष्य पावनता महसूस करता था, उसका पानी भी आज इतना दूषित हो गया है कि उसे शुद्ध किए बिना पीने की बात तो दूर उसमें नहाना भी रोगों को निमंत्रण देना है।

भौतिक दृष्टि से अमरीका, यूरोप के मुल्क तथा जापान आदि देश बहुत विकसित और संपन्न माने जाते हैं। पर उन समाजों का अनुभव बताता है कि भोगवाद के कारण उन देशों के निवासियों के सुख में वृद्धि नहीं हुई है बल्कि अत्यधिक भोग के कारण वे या उनकी नकल करने वाले समाज तरह-तरह के रोग, मानसिक असंतुलन, अपराध, शोषण-वृत्ति, हिंसा और युद्ध आदि बुराइयों के शिकार हो रहे हैं। भोग से सुख मिलने के बजाय जीवन कष्टमय बनता जा रहा है।

"भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता"।

गहराई से सोचने पर शायद ही कोई इस बात से इंकार कर सकेगा कि मनुष्य-जीवन का उद्देश्य केवल इंद्रियों के सुख की प्राप्ति नहीं हो सकता। मनुष्य केवल इंद्रियों की गठरी नहीं है। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएं जरूर पूरी होनी चाहिए परंतु इसके आगे केवल सुख-सुविधा की या भोग-विलास की खातिर आवश्यकताओं को अनावश्यक रूप से बढ़ाते जाना और इंद्रियों की तृप्ति के पीछे दौड़ते रहना सभ्यता की नहीं, जंगलीपन की निशानी है। वह मानव-जीवन का लक्ष्य कदापि नहीं हो सकता। वह मनुष्य को कष्ट में डालता है और उसके कारण मनुष्य के लिए अपने जीवन को परिष्कृत करने, ऊंचा उठाने और सद्गुणों का विकास करने का कोई अवकाश नहीं रह जाता।

अतः मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताएं अनावश्यक रूप से बढ़ाते जाने के बजाय संयम से काम लेना चाहिए। जीवन

जितना सादा और सरल होगा उतना ही वह आनंदमय, ऊंचा उठाने वाला, स्फूर्तिदायक और समृद्ध होगा। भोजन, वस्त्र, आवास आदि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य अपने खुद के श्रम और प्रकृति के सहयोग से आसानी से कर सकता है। लेकिन इससे आगे बढ़कर अगर वह तरह-तरह की सुविधाएं जुटाना, ठाठ-बाट से रहना और ऐश-आराम की जिंदगी बिताना चाहे तो ऐसा वह दूसरों की मेहनत के बल पर ही कर सकता है, उसके बिना नहीं। ऐश-आराम की जिंदगी के लिये केवल दूसरों के श्रम का ही शोषण नहीं करना पड़ता, प्रकृति का भी अमर्यादित दोहन जरूरी हो जाता है, जैसा आज हो रहा है। हम देख रहे हैं कि हवा, पानी, प्रकाश, धरती और आकाश आदि प्राकृतिक संसाधन उनके गलत और बेहिसाब इस्तेमाल के कारण बिगड़ते जा रहे हैं और उनकी कमी भी होती जा रही है।

मनुष्य की कुछ बुनियादी आवश्यकताएं हैं, जैसे भोजन, वस्त्र और आवास। इस आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक वस्तुओं से होती है। सृष्टि में सबके भरण-पोषण की पर्याप्त गुंजाइश और व्यवस्था तो है पर किसी एक भी व्यक्ति के लोभ या लालच की पूर्ति के लिए पृथ्वी के पूरे संसाधन भी पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि इच्छाओं या लोभ का कोई अंत नहीं है और प्रकृति के संसाधन आखिरकार सीमित हैं।

बढ़ती हुई आवश्यकताओं तथा भोग-वृत्ति के कारण कुछ और बुराइयां भी पनप रही हैं। उदाहरण के लिए प्रकृति के संसाधनों पर कब्जा करने की तथा मुनाफे के लिए दुनियाभर के बाजार अपने लिए सुरक्षित करने की आज होड़ मची है। इस होड़ के कारण युद्ध मानव जीवन का एक स्थायी अंग बन गया है और एक से एक अधिक भयानक शस्त्रों का निर्माण दुनिया का एक प्रमुख 'उद्योग' तथा रोजगार का साधन बनता जा रहा है। इस 'उद्योग' को और इससे मिलने वाले रोजगार को कायम रखने और बढ़ाने के लिये देशों में परस्पर वैमनस्य को उकसा कर शस्त्रों की होड़ को बढ़ावा दिया जा रहा है और सत्ताधारियों को भ्रष्ट किया जा रहा है। अगर वे अपने अनुकूल न हों जो उन्हें बदलने, हटाने या समाप्त तक करने के लिये षड्यंत्र रचे जाते हैं। आज जिस तरह से छोटे-बड़े सब देश हजारों-लाखों की स्थायी सेना रखने लगे हैं, वह तीन-चार सौ बरस पहले तक आम बात नहीं थी। आज युद्ध और स्थायी सेनाओं के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय हो रहा है। जो संसाधन और श्रम गरीबी और अभाव दूर करने में लगते वे लोगों को मारने की तैयारी में लग रहे हैं। युद्ध और शस्त्रों की होड़ दुनिया में गरीबी और अभाव बढ़ने का एक मुख्य कारण है।

श्रम-प्रधान जीवन

मनुष्य को अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो वस्तुएं चाहिए वे या तो सीधे प्रकृति से उपलब्ध होती हैं या मेहनत के द्वारा प्राकृतिक तत्वों का रूपांतर करके प्राप्त की जा सकती हैं। वस्तुएं सब श्रम से ही पैदा होती हैं। आवश्यकताओं की वस्तु अगर सीधे प्रकृति में उपलब्ध नहीं हो तो उसका कच्चा माल उपलब्ध है, या उस के लिए आवश्यक तत्व। उदाहरण के लिए मनुष्य को भूख लगी है, पेड़ पर पका हुआ फल मौजूद है, उस फल को तोड़ने मात्र की मेहनत करके मनुष्य अपनी भूख बुझा सकता है, या जमीन पर मेहनत कर, अन्न पैदा करके उस अन्न से वह अपनी भूख बुझा सकता है। इसी तरह कपास उगाकर कपड़ा प्राप्त कर सकता है। अंततोगत्वा हर चीज पंच--महाभूत, पृथ्वी, जल, वायु, ऊष्मा या प्रकाश और आकाश--के मेल-जोल से ही निर्मित होती हैं।

आज जिस तरह से छोटे-छोटे सब देश हजारों-लाखों की स्थायी सेना रखने लगे हैं वह तीन-चार सौ बरस पहले तक आम बात नहीं थी। आज युद्ध और स्थायी सेनाओं के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय हो रहा है। जो संसाधन और श्रम गरीबी और अभाव दूर करने में लगते वे लोगों को मारने की तैयारी में लग रहे हैं। युद्ध और शस्त्रों की होड़ दुनिया में गरीबी और अभाव बढ़ने का एक मुख्य कारण है।

प्रकृति ने मनुष्य को हाथ-पांव दिए हैं ताकि उन हाथ-पांवों की मदद से वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी सामान पैदा कर सके। पर प्रकृति की इस योजना के विपरीत, अक्सर मनुष्य बिना हाथ-पांव हिलाए, बिना मेहनत किए खाना और उपभोग करना चाहता है। इतना ही नहीं, वैसा करना बड़प्पन की और प्रतिष्ठा की बात मानी जाती है, 'सभ्य' होने का लक्षण माना जाता है। आज इस तरह के गलत मूल्य समाज में प्रतिष्ठित हो गए हैं कि श्रम करके खाना नीचे दर्जे का काम माना जाता है। शरीर-श्रम को टालने की वृत्ति के कारण शरीर कमजोर हो जाता है, इंद्रियों की शक्ति बेकार जाकर क्षीण होने लगती है और शरीर रोगों का शिकार होता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये हाथ-पांव की मेहनत जरूरी है। अतः मेहनत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिये भी जरूरी

है। जो उत्पादक श्रम नहीं करते वे फिर इस कमी के लिए दौड़ते या कसरत करते हैं।

स्वावलंबन

जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का स्वावलंबन आसान है। भोजन, वस्त्र और मकान आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो वस्तुएं चाहिए वे सब वस्तुएं सहज मेहनत के द्वारा गांव-गांव में धरती से और आस-पास की प्रकृति से प्राप्त की जा सकती हैं। अनाज, दाल, फल-सब्जी, दूध-दही और कपड़े के लिए कपास—ये चीजें किसी कारखाने में नहीं बनती, सब धरती से प्राप्त होती हैं। जैसे मां से बच्चों को दूध सहज उपलब्ध होता है उसी तरह धरती-माता उसकी थोड़ी-सी सेवा के बदले ये चीजें उदार मन से हमें प्रचुर मात्रा में देती है। एक बीज से पैदा हुए पौधे से हजार-पांच सौ बीज या दाने मिलते हैं। इसके अलावा, धरती से चीजों को पैदा करने के लिये जो मेहनत करनी पड़ती है वह कारखाने में काम करने वाले मजदूर की मेहनत जैसी कठिन, स्वास्थ्य को खराब करने और उबा देने वाली नहीं होती बल्कि प्राकृतिक परिवेश, धरती से संपर्क और सर्जन की अनुभूति के कारण सही मायने में आनन्ददायक और स्वास्थ्यवर्धक होती है।

इसके अलावा, धरती से चीजों को पैदा करने के लिए जो मेहनत करनी पड़ती है वह कारखाने में काम करने वाले मजदूर की मेहनत जैसी कठिन, स्वास्थ्य को खराब करने और उबा देने वाली नहीं होती, बल्कि प्राकृतिक परिवेश धरती से संपर्क और सर्जन की अनुभूति के कारण सही मायने में आनन्ददायक और स्वास्थ्यवर्धक होती है।

दुर्भाग्य से आज लालच के कारण किसानों का रुझान व्यापारी फसलें पैदा करने की ओर हो रहा है। इन फसलों को बाजार में बेचकर फिर किसान उस पैसे से अनाज, कपड़े आदि अपनी जरूरत की चीजें खरीदता है। हिसाब लगाया जाए तो मालूम होगा कि इससे किसान की दोहरी लूट होती है। चूंकि बाजार और पैसे पर किसान का नियंत्रण नहीं है, उनका नियंत्रण सरकार या व्यापारियों के हाथ में होता है, इसलिए किसान को अपनी मेहनत से पैदा की हुई उपज तो सस्ते भाव में बेचनी पड़ती है और कारखानों में उसी कच्चे माल से बनी चीजें उससे कई गुना अधिक कीमत में खरीदनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिए जबकि आज किसान को कपास के लिये दस-बारह रुपये किलो के दाम मिलते हैं, तब उसी एक किलो कपास से बने आठ-दस मीटर कपड़े के लिये उसे कम से कम डेढ़ सौ-दो सौ या उससे भी ज्यादा रुपये देने पड़ते हैं। वही बात तिलहन से बने तेल, आटे से बने बिस्कुट, आलू से बने चिप्स या कारखाने में बने जूते-चप्पल पर लागू होती है। अतः अगर गांव में ही कपास से कपड़ा या अन्य कच्चे माल से जरूरत का 'पक्का' माल अर्थात् वस्तु तैयार कर ली जाए और एक-दूसरे के श्रम से बनी वस्तुओं की अदला-बदली करके लोग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लें जैसा कि भारत में कुछ बरस पहले तक भी बड़े पैमाने पर होता था, तो आज ग्रामीणों की जो भारी लूट हो रही है उससे बचा जा सकता है। अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए भी जो सब गांव में आसानी से बन सकती हैं और सदियों से बनती आ रही थीं, बाजार पर निर्भर हो जाने से ही आज किसान खुद पैदा करने वाला होने के बावजूद गरीब है और अभाव में जिन्दगी बसर करता है। अगर किसान अपने खुद के इस्तेमाल की आवश्यक वस्तुओं के लिए लगने वाली फसलों की खेती को प्राथमिकता दे और उस 'कच्चे माल' से पक्का माल परिवार या गांव में बना लिया जाए तो किसान को कभी अभाव महसूस नहीं होगा। आज पैसे और बाजार के जाल में फंस कर ही वह कष्ट भुगत रहा है।

खाने-पीने-पहनने आदि की बुनियादी आवश्यकताओं में स्वावलंबन एक और महत्वपूर्ण सामाजिक कारण से भी जरूरी है। जिनके पास सत्ता और संपत्ति होती है स्वाभाविक ही उनकी प्रवृत्ति अन्याय और शोषण करने की हो जाती है। अगर अपनी बुनियादी और अनिवार्य आवश्यकताओं के बारे में लोग सरकार या बाजार पर निर्भर रहें तो वे उन पर होने वाले अन्याय का आसानी से मुकाबला नहीं कर सकते। स्वावलंबन में पड़ोसियों व ग्रामवासियों का सहयोग तो शामिल है ही। वास्तव में स्थानीय परस्परावलंबन तो स्वावलंबन की रीढ़ है, इसलिए स्वावलंबन को बहुत संकुचित अर्थ में नहीं लेना चाहिए। स्वावलंबन का असली मकसद है बाजार और सरकार के जाल से और पैसे की गुलामी से समाज को मुक्ति।

विकेन्द्रीकरण

सरकार और बाजार की गुलामी आज चरम सीमा को पहुंच रही है। परोपजीवी और शोषक-वृत्ति इस गुलामी को बढ़ावा दे रही है। इसके कारण व्यवस्था का उत्तारोत्तर अधिक केन्द्रीकरण होता जा रहा है। व्यवस्था का यह केन्द्रीकरण, चाहे वह आर्थिक क्षेत्र में हो या अन्य किसी क्षेत्र में, आज की बहुत सी समस्याओं के लिए जिम्मेदार है। केन्द्रीकरण के साथ पक्षपात और भ्रष्टाचार के दोष दाखिल होते हैं। केन्द्रीकरण के कारण कर्मचारियों व अफसरों के रूप में तथा परिवहन व तरह-तरह की अन्य

आवश्यक-अनावश्यक सेवाओं के नाम पर, अनुत्पादक बिचौलियों की एक फौज खड़ी हो जाती है। एक नया मध्यवर्ग खड़ा हो जाता है जो उत्पादक नहीं होता इसलिये उत्पादकों पर अर्थात् किसान-कारीगर आदि पर बोझ बढ़ता जाता है। इतना ही नहीं, नौकरशाही और बिचौलियों की यह फौज स्वयं अनुत्पादक होने के अलावा, अपने स्वार्थ के लिये उत्पादन के काम में अनावश्यक अडंगे डालती है। केंद्रित व्यवस्था और नौकरशाही के कारण समाज में कामचोरी और गैर-जिम्मेदारी की भावना बढ़ती है। इन सब बातों को देखते हुए स्पष्ट है कि समाज-व्यवस्था जितनी स्वावलंबी और विकेन्द्रित होगी उतनी ही वह सम्पोषक, संतुलित और सार्थक होगी।

कर्त्तव्य भावना

आज समाज में हर कोई अधिकारों की बात करता है, लेकिन समाज के घटक के रूप में हमारे कुछ कर्त्तव्य भी हैं इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। आज हर वर्ग ने अपने-अपने संगठन बना लिये हैं, यहां तक कि देश में सर्वश्रेष्ठ आइ. ए. एस. अफसरों ने भी और इन संगठनों के जरिए वे समाज से अधिकारों की मांग करते रहते हैं। वे अपने को समाज से अलग मानते हैं और समाज को अपने से अलग। लेकिन हम देख सकते हैं कि व्यक्ति और समाज दो अलग-अलग चीजें नहीं है। दोनों परस्पर संबंधित और एक-दूसरे के अंग हैं। अतः समाज के अंग होने के नाते हमारे कुछ कर्त्तव्य भी हैं यह हमें याद रखना चाहिए। वास्तव में केवल अधिकार की बात करना असामाजिक है। कर्त्तव्य के पालन से ही अधिकारों की पात्रता हासिल होती है।

हमारा देश ही नहीं, संपूर्ण मानव-समाज आज अभूतपूर्व संकट से गुजर रहा है । इसका कारण यह है कि विकास की जो अवधारणा और प्रक्रिया हमने स्वीकार की है उसमें समाज-धारणा के उपरोक्त सनातन मूल्यों की अवहेलना हुई है। व्यक्तियों को लेकर समाज बनता है, इसलिए समाज के सब लोगों की सर्वांगीण उन्नति और कल्याण ही समाज-रचना का लक्ष्य हो सकता है। इससे कम कोई लक्ष्य न्यायोचित नहीं होगा। व्यक्ति के नाते समाज के सब व्यक्ति समान हैं और सबको विकास का समान अवसर मिलना चाहिए। सब समान रूप से स्वतंत्रता के हकदार हैं, कोई किसी को दबाए या किसी का शोषण करे यह किसी सभ्य समाज में स्वीकार नहीं हो सकता। समाज में व्यक्तियों के बीच अगर कोई शाश्वत संबंध हो सकता है तो वह सहयोग और प्रेम का ही, न कि परस्पर संघर्ष या जोर-जबर्दस्ती का। यह स्पष्ट है कि द्वेष और संघर्ष की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर समाज में प्रेम और सहयोग पैदा नहीं किया जा सकता न समाज को कायम रखा जा सकता है।

व्यक्ति के नाते समाज के सब व्यक्ति समान हैं और सबको विकास का समान अवसर मिलना चाहिए। सब समान रूप से स्वतंत्रता के हकदार हैं, कोई किसी को दबाए या किसी का शोषण करे यह किसी सभ्य समाज में स्वीकार नहीं हो सकता। समाज में व्यक्तियों के बीच अगर कोई शाश्वत संबंध हो सकता है तो वह सहयोग और प्रेम का ही, न कि परस्पर संघर्ष या जोर-जबर्दस्ती का। यह स्पष्ट है कि द्वेष और संघर्ष की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर समाज में प्रेम और सहयोग पैदा नहीं किया जा सकता, न समाज को कायम रखा जा सकता है।

विकास का लक्ष्य सब लोगों की सर्वांगीण उन्नति है, इस वाक्य में "सब" और "सर्वांगीण" ये दो शब्द महत्व के हैं। पर इन शब्दों का इस्तेमाल करते समय अक्सर इनका पूरा आशय हमारे ध्यान में नहीं रहता, इसलिए व्यवहार में लक्ष्य सीमित रह जाता है या ओझल हो जाता है। उदाहरण के लिए आज विकास के नाम पर जो योजनाएं बनाई जाती हैं उनका मतलब सामान्य तौर पर भौतिक विकास से ही होता है, उनमें 'सर्वांगीण" यानी नैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि विकास का कोई स्थान नहीं होता। कभी-कभी तो, बल्कि अधिकतर, भौतिक विकास का मतलब भी बहुत संकुचित लिया जाता है। केवल वस्तुओं के उत्पादन और उनकी प्रचुरता (Production and Growth) को ही विकास माना जाता है, जबकि केवल भौतिक विकास की बात करें तो उसमें भी उत्पादन के अलावा यह कल्पना भी शामिल है ही कि उत्पादित वस्तुएं यथासंभव समान रूप से सब लोगों तक पहुंचनी चाहिए।

अंत्योदय

इसी तरह गहराई में गए बिना अक्सर हम यह मान लेते हैं कि साधन सीमित हैं इसलिए सब व्यक्तियों का विकास एक साथ नहीं हो सकता, कुछ का पहले होगा कुछ का बाद में। इसी बात को पं जवाहरलाल नेहरू ने "Percolation Theory" —रिसन का सिद्धांत—के रूप में बौद्धिक प्रतिष्ठा प्रदान की थी। अगर व्यवहार में यह मान भी लिया जाए कि सबका विकास एक साथ नहीं हो सकता तब भी सामाजिक न्याय का यह तकाजा है कि जो गरीब या कमजोर है उसको पहले ऊपर उठाना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 27 पर)

अब तक का विकास : गांधी की नजर में

✍ राममूर्ति

लेखक ने संविधान लागू होने के करीब 43 वर्ष बाद आज देश के गांवों और शहरों की हालत की तुलना की है और बताया है कि शहरों में सम्पन्नता बढ़ी है। बाज़ार हर प्रकार की चीजों से भरे पड़े हैं। 15-20 करोड़, लोगों के पास तो इतना पैसा है कि वे हर नया माल खरीद सकते हैं। दूसरी तरफ गांवों में, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों के गांवों में, ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है। जो लोग खेती पर निर्भर हैं, किसी तरह जी रहे हैं। गांवों में उद्योग धंधे नहीं हैं। लोगों को साल भर काम नहीं मिलता। गांवों से शहरों की ओर लोगों का पलायन जारी है। लेखक ने गांधी जी द्वारा बताये गये उपाय को समस्या का समाधान माना है कि गांवों में घर-घर उद्योग लगाये जाएं। छोटी मशीनों के आविष्कार से अब यह संभव है। लेखक ने यह सुझाव भी दिया है कि गांवों को आदिवासी, पिछड़े और महिलाओं आदि के रूप में अलग-अलग देखने की आदत छोड़कर पूरे गांव को एक इकाई मानकर उसके समग्र विकास की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

I

क्या गांधी जी का यह सोचना गलत था कि भारत गांवों का देश है? इतना ही नहीं, बल्कि गांव ही असली भारत हैं, और उन्हीं का विकास वास्तव में भारत का विकास है? अगर यह बात गलत है तो स्वतंत्र भारत के पुनर्निर्माण के संबंध में उनकी सब बातें गलत हैं।

लेकिन दूसरे नेताओं, जिनके हाथ में आजादी के बाद देश की बागडोर आयी, उनकी तथा उनके साथ काम करने वाले विशेषज्ञों, अधिकारियों और योजनाकारों की सोच गांधी जी से भिन्न थी। वे यह तो मानते थे कि गांवों की गरीबी दूर होनी चाहिए, सड़कें निकलनी चाहिये, बसें चलनी चाहिये, बच्चों के लिए स्कूल और बीमारों के लिए अस्पताल और स्वास्थ्य-केन्द्र खुलने चाहिए, किंतु वे यह नहीं मानते थे कि गांवों के पूरे विकास में काफी समय लगेगा; उतने समय तक देश क्यों रुका रहे? उन्होंने सोचा कि बड़े शहरों में जो बड़े उद्योग पहले से चले आ रहे हैं उन्हें बढ़ाया जाए। नये उद्योगों में उन बुनियादी उद्योगों की चिन्ता पहले की जाए जिनमें बड़ी मशीनें बनती हैं। यह काम सरकार की पूंजी और सरकार की व्यवस्था में हो। इसे **'पब्लिक सेक्टर'** कहा गया। खेती का उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचित और उन्नत क्षेत्रों पर और ध्यान दिया जाए। इस तरह उद्योग और खेती दोनों में उत्पादन बढ़ेगा, दौलत इकट्ठी होगी और देश समृद्ध होता चला जाएगा। उन्होंने यह भी सोचा कि जो दौलत शहरों में पैदा होगी वह क्या शहरों में ही रह जाएगी? नहीं, वह छनकर नीचे गांवों में पहुंचेगी। जब देश की औसत आय बढ़ेगी तो गांव भी अछूते नहीं रह सकते। उनकी भी औसत आय बढ़ेगी जिससे उनका जीवन-स्तर ऊंचा उठेगा; उठता चला जाएगा।

पहली पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1951 को लागू हुई। 1953 में गांवों के लिए एक विशेष योजना सामुदायिक विकास **(कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट)** के नाम से चलाई गई जो कई वर्षों तक चली। इस वक्त आठवीं योजना चल रही है। 43 वर्ष कम नहीं होते यह देखने के लिए कि 1951 में हम विकास के जिस रास्ते पर चले थे उससे हम कहां पहुचे हैं। क्या हमें उसी राह पर चलते जाना चाहिए या साहस करके राह बदल देनी चाहिए? कहीं ऐसा न हो कि बहुत देर हो जाए।

यह निश्चित है कि आज का भारत वहीं नहीं है जहां वह 1951 में था जब भारतीय अर्थनीति का योजना युग शुरू हुआ। जहां तक बड़े उद्योगों का सवाल है भारत आज दुनिया के औद्योगिक देशों में गिना जाता है। आगे के विकास के लिए भारत के पास वैज्ञानिकों और कारीगरों की बड़ी संख्या तैयार हो गई है। बाजार हर प्रकार के सामान से भरे पड़े हैं और 15-20 करोड़ लोगों के पास इतना पैसा है कि वे हर नया माल खरीद सकते हैं। उद्योग और खेती के उत्पादन के कारण बाजार की सम्पन्नता के साथ-साथ शिक्षा का विस्तार हुआ है, निरक्षरता घटी है, जनता की औसत आयु बढ़ी है, यातायात के साधन बढ़े हैं। अनेक एक-से-एक बड़े काम हुए हैं। एक बड़ी बात यह हुई है कि आज का गरीब पहले के गरीब से कम गरीब है। और, लोकतंत्र में उस गरीब को वाणी मिली है। वह अब गूंगा बनकर बैठा रहने को विवश नहीं है। अब वह फरियाद कर सकता है और समय-समय पर अपना असंतोष और गुस्सा भी प्रकट कर सकता है।

हो सकता है कि इन 'सफलताओं' की दिशा और गति को सरकार ने काफी माना हो और इसीलिए पिछले तीन वर्षों में उसने बड़ी पूंजी, बड़े उद्योग, बड़े बाजार की दिशा में बहुत बड़ी छलांग

लगाई है। उसने भारत के बाजार को दुनिया की पूंजी के लिए खोल दिया है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान जैसे धनी देश अपनी थैली लेकर भारत की ओर चल पड़े हैं। सारा मैदान देशी-विदेशी पूंजी और उत्पादन की नई टेक्नोलॉजी के लिए खाली किया जा रहा है। पूंजी वाले अपने मुनाफे के लिए उद्योग लगाएंगे, उन उद्योगों में भांति-भांति की चीजें बनेंगी; उत्पादकों में आपसी होड़ होगी इसलिए कम-से-कम दाम में अच्छा-से-अच्छा माल बनाएंगे; उन्हें उपभोक्ता खरीदेंगे; और ज्यादा खरीदेंगे, खरीदते ही चले जाएंगे। एक दिन आएगा जब देश में उद्योगों का जाल बिछ जाएगा; व्यापार फैलेगा, 'सेवाएं' बढ़ेंगी। पूरी दुनिया एक विशाल बाजार बन जाएगी। इस उद्योगवाद से देश दौलत से भर जाएगा और उपभोक्तावाद से जनता का जीवन-स्तर उठता चला जाएगा। शीघ्र भारत के घर-घर में लक्ष्मी का वास हो जाएगा।

क्या देश को समृद्ध और देशवासियों को सुखी देखकर गांधी जी को अच्छा न लगता, सिर्फ इसलिए कि उन्होंने विकास का कोई दूसरा रास्ता सोचा था और स्वतंत्र भारत के बारे में उनके मन में कोई दूसरा सपना था? देश के सुख का महत्व गांधी जी के सपने से अधिक है। इसलिए सबसे पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि 1951 से लेकर आज तक आठ पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत विकास की जो योजनाएं चलायी गई हैं उन्होंने पांच लाख गांवों को किस प्रकार प्रभावित किया है और आगे के लिए उनकी संभावनाएं क्या हैं। अगर प्रभाव अच्छा पड़ा है, और यह आशा बंधती है कि भविष्य और अधिक उज्ज्वल होगा तो मान लेना चाहिए कि बावजूद कुछ कमियों के हम जिस रास्ते पर चलते आए हैं, और आगे भी चलने वाले हैं, वह सही है।

एक बड़ी बात यह हुई है कि आज का गरीब पहले के गरीब से कम करीब है। और, लोकतंत्र में उस गरीब को वाणी मिली है। वह अब गूंगा बनकर बैठा रहने को विवश नहीं है। अब वह फरियाद कर सकता है, और समय-समय पर अपना असंतोष और गुस्सा भी प्रकट कर सकता है।

हम जरा अपने और पड़ोस के गांवों पर नजर डालें। वे कौन सी चीजें हैं जो फौरन हमारा ध्यान खींचती है? मैं बिहार में रहता और काम करता हूं इसलिए बिहार के ही गांव मेरे सामने हैं।

पहली बात जो ध्यान खींचती है वह यह है कि गांव और पड़ोस में जो थोड़े पक्के मकान हैं और जिन पर रेडियो का एरियल या टी. वी. का एन्टिना लगा हुआ है वे उन लोगों के हैं जिनके पास खेती के अलावा दूसरी कमाई है...व्यापार, नौकरी, ठेकेदारी, चोरबाजारी, दलाली, अपराध, राजनीति या और किसी भ्रष्ट तरीके की। ये ऐसे लोग हैं जिनका संबंध बाजार और सरकारी दफ्तरों से बना हुआ है। जो केवल खेती पर जी रहे हैं वे किसी तरह जी लेते हैं। उनमें भी बहुत कम हैं जिनके ऊपर कर्ज का बोझ न हो, और जो बिना जमीन बेचे बेटी का ब्याह कर पाते हों। सीमांत किसान, दस्तकार, भूमिहीन मजदूर, ये ही हैं जिनकी संख्या गांव में ज्यादा है, और ये ही हैं जिनका हाल सबसे बुरा है। छोटे खेतिहर को खेती पोसाती नहीं, लेकिन उनके पास कोई पूरक धंधा नहीं है। मजदूर को साल भर काम नहीं मिलता; जब कभी मिलता भी है तो पूरी मजदूरी नहीं मिलती। कल क्या करेंगे, क्या खायेंगे, इस प्रश्न का उत्तर उसके पास पहले भी नहीं था, आज भी नहीं है। गांव के उद्योगों का नष्ट होना अंग्रेजी जमाने में शुरू हुआ था। आजादी के बाद भी वही क्रम चलता रहा, और अब तो शायद ही किसी गांव में कोई उद्योग बचा हो। कारीगर और दस्तकार शहरों में रिक्शा चलाने लगे, फुटकर मजदूरी करने लगे।

जो केवल खेती पर जी रहे हैं वे किसी तरह जी लेते हैं। उनमें भी बहुत कम है जिनके ऊपर कर्ज का बोझ न हो और जो बिना जमीन बेचे बेटी का ब्याह कर पाते हों। सीमांत किसान, दस्तकार, भूमिहीन मजदूर, ये ही हैं जिनकी संख्या गांव में ज्यादा है, और ये ही हैं जिनका हाल सबसे बुरा है।

इन बातों से कुल मिलाकर आज के गांव का क्या चित्र बनता है? जमींदारी टूटी, भूमि के अनेक कानून बने, लेकिन भूमि व्यवस्था का ढांचा सामंतवादी ही बना हुआ है। भूमि के मालिक, बटाईदार, मजदूर....जो सीढ़ियां पहले थीं वे आज भी है। पूंजी द्वारा श्रम का शोषण हमेशा की तरह जारी है। बिहार-जैसे राज्य में जमीन के मालिक आम तौर पर 'ऊंची' जातियों के, बटाईदार मध्य जातियों के और मजदूर हरिजन-आदिवासी हैं। मजदूर वस्तुतः बंधुआ है क्योंकि वह मालिक या ठेकेदार के साथ कर्ज की रस्सियों में बंधा हुआ है। कोई योजना न भूमि की व्यवस्था बदल सकी है और न मजदूर को मुक्ति दिला सकी है। प्रश्न उठता है कि भारत के करोड़ों मजदूरों को पहले मुक्ति चाहिए या विकास–लिबरेशन या डवलेपमेंन्ट? अब तो इन चीजों का कोई नाम भी नहीं लेता! खेती घाटे का सौदा है। अपवाद होंगे किंतु सामान्य स्थिति यही है। इसलिए कोई खेती में नयी पूंजी नहीं लगाना चाहता। लोग कहने लगे हैं कि खेती करने से अच्छा है पान-चाय की दुकान खोल लेना या खेत बेचकर पैसा बैंक में रख देना और उसका सूद बैठकर खाना। जिस धंधे में पूंजी न लगे उसका विकास कैसे होगा।

ग्रामीण क्षेत्र के किसी बाजार या मेले में एक ओर से दूसरी ओर चले जाइए और गौर से देखिए कि बड़ी और सजी हुई दुकानों में क्या बिक रहा है। आप देखेंगें कि क्या कपड़ा, क्या दूसरी चीजें, यहां तक कि चटनी, अचार, बिस्कुट, पापड़ और नमकीन और सिर में लगाने के तेल और साबुन, प्लास्टिक की प्लेटें, चम्मच और लोटे, पीने के शर्बत; अब पेप्सीकोला और कोकाकोला, आदि सभी चीजें किसी बड़े शहर के बड़े कारखाने की बनी हुई हैं। गांव में बनता ही क्या है जो बाजार की सजी हुई दुकान में बिके? सब्जी उगाने वाला बूढ़ा कोइरी या आदिवासी औरत अपनी सब्जी लेकर सड़क के किनारे बैठती है। सब्जी के बाजार में दाम शायद कोई आढ़ती तय करता है, ठीक जैसे अनाज दाम उत्पादक नहीं, कहीं दूर बैठा, 'एग्रीकल्चर प्राइसेज कमीशन' तय करता है।

किसी शहर में देख लीजिए सुबह के समय जगह-जगह मजदूरों के समूह रस्सी, कुदाल आदि लेकर खड़े मिलेंगे। वे खड़े रहते हैं इस आशा में कि कोई 'मालिक' या 'बाबू' उन्हें कोई काम कराने के लिए ले जायेंगे। कुछ यही हाल मैट्रिक, ग्रैजुएट या उससे ऊंची कक्षाएं पास लोगों का है। अभी हाल में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' पटना ने पहले पन्ने पर यह विस्तृत खबर छापी थी कि बिहार में इस वक्त 15 हजार पी. एच. डी. बेरोजगार हैं।

लगता है जैसे गांव से एक साथ त्रिविध पलायन हो रहा है--लक्ष्मी का, सरस्वती का, शक्ति का। जिसके पास पूंजी है वह उसे बाजार और शहर में मकान और दुकान में लगा रहा है। पढ़ा-लिखा कोई युवक गांव में रहना नहीं चाहता; रहे भी तो कैसे? मजदूर भी अगर युवक है तो कहीं दूर खदान, कारखाने या शहर के क्षेत्र में काम के लिए निकल जाता है। 35-40 लाख मजदूर अकेले बिहार से फसल के समय दिल्ली, हरियाणा, पंजाब की ओर काम और ज्यादा मजदूरी के लोभ में चले जाते हैं।

यह है गांव की स्थिति। जिस गांव से उसकी लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति निकल जाये उसमें बचता क्या है जिसके भरोसे गांव का पुनर्निर्माण होगा? जानकार लोग बता रहे हैं कि सन् 2 हजार ईस्वी में जब भारत की कुल जनसंख्या एक अरब होगी तो शहरों की आबादी 40 करोड़ होगी, जिसमें पूरे 20 करोड़ सड़कों और झुग्गी-झोपड़ियों और झोपड़-पट्टियों में रहेंगे। आज ही कोई दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि को देख ले। आधा शहर कोठियों में रहता है, आधा झोपड़ियों और 'स्लमों' में ! इन महानगरों में 'भारत' और 'इंडिया' का अंतर साफ दिखायी देता है। भारत में रोजी-रोटी का सहारा न पाकर भारत के भूखे नंगे लोग इंडिया के शरणार्थी होने को विवश हैं। उनका अपना जीवन नारकीय बन चुका है; उनके कारण महानगरों का जीवन नारकीय बन रहा है। यह ऐसी स्थिति है जो समाज के जीवन को छिन्न-भिन्न कर

लगता है जैसे गांव से एक साथ त्रिविध पलायन हो रहा है लक्ष्मी का, सरस्वती का, शक्ति का। जिसके पास पूंजी है वह उसे बाजार और शहर में मकान और दुकान में लगा रहा है। पढ़ा-लिखा कोई युवक गांव में रहना नहीं चाहता; रहे भी तो कैसे?

सकती है। वह इतनी विस्फोटक है कि राष्ट्र के अस्तित्व को खतरे में डाल सकती है। परिस्थिति को कुछ आगे तक देखने, समझने वाले लोग राष्ट्र के संकट के संकेतों को समझ रहे हैं। जगह-जगह चेतावनी के स्वर उभरने भी लगे हैं; समस्याएं आज ही विकट हैं; शीघ्र असाध्य हो जायेंगी।

II

आश्चर्य है कि आजाद भारत आज तक अपनी सबसे बड़ी समस्या का कोई सही समाधान नहीं निकाल सका। क्या आगे भी निकाल सकेगा? यदि हां, तो कैसे? पिछले तीन वर्षों में पूंजी के नये स्रोत ढूंढे गये हैं, नयी यांत्रिकी के लिए देश के दरवाजे खोले गये हैं, औद्योगिक विकास में सरकार का रोल घटाया और देशी-विदेशी कम्पनियों के लिए रास्ता साफ किया गया है। बहुत-कुछ किया गया है लेकिन एक काम नहीं किया गया है.. ..दिशा नहीं बदली गयी है। हां, भारत अब 90 करोड़ के देश से अधिक 20 करोड़ का बाजार कहा जाने लगा है....दुनिया के विशाल बाजार का एक बड़ा टुकड़ा। कारखानों की नयी से नयी मशीनें बाजार को हर तरह के माल से भर देंगी। नित्य नई डिजाइन आएंगी। इनको खरीदेंगे 20 करोड़ लोग, क्योंकि उनके पास ही पैसा होगा। बाकी 70 करोड़....उनके पास न दाम होगा, न काम। नयी मशीनें मनुष्य को सामान दे सकती हैं, काम नहीं। काम वे खुद करती हैं।

III

क्या गांधी जी के पास कोई दूसरा उपाय था? भारत, विशेष रूप से ग्रामीण भारत के संबंध में, उनकी सोच क्या थी? उनके सामने भारत का चित्र क्या था? किस तरह वह उस चित्र को धरती पर उतारना चाहते थे? यदि गांधी जी का रास्ता नेहरू जी के समय ही नहीं पकड़ा गया तो क्यों? क्या अब बहुत देर हो गयी है? क्या अब भी कुछ करने का समय नहीं रह गया है?

आज से ज्यादा नहीं केवल तीन सौ वर्ष पहले भारत दुनिया

का सबसे धनी देश था। आज वह दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक है। क्यों? ऐसा कैसे हो गया? बीच में दो सौ वर्ष अंग्रेजी राज रहा जिसमें रेलें चलीं, सड़कें बनीं, तार लगे, डाकखाने बने, स्कूल-कॉलेज-विश्वविद्यालय खुले, तहसील और जिले से लेकर राजधानी तक सरकार के बड़े-बड़े कार्यालय खुले। निर्माण का बहुत-सा काम ब्रिटिश पूंजी से हुआ। विदेशी व्यापार भी बढ़ा क्योंकि भारत का कच्चा माल, जैसे कपास अंग्रेजों के देश जाने लगा और वहां से तैयार माल जैसे कपड़ा भारत आने लगा। भारत विदेश की पूंजी से जुड़ा, ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापार से जुड़ा, औद्योगिक क्रान्ति से जुड़ा, लेकिन पहली बार ऐसा हुआ कि भारत को अपना कच्चा माल विदेशियों के हाथ सस्ता बेचना और उनका तैयार माल महंगा खरीदना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के धन्धों का....पहले वस्त्रोद्योग का....टूटना शुरू हुआ, तथा कारीगर और दस्तकार बेरोजगार होने लगे। भारत की लक्ष्मी समुद्र पार जाने लगी। भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन गया....दरिद्र और शोषित। इस बात का उल्लेख स्वतंत्रता की उस प्रतिज्ञा में है जो पहले-पहले 26 जनवरी 1930 को देश भर में ली गयी। उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष...तब राष्ट्रपति कहे जाते थे....पं. जवाहरलाल जी थे। प्रतिज्ञा महात्मा गांधी ने बनायी थी। उस प्रतिज्ञा में यह बात साफ-साफ कही गयी है कि भारत के चौतरफा ह्रास होने का कारण उसके उद्योगों का विनाश है जिसकी पूरी जिम्मेदारी अंग्रेजी राज पर है।

क्या अर्थ है गांव की अर्थनीति का? इसका सीधा अर्थ है कि गांव को एक पूर्ण इकाई माना जाये–उत्पादन की, उपभोग की, स्व-शासन की।

अंग्रेजी राज में जो विदेशी व्यापार बढ़ा और जो कारखाने खुले वे बड़े शहरों में। जो उत्पादन विकेंद्रीत ढंग से हजारों गांवों में होता था वह कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि में केन्द्रित हो गया। क्रमशः गांव अपना कच्चा माल शहरों के हाथ सस्ता बेचने तथा शहरों का तैयार माल महंगा खरीदने को विवश होते गये। इस विवशता का अर्थ था गरीबी, बेरोजगारी और गांव छोड़कर शहरों की शरण में जाना। गांव अपने ही नगरों के उपनिवेश हो गये। इस देशी उपनिवेशवाद को देखकर गांधी जी ने कहा था...अंतिम समय तक कहते रहे....कि भारत के शहरों ने भारत के गांवों का खून चूस लिया है (ब्लेड दी विलेजेज व्हाइट)। क्या यह बात गलत है?

गांधी जी का आग्रह था कि स्वतन्त्र भारत में अंगेजों की चलायी हुई ग्राम-विरोधी अर्थनीति को छोड़कर ग्रामीण अर्थनीति को सुदृढ़ किया जाये और उसी को राष्ट्रीय अर्थनीति तथा पुनर्निर्माण का आधार बनाया जाये। क्या अर्थ है गांव की अर्थनीति का? इसका सीधा अर्थ है कि गांव को एक पूर्ण इकाई माना जाये....उत्पादन की उपभोग की, स्व-शासन की। अगर कोई गांव छोटा हो तो कई छोटे टोलों को मिलाकर एक हजार से दो हजार तक की जनसंख्या की इकाई बना ली जाये। कई गांव अकेले ही इस जनसंख्या के हो सकते हैं। इन्हीं ग्राम-इकाइयों को पुनर्निर्माण का आधार माना जाए।

गांव के उद्योगों को नष्ट कर अंग्रेजों ने लक्ष्मी को गांव से निकल जाने दिया था। अगर लक्ष्मी को वापस बुलाना है तो वह उद्योगों के द्वारा ही लौट सकती है।

गांव का पुनर्निर्माण शुरू होता है गांव के उद्योगीकरण से, घर-घर के उद्योगीकरण से। बेकार समय तथा बरबाद होने वाले साधनों के सदुपयोग से उद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है।

गांव के उद्योगों को नष्ट कर अंग्रेजों ने लक्ष्मी को निकल जाने दिया था। अगर लक्ष्मी को वापस बुलाना है तो वह उद्योगों के द्वारा ही लौट सकती है।

गांव में जो कच्चा माल पैदा होता है उसका तैयार माल गांव में ही बने, यह गांव के उद्योगीकरण का पहला सूत्र है। दूसरा सूत्र यह है कि गांवों के लोग अपनी बुनियादी आश्यकताओं की पूर्ति, जहां तक सम्भव हो गांव के उत्पादन से करें, भले ही कोई सामान तैयार करने के लिए कच्चा माल बाहर से लेना पड़े, हाजीपुर का टमाटर चटनी बनाने के लिए बंगलौर जाये या बिहार की अरहर कानपुर में दली जाये और फिर लौटकर बिहार में खायी जाये, सोचिए यह भी कोई उद्योगीकरण है।

प्रश्न यह उठाया जाता है कि क्या आज के जमाने में ऐसी 'स्वदेशी' संभव है? सच्चाई तो यह है कि आज के जमाने में ऐसा होना पहले से ही कहीं ज्यादा सम्भव है; सम्भव ही नहीं उचित और आवश्यक है। क्यों? इसलिए कि आगे आने वाला युग 'छोटी मशीन' का है। नये आविष्कारों के कारण छोटी मशीन उतनी ही सक्षम है जितनी बड़ी मशीन, बल्कि उससे ज्यादा। मिसाल के लिए ट्रांजिस्टर को देख लीजिए। टेक्नोलाजी की यही दिशा लगभग हर क्षेत्र में है। इसलिए क्षमता को पूरे तौर पर कायम रखते हुए

उत्पादन को विकेन्द्रित करना....क्षेत्र, गांव तथा घर तक....संभव हो गया है। साथ ही यह भी संभव होता जा रहा है कि सामाजिक लक्ष्यों को सामने रखकर मनचाही टेक्नोलाजी तैयार की जा सकती है। कुछ ग्राम-इकाइयों की कल्पना कीजिए जिनमें विकेन्द्रिकृत उद्योगीकरण के अंतर्गत चीजों का उत्पादन हो रहा है। अच्छी डिजाइनों के कपड़े, खाने की चीजें, साबुन, तेल, मकान बनाने का सामान बन रहा है। बालपेन, ट्रांजिस्टर, टी. वी., बिजली के विविध सामान, किताबों की छपाई आदि सब चीजें जो साफ सुखी जीवन के लिए आवश्यक हैं, गांव या पड़ोस के क्षेत्र में आसानी से तैयार हो सकती हैं। बिजली या सौर-ऊर्जा हर घर में पहुंच सकती है। छोटी-मशीनें घर-घर में बिठायी जा सकती हैं। कुछ अधिक लोगों को साथ काम करना हो तो जगह-जगह, लेकिन घर के करीब, कुछ बड़े काम-घर या परिश्रमालय बनाये जा सकते हैं।

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अगर हम देश के पांच लाख गांवों का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तथा उसमें रहने वाली देश की बहुसंख्यक जनता का आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर उठाना चाहते हैं तो गांव को मात्र 'घरों का समूह' मानकर सोचने की परिपाटी छोड़ देनी पड़ेगी। हम आज तक यही करते आये हैं। हमें अब गांव को हरिजनों, आदिवासियों, बैकवर्डों, औरतों आदि को अलग-अलग टुकड़ों में देखने तथा हर टुकड़े के लिए विकास की एक अलग योजना बनाने की आदत छोड़नी पड़ेगी। गांव वास्तव में एक समग्र इकाई है जिनके पास जमीन, जंगल, पानी जैसे प्राकृतिक साधन हैं। कुछ हुनर उन्हें परिवार की परंपरा से प्राप्त हैं। यद्यपि पिछले वर्षों में अनेक कारणों से समाज बहुत टूटा है, फिर भी सह-अस्तित्व की पद्धति किसी हद तक कायम है। उसका हमें लाभ उठा लेना चाहिए। भले ही दुनिया एक बाजार बन जाये, भले ही चुने हुए क्षेत्रों में देशी-विदेशी पूंजी का गठबंधन हो, लेकिन गांव को लोकल, पड़ोस की अर्थनीति चाहिए जो एग्रो इंडस्ट्रियल यानि खेती-उद्योग-पशुपालन की ही अर्थनीति हो सकती है। इस अर्थनीति की शर्त है कि गांव का अपने साधनों पर स्वामित्व हो और अपने पुनर्निर्माण की योजना स्वयं बनाने की छूट हो। योजना गांव की, शिक्षण संस्था का, साधन सरकार का, यह फार्मूला है गांव के पुनर्निर्माण का....सरकार की नौकरशाही के द्वारा नहीं, बल्कि गांव के द्वारा। हम गहराई से देखें तो यह योजना शिक्षण और निर्माण की समन्वित योजना होगी जिसमें प्रक्रिया शिक्षण की होगी; निर्माण उसका प्रतिफल होगा।

IV

पंचायती राज की योजना लागू की जा रही है। नये कानून के अनुसार मध्य प्रदेश में चुनाव भी हो चुके हैं। नयी पंचायतें नये अधिकारों और नयी जिम्मेदारियों के साथ बन गयी। क्रमशः दूसरे राज्यों में भी बनेंगी। संविधान ने पंचायतों की कल्पना 'स्वशासन की इकाइयों' के रूप में की है, राज्य या केन्द्र की सरकार की मातहत एजेंसी (सर्बोडिनेट एजेंसी) के रूप में नहीं। इसलिए प्रश्न यह उठता है कि पंचायती राज की अर्थनीति क्या होगी? क्या अपनी जनता की आवश्यकताओं को देखकर स्वतंत्र अर्थनीति विकसित करने की छूट उन्हें होगी? या, 'विकेन्द्रित' पंचायतें भी गांव-गांव में उसी अर्थनीति को चलाने के लिए विवश होंगी जो अब तक चलती आयी है, जो केन्द्रित, अति-केन्द्रित है, और सरकार की नयी अर्थनीति के अंर्तगत आगे भी चलेगी? अगर केन्द्रित अर्थनीति के अंर्तगत केन्द्र के मुकाबले राज्यों की स्वायत्ता, बावजूद संविधान की शर्तों के बराबर घटती चली गयी है तो यह मानने का कोई कारण नहीं हैं कि पंचायतें 'स्व-शासन' की रक्षा कानून के बल पर कर पायेंगी। गांधी जी के अनुसार पंचायती राज पड़ोस-निर्माण (नेबरहुड-बिल्डिंग) की प्रक्रिया है। वह तो यहां तक कह गये कि अगर भारत गणराज्य है तो पंचायत का चरित्र भी गणराज्य का ही होना चाहिए। गणराज्य का चरित्र आने से ही पंचायत स्व-शासन की इकाई बन सकेगी। केन्द्र या राज्य सरकार के पैसे पर, जीने वाली या सरकारी अधिकारियों की बैसाखी पर चलने वाली पंचायत अपना 'स्व' नहीं विकसित कर सकेगी और मात्र ढांचा बनकर रह जायेगी।

हमें अब गांव को हरिजनों, आदिवासियों, बैकवर्डों, औरतों आदि को अलग-अलग टुकड़ों में देखने तथा हर टुकड़े के लिए विकास की एक अलग योजना बनाने की आदत छोड़नी पड़ेगी। गांव वास्तव में एक समग्र इकाई है। जिसके पास जमीन, जंगल, पानी जैसे प्राकृतिक साधन है।

भारत एक प्राचीन, विविध और विशाल देश है। इसकी अनेक समस्याओं की जड़ें बीते इतिहास में है। इसकी विशालता और विविधता के कारण इसकी समस्याएं सामान्य से कहीं ज्यादा जटिल हो गयी हैं। अफ्रीकी नेता नेरेरे ने रोम के अपने एक भाषण में ठीक कहा था कि ग्रामीण विकास राष्ट्रीय विकास है...रूरल डेवलपमेंट इज नेशनल डेवलपमेंट। राष्ट्र का विकास एक दिशा

(शेष पृष्ठ 83 पर)

सबै भूमि गोपाल की

✍ सुरेश राम भाई

जमीन पर स्वामित्व के बारे में पूछे जाने पर गांधी जी ने कहा था कि "सबै भूमि गोपाल की" अर्थात् जमीन पर जनता का हक होना चाहिए। स्वामित्व के वर्तमान दोषों की चर्चा करते हुए लेखक ने कहा है कि आज गांवों में जमीन पर ग्राम पंचायतों का स्वामित्व होना चाहिए। केंद्र या राज्य सरकार को भी अगर जरूरत हो तो उन्हें भी इसके लिए ग्राम पंचायत से ही सम्पर्क करना चाहिए।

"स्वराज्य में जमीन का क्या होगा"--यह सवाल दिसम्बर 1936 में महात्मा गांधी से किया गया।

उन्होंने जवाब दिया--"इसका उत्तर तो हमारे पुरखे लोग दे चुके हैं। उनकी सिखावन है "सबै भूमि गोपाल की।" गोपाल का शाब्दिक अर्थ है गाय पालने वाला। इसका अर्थ ईश्वर भी होता है। आधुनिक भाषा में इसकी मुराद "राज्य" से है, अर्थात् जनता से।

"यह कौन नहीं जानता कि आज जमीन जनता की नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस समस्या के समाधान के लिए हम ऐसा सुन्दर मार्ग निकाल सकेंगे जो रूस सहित किसी भी राष्ट्र के लिए सम्भव है और वह मार्ग अहिंसा का होगा।

"जमीन और सारी सम्पत्ति पर स्वामित्व उसका है जो उस पर श्रम या मेहनत करें। दुर्भाग्यवश श्रमिक इस सरल सत्य से नावाकिफ है या नावाकिफ रखे गये हैं।"

आजादी के बाद दीन दलित किसानों की भलाई की खातिर देशभर में जोर-शोर से प्रोग्राम चलाए गए। विभिन्न प्रांतों, प्रदेशों की सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार की दृष्टि से अनेक कानून बना डाले।

मगर जैसा विश्वविख्यात स्वीडिश अर्थशास्त्री गुन्नार मिरडल ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ 'दि एशियन ड्रामा' में दुखपूर्वक बताया है, इन कानूनों की विविध धाराओं में ऐसी ढील दी गई कि सर्वहारा भूमिहीन की मुसीबत-जदा हालत में कोई कारगर फर्क नहीं पड़ा।

खेतीशाहों का राज

इससे भी ज्यादा भयंकर सत्य है कि पिछले तीस-पैंतीस वर्षों में भूपतियों या खेतीशाहों का एक नया वर्ग उभर उठा है। उसके पास भूमि और खेती के संसाधनों के स्वामित्व के अलावा वोट की भी ताकत है। इस वजह से क्या राजनीतिक नेता या सरकारी अधिकारी और क्या तथाकथित समाजसेवी सभी उसकी ड्योढ़ी पर माथा झुकाते और उसकी खुशी में ही अपने को सलामत महसूस करते हैं।

सुप्रसिद्ध अमरीकी भूमि विशेषज्ञ डैनियल थार्नर का कहना है कि एक बार कृषि संबंधी अध्ययन के दौरान वह तमिलनाडु के तंजावूर जिले का दौरा कर रहे थे। संयोग से वहां देहात में बड़ा भारी मेला लगा था। सूरज डूबने पर लोग अपने घर लौटने लगे। थार्नर ने काफी समय वहां बिताया और शाम को तंजावूर नगर के होटल में अपने निवास के लिए चल दिए। रास्ते में देखा कि एक तालाब के पास तीन फटेहाल औरतें अपने सर पर घास के बोझ लिए जा रही हैं। थकान की वजह से उन्होंने गट्ठर उतार कर रख दिये और आपस में बातचीत करने लगीं। थार्नर भी वहीं रुक गये और उन्हें यह जिज्ञासा हुई कि उन महिलाओं की बात को जानें।

अपने दुभाषिए से उन्होंने पूछा, "यह आपस में क्या कह रही हैं?" उसने बताया--"इन्हें इस बात का बड़ा दुःख है कि आज उनकी घास नहीं बिकी और रात को बच्चों को फाका करना पड़ेगा।"

"और क्या कह रही हैं?"

दुभाषिये ने कहा--"ज्यादा मत पूछिए। इनकी हालत आप समझ ही गये।"

थार्नर ने आग्रह किया--"आपकी बड़ी मेहरबानी होगी अगर आप इनकी बातचीत का सारांश स्पष्ट रूप से मुझे बता दें।"

"तो सुनिए। वे कह रही हैं कि आज मेले में बड़े भूमिवानों की औरतों के बदन पर जो सोने के जेवर चमक रहे थे वे हमारे खून से बने हैं।"

कैसी भयानक है खेतीशाहों और बेजमीनों के बीच की यह खाई। वस्तुस्थिति यह है कि लगभग एक चौथाई भूमि पांच फीसदी लोगों के कब्जे में है। साठ प्रतिशत है बीस फीसदी के पास और बाकी पन्द्रह प्रतिशत पर तीन चौथाई आबादी को गुजारा करना पड़ता है।

ऐसी हालत में कौन ताज्जुब है कि हमारे देशवासियों में लगभग पैंतालीस करोड़ गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करते

हैं। और जमीन के दाम तो आसमान को छू रहे हैं। महाराष्ट्र में कहीं कहीं तो एक वर्ग फुट की कीमत आठ हजार रुपया है यानि एक एकड़ के पैंतीस करोड़ रुपये।

नई पीढ़ी की मांग

असल में होना क्या चाहिए? इलाहाबाद जिले की करछना तहसील के देहात का प्रसंग है। दिन के ग्यारह बजे करीब एक गांव से गुजर रहा था। वहां के प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर ने मुझे बुलाया और कहा, "आपके पास समय हो तो मेरे बच्चों को भूदान का सन्देश सुनाते जाइए।"

वस्तुस्थिति यह है कि लगभग एक चौथाई भूमि पांच फीसदी लोगों के कब्जे में है। साठ प्रतिशत है बीस फीसदी के पास और बाकी पन्द्रह प्रतिशत पर तीन चौथाई आवादी को गुजर करना पड़ता है।

उन्होंने लड़कों को खुले मैदान में सुन्दर कतारों में बिठा दिया। मेरी निगाह एक बच्चे पर पड़ी—चेहरा उतरा हुआ, मुंह सूखा हुआ, नाक बहती हुई, आंखे अधखुलीं। उसे गोद में उठाकर मैंने पूछा--आज तुमने रोटी खाई?"

उसने सिर हिलाकर इशारे से बताया--"नहीं।" गले से बोल नहीं निकल रहा था।

फिर मैंने उससे कहा--"बताओ आज तुमने क्या खाया?"

धीरे से वह बोला--"महुआ" और चार उंगलियां दिखाई। अर्थात् आज उसने अनाज नहीं खाया और उसकी मां ने पेड़ के नीचे से बीने महुवा के चार दाने उसके मुंह में डालकर उसे भेज दिया।

"क्यों, कोई लड़का इस बच्चे को पहचानता है?" मैंने जानना चाहा।

एक लम्बा तगड़ा छात्र खड़ा हो गया--"हम इसे जानते हैं। यह हमारे गांव में ही रहता है।"

"इसका बाप क्या करता है?"

"बेजमीन है, कभी काम पा गया तो मजूरी कर लेता है।"

और तुम्हारे पिता क्या करते हैं?"

"सो क्या पूछते हैं! ढाई बीघे जमीन के मालिक हैं।"

"क्या सबूत?" मेरा सवाल था।

"उनके नाम जमीन का पट्टा है।"

तब मैंने सब बच्चों से ऊपर आकाश की तरफ इशारा करते हुए कहा--"इसका मालिक कौन है?"

एक स्वर से—"भगवान।"

"बगल में जो कुआं है उसके पानी का मालिक कौन है?"

वही आवाज-"भगवान।"

"तो बताओ जमीन का मालिक कौन है?"

जोरों से--"भगवान।"

"लेकिन जमीन के तो पट्टे हैं इनका क्या करना चाहिए?"

एक ने कहा—"आग में फूंक देना चाहिए।"

मैंने अपने सवाल दोहराए—

"जमीन का मालिक कौन है?

"भगवान! भगवान! भगवान!"

"पट्टों का क्या करना है?"

"फूंक दो! फूंक दो! फूंक दो!"

यह मांग है नई पीढ़ी की--जमीन की खरीद बिक्री खत्म हो। यह वही सच्चाई है जो महात्मा गांधी ने 1936 में कही थी--"सबै भूमि गोपाल की।"

भूदान का संदेश

बिनोवा भावे जी ने भूदान आंदोलन के द्वारा इसी का प्रचार किया। वह गांव-गांव जाते और भूमिवान से कहते--घर में आप पांच सदस्य हैं। भूपिहीनों के प्रतिनिधि के रूप में मुझे छठा मानिए और इसलिए उनकी खातिर अपनी जमीन का छठा हिस्सा मुझे दीजिए। उन्होंने कहा--दान सविभागः (दान माने समान वितरण)।

तेरह साल तक विनोबा जी ने [illegible]ल चलते हुए देश [illegible]ं घर-घर भूदान का संदेश दिया। उन्होंने वेद का हवाला देकर कहा--माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या। (भूमि हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं, भूमि पुत्र हैं न कि भूमिस्वामी या भूमिपति)।

भूदान आंदोलन कल्पना की दृष्टि से ऐसा मौलिक है, शैली की दृष्टि से इतना अद्भुत है और उद्देश्य की दृष्टि से इतना क्रांतिकारी है कि इसको समझने और सही संदर्भ में रखने के लिए विशेष प्रयत्न की जरूरत है।

भूमिहीनों के लिए लगभग चालीस लाख एकड़ जमीन विनोबा जी को मिली। इसमें से आधी के करीब बांटी जा चुकी है। इस भूदान आंदोलन के बारे में हमारे देश के महान अर्थशास्त्री, प्रोफेसर डी. आर. गाडगिल ने अपने एक भाषण में दिसम्बर 1957 में कहा—

"भूदान आंदोलन कल्पना की दृष्टि से ऐसा मौलिक है, शैली की दृष्टि से इतना अद्भुत है और उद्देश्य की दृष्टि से इतना क्रांतिकारी है कि इसको समझने और सही संदर्भ में रखने के लिए विशेष प्रयत्न की जरूरत है।"

क्या ही अच्छा होता कि भूदान के काम को कांग्रेस पार्टी तथा अन्य पार्टियां अपना सहयोग देतीं और भूमिहीनों के लिए भूमि प्राप्त कर उनमें बांट देतीं। लेकिन तात्कालिक हित या वोट के मोह में सभी नेताओं और संगठनों ने भूदान से मुंह फेर लिया। नतीजा यह हुआ कि भूमि विषमता ने, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बहुत उग्र रूप ले लिया। और आज देश पहले से कहीं ज्यादा गरीबी व लाचारी का शिकार हो गया है और साथ ही सरकार कर्ज का सहारा ले रही है जिसकी वजह से विदेशी और भीतरी ऋण और उनका ब्याज लगातार बढ़ रहा है जिससे संसार के सबसे ज्यादा कर्जदार पांच देशों में भारत का नाम दर्ज हो गया है।

ग्राम स्वराज्य लाना है

अब क्या किया जाए?

उपाय एक ही है-- "सबै भूमि गोपाल की"- वाला सूत्र अपनाया जाए और निष्ठापूर्वक उस पर अमल किया जाए। इसका आशय है कि गांव-गांव में जो जमीन है उस पर स्वामित्व किसी व्यक्ति या सरकार का न होकर ग्राम पंचायत का हो और जमीन की खरीद बिक्री हमेशा के लिए बन्द हो।

दूसरे शब्दों में, गांव की जमीन का वितरण एवं उपयोग ग्राम पंचायत के माध्यम से किया जाए। खेत गांव का, खेती किसान की"- के आधार पर जमीन जोतने वाले को दी जाए और गांव के उद्योग धंधों--पशु-पालन, शिक्षा आदि के लिए जमीन रखी या नियत की जाए ताकि गांव में कोई बेरोजगार न रहे। राज्य सरकार या केन्द्र को या किसी अन्य समुदाय या संस्थान को जमीन की जरूरत हो तो उसका फैसला ग्राम पंचायत ही करेगी जिसमें किसी गैर का कोई दखल नहीं होगा। विनोबा जी के शब्दों में ब्रिटिश से प्राप्त स्वराज्य दिल्ली या प्रदेशों की राजधानियों में अटक कर रह गया है, उसे गांव-गांव पहुंचाकर ग्राम स्वराज्य की स्थापना करनी है।

सी-1/2,
माडल टाउन, दिल्ली

पृष्ठ 19 का शेष

इसीलिए गांधी जी ने "अंत्योदय" की बात की थी। विकास की पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसका लाभ सबसे कमजोर को सबस पहले मिले। विकास की दिशा ऊपर से नीचे की ओर नहीं बल्कि नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए। विषमता को मिटाने का और समाज में समानता लाने का यही तरीका हो सकता है।

अगर व्यवहार में यह मान भी लिया जाए कि सबका विकास एक साथ नहीं हो सकता तब भी सामाजिक न्याय का यह तकाजा है कि जो गरीब या कमजोर है उसको पहले ऊपर उठाना चाहिए। इसीलिए गांधी जी ने 'अंत्योदय' की बात की थी। विकास की पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसका लाभ सबसे कमजोर को सबसे पहले मिले। विकास की दिशा ऊपर से नीचे की ओर नहीं बल्कि नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए।

विकास सर्वांगीण होना चाहिए और सबका होना चाहिए, इस बात को आदर्श के रूप में मान लेने पर भी अभी तक शास्त्रीय चर्चा में कई बार हम "Greatest good of the Greatest Number" — अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण — तक रुक जाते हैं। हम यह मान लेते हैं कि "सब व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास" रेखागणित की रेखा की तरह एक ऐसा आदर्श है जो व्यवहार में प्राप्त नहीं हो सकता। जब सब को छोड़कर हम अधिकतम पर आ जाते हैं तो यह मान लेते हैं कि कुछ को तो विकास के लाभ से वंचित रहना ही पड़ेगा। लेकिन वे 'कुछ' कौन होंगे और 'अधिकतम' में कौन आयेंगे, यह कौन तय करेगा? जाहिर है कि जो कमजोर और बेज़बान हैं वे ही वंचित रहेंगे, और 'अधिकतम' की कल्पना भी संकुचित होते-होते व्यवहार में बहुमत, और फिर केवल समाज के सबसे ताकतवर लोगों तक सीमित रह जाएगी। इस प्रकार जहां हमने व्यवहार के नाम पर एक बार आदर्श को ढीला किया तो उसका नतीजा हमें कहां तक ले जाएगा यह निश्चित नहीं कहा जा सकता।

चौड़ा रास्ता,
जयपुर-302003

मद्रास बंदरगाह

विश्व बाज़ार में आपका सम्बन्ध

- मद्रास पोर्ट एक अनोखा पोर्ट है जिसमें सभी प्रकार के कार्गो की सम्हलाई सुविधाओं सहित 24 बर्थ हैं।
- वर्ष 1993-94 के दौरान 26.54 मिलियन टन कार्गो सम्हाला गया।
- इस पोर्ट में चौथी पीढ़ी के कन्टेनर जहाजों को प्राप्त करने के लिए अति नवीनतम समर्पित कन्टेनर केन्द्र है।
- सूखा थोक और द्रव थोक के लिए समर्पित केन्द्र है।
- गारंटीकृत उपार्जन करने वाले कन्टेनर लाइनों के लिए बर्थ आरक्षण योजना उपलब्ध है।
- केबोटेज कानून में छूट देकर प्रमुख लाइन कन्टेनर प्रचालकों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।
- उपभोक्ताओं के साथ संचार संबंध और इंटर मॉडल अन्तरण के कन्टेनरों के लिए उत्तम सुविधाएं प्रदान करता है।
- यह पोर्ट परिवर्तन और लगातार आधुनिकीकरण के जरिये दक्षता हासिल करने के लिए वचनबद्ध है।
- जहाजों के आने पर उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है तथा उनकी रक्षा करता है।
- यह पोर्ट और अन्य सभी साथ पोतवणिक प्रतियोगी दरों की मांग करते हैं।
- ग्राहकों का ध्यान और कार्गो की देख-रेख ही हमारा उद्देश्य है।

दक्षिण भारत में पूर्वी द्वार खुला हुआ है।
कृपया पधारें

टेलेक्स : 041 8331
फैक्स : 044 561228
तार : पोर्ट्रस्ट

मद्रास पोर्ट ट्रस्ट
राजाजी साले
मद्रास - 600 001

दूरभाष : (44)562201
(44)560151

बापू की आखिरी वसीयत और ग्रामीण विकास

डा० रामजीसिंह

लेखक के अनुसार गांधी जी चाहते थे कि देश में पंचायती राज व्यवस्था से शासन व्यवस्था शुरू हो। यह व्यवस्था पिरामिड की तरह ऊपर बढ़े और पंचायतें जो प्रतिनिधि चुनकर भेजें वे जिलों और प्रांतों का शासन चलाएं। पंचायत संस्कृति का आधार संसदीय प्रणाली की तरह बहुमत न होकर लोक सम्मति यानी आम सहमति होता है। लेखक ने कहा है कि अब जब हम पंचायत प्रणाली को नवजीवन दे रहे हैं इसमें भी 'आम राय' को आधार बनाया जाना चाहिए। पंचायतों को सशक्त बनाकर ही हम ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। लेखक का यह भी मानना है कि गांवों में उद्योग लगाए बगैर ग्रामीण विकास की बात करना बेमानी है। गांवों में शिक्षा-व्यवस्था की ओर ध्यान देना भी जरूरी है। अंत में लेखक ने कहा है कि गांधी जी की 125वीं जयंती के अवसर पर हमें गांवों की ओर मुड़ ही जाना चाहिए और जितनी राशि उर्वरकों सिंचाई और बिजली की सब्सिडी पर खर्च की जा रही है उतनी अगर गांवों में मूलभूत ढांचा खड़े करने पर की जाए तो गांवों की तस्वीर बदल जाएगी।

अपनी शहादत की सुबह 30 जनवरी को बापू ने जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंत्री को बुलाकर एक दस्तावेज दिया तो उसमें उन्हें स्पष्ट रूप से शहरों एवं नगरों की अपेक्षा भारत के सात लाख गांवों की सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता की चिन्ता थी। यही कारण था कि उन्होंने राष्ट्रीय संग्राम को संचालित करने वाली महान कांग्रेस को भी विघटित कर लोक सेवक संघ के रूप में पुनर्जन्म का सुझाव दिया था ताकि लोक सेवा की परम्परा अक्षुण्ण रहे। उन्होंने इस सत्य को समझ लिया था कि भारत के विकास को गांवों के विकास के रूप में ही समझना होगा।

"भारत माता ग्रामवासिनी"

अफसोस है कि हम आजादी के 47 साल के बाद भी इस सत्य को अच्छी तरह से नहीं समझ पाये हैं और आज एक ही देश की दो तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं– 'इंडिया' और 'भारत'। कहना नहीं होगा कि जब हम बंबई, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर आदि महानगरों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, गुलाबी सड़कों, भीमकाय यंत्रशालाओं, वातानुकूलित दुकानों आदि को देखते हैं तो लगता हैं कि हम लंदन, मास्को, न्यूयार्क की सभ्यता-स्तर के करीब हैं, लेकिन जब भारत के लाखों गांवों की ओर नजर डालते हैं तो वहां की झोपड़ियों में मिट्टी के तेल का टिमटिमाता या बुझा हुआ वही चिराग, कुओं एवं तालतलैयों से पीने का पानी, गिरते हुए स्कूल भवन और दिल को दहलाने वाली दरिद्रता, अशिक्षा और बेरोजगारी देखने को मिलती है। दुर्भाग्य तो यह है कि नगरोन्मुख विकास की इस दौड़ में गांवों का वह भारत पीछे छूट गया जिसमें अभी भी देश की कम से कम तीन चौथाई जनसंख्या तो निवास करती ही है।

इसलिए उस आखिरी वसीयत में गांधी ने भारत के विकास के लिये गांवों की संरचना के आधार पर अर्थ-व्यवस्था ही नहीं शासन-व्यवस्था की कल्पना की थी।

इसमें गांधी जी की भावुकता या कोई सनक नहीं थी, बल्कि भारत के यथार्थ की पहचान ही थी। भारत के अक्षय एवं अखंड पुरुषार्थ गांवों की ठोस संरचना में छिपी है। इसी ने हमारी मृत्युजंयी सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित रखा। हमारी अर्थ व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था एवं शासन व्यवस्था को प्रचंड झंझावातों के बीच भी स्थिर रखा। रोम, मिस्र, बेबीलोन आदि की सभ्यताओं का नामोनिशां मिट गया लेकिन भारत में आर्य-अनार्य, द्रविड़, निषाद, किरात, शक, शीथियन, गुर्जर, प्रतिहार फिर यवन, मुगल और अंग्रेज आये लेकिन भारत की सभ्यता की जड़ें नहीं हिलीं, राज्य एवं शासन बदलते गये लेकिन गांवों का शासन अक्षुण्ण रहा। हमारी शिक्षा, हमारी कला, संगीत, ज्योतिष, कृषि आदि सबों को स्वावलम्वीन ग्रामव्यवस्था ने सुरक्षित एवं संरक्षित रखा। आक्रान्ता आए और गए लेकिन उन्होंने केवल नगरों को लूटा-खसोटा, ध्वस्त किया, प्रताड़ित किया, लाखों गांवों का भारत बहुत प्रभावित नहीं हुआ। यही है 'शाश्वत हिन्द स्वराज' का रहस्य। शाश्वत हिन्द स्वराज की इस संरचना को ही 'पंचायत' कहा जाता है जो हमारी सर्वोदयी संस्कृति का आधार है। अपनी आखिरी वसीयत में भूमिका के पश्चात् ही प्रथम अनुच्छेद में इसीलिए गांधी जी ने ग्रामीण-समाज एवं ग्रामीण-भावना के आधार पर पांच-पांच व्यक्तियों को लेकर ही प्रत्येक गांव में एक पंचायत बनाने का प्रस्ताव रखा। पंचायत-संस्कृति का अधिष्ठान है—लोक सम्मति। यही है लोक स्वराज्य। यहां दलीय व्यवस्था के लिए स्थान नहीं

* कुलपति, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

हो सकता, वर्ना गांव टूट जाएगा। हमारी संस्कृति में संसदीय जनतंत्र परम्परा को डालना पंचायत की आत्मा को कलुषित करना

आज एक ही देश की दो तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं– 'इंडिया' और 'भारत'। कहना नहीं होगा कि जब हम बंबई, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर आदि महानगरों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, गुलावी सड़कों, भीमकाय यंत्रशालाओं, वातानुकूलित दुकानों आदि को देखते हैं तो लगता है कि हम लंदन, मास्को, न्यूयार्क की सभ्यता स्तर के करीब है, लेकिन जब भारत के लाखों गांवों की ओर नजर डालते हैं तो वहां की झोपड़ियों में मिट्टी के तेल का टिमटिमाता या बुझा हुआ वही चिराग, कुंओं एवं तालतलैयों से पीने का पानी, गिरते हुए स्कूल भवन और दिल को दहलाने वाली दरिद्रता, अशिक्षा और बेरोजगारी देखने को मिलती है।

है। कहा ही गया हैं- 'पंच बोले परमेश्वर'। निष्पक्ष होकर एक स्वर से जो सबों की आवाज होती है उसमें परमेश्वर दीखते हैं। यह व्यापक लोक सम्मति ही पंचायत की आत्मा है -"जो पांचहि मत लागहिनी का।" ऐसा नहीं कहा गया कि जो बहुमत को अच्छा लगे, बल्कि जो काम सर्वसम्मत या सर्वानुमति से हो वही सुंदर है, वही समाज को सुव्यवस्थित रख सकता है। हजार वर्षो की गुलामी के बावजूद भी भारत की अर्थ व्यवस्था और सभ्यता-संस्कृति इसलिए अक्षुण्ण रही कि गांवों में पंचायत का विधान अक्षुण्ण रहा। इसी व्यवस्था ने गांवों को कायम रखा जिसके कारण हमारी संस्कृति आज तक जीवित है। कवि ने ठीक की कहा है :- "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।"

दुर्भाग्य से जब हमारे राष्ट्र का संविधान बनने लगा तो हमने पंचायती संरचना के बदले ब्रिटेन के संसदीय प्रजातंत्र को संविधान का आधार माना। नतीजा आज सामने है। दलीय व्यवस्था ने देश को तोड़ डाला है। दल के लिये देश का हित भी हम भूलते जा रहे हैं। येन-केन प्रकारेण वोट प्राप्त करने के लिये हमने कभी रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद के सवाल को उठाया तो कभी आरक्षण के पक्ष-विपक्ष में उलझे। विकास की अवधारणा एवं शिक्षा-संस्कृति की दिशा का निर्धारण भी दलीय दृष्टिकोण से हो रहा है। इस दूषित दलीय व्यवस्था ने दल-बदल की प्रवृत्ति को चिरंतन बना दिया। यही नहीं वोट छीने भी जाते हैं एवं खरीदे भी। चुनाव में इस प्रकार का भ्रष्टाचार लोकतंत्र का श्राद्ध है। अफसोस यही है कि हमारे नीति नियामकों ने सर्वप्रथम भूल तो यह की कि गांधी जी द्वारा पंचायती संरचना के आधार पर शासन व्यवस्था को तो बिल्कुल ही नकार कर पाश्चात्य संसदीय एवं दलीय लोकतंत्र को अपना लिया। हां आंसू पोंछने के लिएं संविधान के निर्देशक सिद्वान्तों के अगनित निर्देशों में नशाबंदी, गोवध बंदी जीविका के आधार आदि सुंदर-सुंदर विचारों के साथ पंचायत को भी जोड़ दिया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि पंचायत के प्रति दोयम दर्जे की प्रतिवद्वता रही। कम से कम इतना भी नहीं किया जा सका कि पंचायत के चुनाव लोकसभा एवं विधानसभाओं की तरह निश्चित अवधि में हो सकें। नतीजा हुआ कि जिस राज्य सरकार को जब इच्छा हुई, चुनाव कराया। कहीं 10 वर्ष, कहीं 15 वर्षो के वाद चुनाव हुए। फिर नौकरशाहों की साजिश से पंचायतों के अधिकार भी छीनकर उन्हें अपंग बनाकर पंचायत व्यवस्था को असफल घोषित करने की साजिश की गई। विकास की इकाई प्रखंड को माना गया जहां नौकरशाह एवं कर्मचारियों की फौज रहती है।

गांधी जी ने शासन, शिक्षा एवं विकास सबकी इकाई पंचायत को बनाने को कहा था। उन्होंने अपनी वसीयत में इस पंचायत-शासन व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि 5-5 व्यक्तियों की पंचायत गांव में होगी और जब ऐसी 100 पंचायतें बनेंगी तो फिर उनके द्वारा 50 प्रथम श्रेणी के प्रतिनिधि एक द्वितीय श्रेणी के नेता को चुनेंगे। इसी प्रकार 200 पंचायतों का समूह फैलता हुआ सम्पूर्ण भारत को व्याप्त कर लेगा। संक्षेप में इसी को वर्तुलकार-व्यवस्था (Oceanic Circle) कहते हैं। नीचे से लोग पिरामिड की तरह ऊपर बढ़ेंगे। द्वितीय श्रेणी के लोग जमीन पर कार्य करेंगे एवं वे जिनको चुनेंगे, वे ऊपर की व्यवस्था को देखेंगे। ऐसा होने से फिर जिला, प्रान्त आदि का भी बखेड़ा कम हो जाएगा। जन प्रतिनिधि जनता से सदैव जुड़े रहेंगे एवं उन पर जनता का सतत् अंकुश रहेगा। सत्ता जब निरंकुश हो जाती है तो लोकतंत्र भयंकर रूप से भ्रष्ट हो जाता है।

इसीलिये स्वर्गीय राजीव गांधी जब पंचायत, नगरपालिका विधेयक लाये थे तो इसकी हजार कमियों के बावजूद भी मैंने स्वागत किया था क्योंकि इसके द्वारा पहली बार पंचायत को संवैधानिक सत्ता एवं अस्मिता मिली। पूरे राष्ट्र में पंचायत को प्रतिष्ठा मिली है लेकिन पंचायत को वर्तमान दलीय एवं चुनाव पद्वति के साथ जोड़कर इसकी भारतीय आत्मा का निर्दलन कर दिया गया। पंचायत की भावना विग्रह एवं विभेद पर नहीं बल्कि समन्वय एवं परस्पर अभियोजन पर आधारित है। इसी को ध्यान में रखकर बापू के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा भावे ने जब ग्रामदान एवं ग्रामसभा की कल्पना एवं योजना की तो उसमें बहुमत-अल्पमत के आधार पर नहीं बल्कि सर्वसम्मति या

सर्वानुमति के आधार को पुष्ट किया गया था। आज तो पंचायतों ने गांवों को भी तोड़ दिया है। सभी दल अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग सुनाकर गांवों की परम्परागत एकता को तोड़ते हैं। बापू एवं विनोबा ने इसी को ध्यान में रखते हुए पंचायतों को पक्ष की राजनीति एवं बहुमत-अल्पमत के चुनाव-चक्र से दूर रखने के लिये सर्वसम्मति, सर्वानुमति और आमराय का सूत्र दिया था। इस तरह जब गांव की पंचायत के प्रतिनिधि आमराय से चुने जायेंगे एवं उसके निर्णय भी इसी प्रकार से होंगे तो फिर गांव में सद्भाव एवं सामंजस्य का वातावरण होगा। फिर -

जहां सुमति तहं सम्पत्ति नाना।
जहां कुमति तहं विपत्ति निधाना।।

बापू एवं विनोबा ने इसी को ध्यान में रखते हुए पंचायतों को पक्ष की राजनीति एवं बहुमत-अल्पमत के चुनाव चक्र से दूर रखने के लिए सर्वसम्मति, सर्वानुमति और आमराय का सूत्र दिया था। इस तरह जब गांव की पंचायत के प्रतिनिधि आमराय से चुने जायेंगे एवं उसके निर्णय भी इसी प्रकार से होंगे तो फिर गांव में सद्भाव एवं सामंजस्य का वातावरण होगा।

विनोबा जी ने व्यंग्य से कहा कि पंचायत का किसी दक्षिणी भाषा में अर्थ होता है, "झगड़ा"। यानी आज पंचायत प्रपंच एवं कलह की पूजास्थली बन गयी है। जिस तरह लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव में भ्रष्टाचार एवं हिंसा होती है, पंचायतों के चुनाव भी रक्तरंजित होते हैं। इस वातावरण में ग्राम-भावना कैसे बनेगी? फिर जब तक ग्राम की समुदाय-भावना नहीं होगी, तब तक लोकशक्ति का निर्माण नहीं होगा एवं लोकशक्ति के बिना विकास की कल्पना भी एक दिवास्वप्न है। सामुदायिक विकास योजना के अभियंभरणकार स्वर्गीय एस० के० डे० साहब को विनोबा जी ने यह कहकर निरुत्तर कर दिया था कि जब "समुदाय" बना ही नहीं है तो "सामुदायिक योजना" का क्या अर्थ होगा? मात्र जनसंख्या को ही समाज या समुदाय नहीं कह सकते। इसके लिये परस्पर प्रेम एवं कुछ समान भावना एवं कार्य भी जरूरी है इसलिए वेद में कहा गया है —

समानः व आकूति समानो हृदयानिवः

अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम ग्राम पंचायत क़ानून को विनोबा जी की भावना की 'ग्राम-सभा' के अनुरूप नहीं बनाएंगे तो हम गांधी के सपनों के भारत का निर्माण नहीं कर सकते हैं। गांव की एकता भी छिन्न-भिन्न हो जाएगी। फिर पंचायत को शक्तिमान करने के लिये उसे वास्तविक सत्ता प्रदान करना आवश्यक है। इसके लिये चार बातें आवश्यक हैं :—

क- **ग्राम सभा** : गांव का हर बालिग व्यक्ति इसका सदस्य होगा एवं इसका हर निर्णय सर्वसम्मति या सर्वनुमति से होगा।

ख- **ग्राम कोष** : ग्राम विकास के लिये गांव की खेत की फसल में 1 मन से 1 सेर (किलो) एवं वेतन और अन्य आमदनी में 30 वां भाग ज़मा करना आवश्यक होगा। जिनके पास न जमीन है, न दुकान, न कोई नौकरी, वे 30 दिन गांव के लिए श्रमदान करेंगे।

ग- **ग्राम स्वामित्व** : गांव में व्यक्तिगत स्वामित्व ही झगड़ों की जड़ है। अतः जमीन का सारा स्वामित्व गांव-सभा का होगा, हां उसकी काश्त व्यक्तिगत रूप से करने का अधिकार होगा। समूचे गांव का एक खतियान एवं मालगुजारी की एक रसीद होगी। गांव में अलग-अलग लोग जमा करेंगे। इस प्रकार सूखा या बाढ़ आदि के समय जब क्षति होगी तो गांव के सभी लोग सरकार से संगठित होकर लगान माफ करने को कहेगें या विकास के लिये सहायता प्राप्त करेंगे। अकेला किसान कमजोर होता है लेकिन जब गांव की शक्ति जुटेगी तो वह सरकार की सहायता का भी पर्याप्त लाभ ले सकती है। हां व्यक्तिगत आवश्यकता पड़ने पर ग्रामसभा ग्राम कोष से या सरकार से लेकर किसी को ऋण भी दे सकती है। लेकिन फिजूलखर्ची या शादी, श्राद्ध में अपव्यय के कारण किसान जो जमीन बेच देते हैं, उस पर अंकुश लगेगा।

वस्तुतः भारत में सम्यक् ग्राम-विकास का यही मार्ग है। सामुदायिक विकास योजनाएं इसलिये सफल नहीं हो सकीं क्योंकि वे परावलम्वी थीं। सरकार के पैसे जनता तक पहुंच नहीं पाते। स्वयं स्वर्गीय राजीव गांधी ने स्वीकार किया था कि एक रुपये में से मात्र 15 पैसे जनता के पास पहुंच पाते हैं । अतः जब तक सर-जमीन पर सशक्त ग्राम संगठन नहीं बनेगा, सच्चा ग्राम विकास भी नहीं हो सकेगा। जिस प्रकार गांवों को संगठित करने के लिये सोवियत रूस में कोलखोज, चीन में कम्यून और इसरायल में किबुल्स की स्थापना हुई थी, उसी प्रकार हम पंचार्यतों को ग्रामसभा से सशक्त एवं प्राणवान बनाकर विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

ग्रामीण विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास ही नहीं होगा, इसमें आर्थिक के साथ राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक यानी सम्रग विकास का भाव जुड़ा हुआ है। इसलिए गांधी ने अपनी आखिरी वसीयत में ग्राम-विकास की कल्पना में स्वावलम्बन, नयी तालीम, मतदाता-प्रशिक्षण, सफाई एवं स्वास्थ्य आदि सबों का उल्लेख किया है। इस प्रकार प्रत्येक गांव सशक्त भारत का अजेय दुर्ग बन जायेगा। ग्राम सभा गांव की शिक्षा, गांव के स्वास्थ्य एवं गांव की कृषि एवं उद्योग की देखभाल तो करेगा ही साथ-साथ वहां

"ग्राम-शांति-सेना" भी होगी जो गांव की सुरक्षा एवं शांति की गारंटी भी होगी।

खेती में साल भर काम नहीं होता है और फिर उन खाली दिनों में यदि किसान को घर या पास-पड़ोस में कोई धन्धा या रोजगार मिल जाता है, तभी वह अपनी आर्थिक स्थिति ठीक रख सकता है। ग्रामोद्योग को उजाड़कर ग्रामोत्थान की बात करना ही प्रवंचना है। कृषि-ग्रामोद्योग के अस्तित्व की आधारशिला है। यही मूलाधार है।

आज देश में हिंसा की आग जितनी फैल रही है, उसके शमन के लिये केवल पुलिस, सी०आर०पी० एवं बी०एस०एफ० की संख्या बढ़ाने की बात सोची जाती है। लेकिन यह समस्या का हल नहीं है। बल्कि बापू ने अपनी आखिरी वसीयत में राष्ट्र में बढ़ते हुए इस पुलिस एवं सैन्यवाद पर गहरी चिन्ता प्रकट की है। उन्होंने कहा कि नागरिक शक्ति एवं सैन्यशक्ति में इस प्रकार टक्कर अनिवार्य है। फिर यदि नागरिक शक्ति कमजोर पड़ेगी और हर जगह पुलिस एवं सैन्य शक्ति का ही आश्रय लेना पड़ेगा तो फिर लोकतंत्र का प्राणान्त हो जायेगा और सैनिक तानाशाही आ जाएगी। इतिहास साक्षी है कि लोकतंत्र के गर्भ से ही सुकर्ण, नासिर, हिटलर, अयूब आदि निरकुंश तानाशाह निकले। एशिया में कई देशों में इसी नागरिक शक्ति के कमजोर पड़ने के कारण लोकतंत्र समाप्त हो गया या कमजोर पड़ गया। इस तरह सशक्त लोकतांत्रिक ग्राम संगठन भारत में लोकतंत्र के सुरक्षा की भी सर्वोत्तम गारंटी होगी जहां पुलिस एवं फौज के बदले शांति-सेना रहेगी।

इस प्रकार गांधी-विनोबा के सपनों का ग्राम-विकास भारत की राष्ट्रीय एकता, प्रतिरक्षा, लोकतंत्र एवं आर्थिक विकास के लिये रक्षा कवच है। आज गांव शमशान होता जा रहा है। हरित क्रांति ने पैदावार तो बढ़ायी लेकिन छोटे किसानों को खेतिहर मजदूर बना डाला। उसी प्रकार उद्योगवाद एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढ़ते चरण से गांव के उद्योग समाप्त हो गए। गांव रोजगार विहीन हो गए। फिर तो विवश होकर शहरों की ओर जनसंख्या का पलायन हो रहा है जहां की स्थिति प्रतिदिन बढ़ते प्रदूषण, हिंसा एवं नशादि से भयंकर होती जा रही है। गांव की खेती के साथ गांव के उद्योग का अनुस्यूत संबंध है। खेती में साल-भर काम नहीं होते हैं और फिर उन खाली दिनों में किसान को यदि घर या पास-पड़ोस में कोई धंधा या रोजगार मिल जाता है, तभी वह अपनी आर्थिक स्थिति ठीक रख सकता है। ग्रामोद्योग को उजाड़कर ग्रामोत्थान की बात करना ही प्रवंचना है। कृषि-ग्रामोद्योग गांवों के अस्तित्व की आधारशिला है। यही मूलाधार है। इसके बाद हमें गांव की शिक्षा-व्यवस्था की बात को सोचना होगा। आज शिक्षित बेरोजगार बढ़ते जा रहे हैं। करोड़ों शिक्षित नौजवान बेकारी से जूझ रहे हैं क्योंकि उन्होंने अधिकतर केवल कलमघिस्सू या क्लर्क बनने की योग्यता पायी है। इसलिए ग्रामीण विकास के साथ सार्थक शिक्षा को जोड़ना जरूरी है। जब तक शिक्षा के साथ जीविका का अनुबंध नहीं होगा तब तक बेरोजगारी बढ़ती जाएगी एवं उस असंतोष से हिंसा फूटेगी। हर गांव की ग्रामसभा के अधिकार में ग्राम-विद्यालय का प्रभार हो ताकि शिक्षकों पर उनका अंकुश हो। शिक्षा में जीवन-मूल्य एवं जीविका दोनों को जोड़ना होगा।

सही शिक्षा नहीं मिलने के कारण केवल बेरोजगारी ही नहीं बढ़ती, नशापान, जुआ एवं दुराचार भी बढ़ते हैं। यही नहीं, सदियों की रूढ़ियां भी हम नहीं तोड़ पाते, अंधविश्वास में हम निमग्न रहते हैं। गांव में सांस्कृतिक व्याधियां बढ़ रही हैं। दहेज की दुर्दान्त प्रथा और भी दूरूह होती जा रही है। विवाहों में कर्ज लेकर वैभव का वीभत्व प्रदर्शन, मृत्यु भोज का आयोजन, जातिवाद आदि कुछ ऐसी सांस्कृतिक व्याधियां हैं, जिन्हें हमें दूर करना ही होगा और इसके लिये गांव की युवा-शक्ति का संगठन आवश्यक है। 15 से 30 वर्ष तक के नौजवान यदि "विकास-वाहिनी" बना लें तो फिर सारी कुरीतियों को दूर किया जा सकता है।

कृषि अर्थशास्त्रियों की सोच है कि जितनी राशि उर्वरक, बिजली तथा सिंचाई पर सबसिडी देने में खर्च होती है अगर इतनी राशि गांवों के इन्फ्रास्ट्रक्चर (मूलभूत सुविधाओं) पर खर्च की जाए तो गांवों की तस्वीर बदल जाएगी। गांवों को आत्मनिर्भर बनाने का भी यही रास्ता है। आत्मनिर्भरता के बिना किसी भी प्रकार का ग्रामविकास मिथ्या होगा।

भारत गांवों का देश है लेकिन आज गांवों में अभाव, अज्ञान एवं अन्याय बढ़ते जा रहे हैं। यदि हम गांधी के 125वें वर्ष में भी गांधी से शिक्षा लेकर गांवों की ओर नहीं मुड़े तो भारत, भारत नहीं रह पायेगा। कृषि-अर्थशास्त्रियों की सोच है कि जितनी राशि उर्वरक, बिजली तथा सिंचाई पर सबसिडी देने में खर्च होती है अगर इतनी राशि गांवों के इन्फ्रास्ट्रक्चर (मूलभूत सुविधाओं) पर खर्च की जाए तो गांवों की तस्वीर बदल जाएगी। गांवों को आत्मनिर्भर बनाने का भी वही रास्ता है। आत्मनिर्भरता के बिना किसी भी प्रकार का ग्राम विकास मिथ्या होगा। यही कारण था कि गांधी जी ने अपनी आखिरी वसीयत में गांवों की पुनर्रचना को ही भारत के सौभाग्य की कुंजी माना था।

गांधी जी का व्यावहारिक समाजशास्त्र ही आशा की अंतिम किरण

आशारानी व्होरा

आज समूचा विश्व अनियंत्रित उपभोग, हिंसा और असुरक्षा से त्रस्त है और वह अहिंसा, प्रेम और नियंत्रित उपभोग की गांधी जी की राह की ओर क्यों आना चाहता है, यह लेखिका ने अपने इस लेख में स्पष्ट किया है। लेखिका ने मार्क्स और गांधी जी के समाजवाद में समानता के सिद्धान्त में अंतर बताया है और गांधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को भारत के लिए उपयुक्त बताया है। आज जो आर्थिक खुलेपन की बात हो रही है उसका लाभ समाज को कैसे पहुंचेगा इसकी विवेचना करते हुए लेखिका ने विश्वास व्यक्त किया है कि अब जब देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियां प्रवेश कर रही हैं, तो भी कुटीर उद्योगों की प्रासंगिकता बनी रहेगी क्योंकि जिन वस्तुओं का निर्यात होता है उनमें से अधिकांश कुटीर उद्योगों द्वारा ही तैयार की जाती हैं।

गांधी जी को गए अर्ध शताब्दी व्यतीत होने को है। ज्यों-ज्यों हम औद्योगिक विकास और तकनीकी प्रक्रिया की ओर अग्रसर हुए, समय-समय पर, विशेष अवसरों पर, गांधी जी की देन को औपचारिक रूप में याद करने के अलावा, सामान्यतः हम उन्हें लगभग भूलते चले गए। अब जबकि इस विकास की विसंगतियां एक-एक कर सामने आ रही हैं, गांधी और उनके दिए मूल्यों की प्रासंगिकता भी क्रमशः बढ़ती दृष्टिगोचर होने लगी है।

यह नहीं कि गांधी-मार्ग पर कोई काम नहीं हुआ या कि स्वाधीनता प्राप्ति के समय लिए गए संकल्प के अनुसार देशवासियों, विशेष रूप से ग्रामीण भारत में रहने वाले लोगों, की दशा सुधारने के लिए योजनाबद्ध विकास में खामियां ही खामियां रहीं। पर सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि क्या कारण है कि सात पंचवर्षीय योजनाएं पूरी होने के बाद भी उनका लाभ नीचे तक जैसे पहुंचना चाहिए था, वैसा नहीं पहुंच रहा है?

देश ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है। आज विश्व के कुछ गिने-चुने औद्योगिक देशों में भारत की गिनती है। समृद्धि बढ़ी है। खाद्यान्न के मामले में देश आत्म निर्भर हुआ है और इस खुशहाली का हिस्सा किसान तक भी पहुंचा है। मजदूर भी अपने श्रम का मूल्य उचित मजदूरी-दर के रूप में पा रहा है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी भारत ने नई ऊंचाइयों को छुआ है। शिक्षा-स्तर भी बढ़ा है। पर इस सब के बावजूद, देश पर विदेशी कर्ज बढ़ रहा है। आयात बढ़ा है। कीमतें इतनी तेजी से बढ़ी हैं कि जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की रेखा के नीचे रह कर जीने के लिए मजबूर है। एक ओर उपभोक्ता वस्तुओं से बाजार पटा पड़ा है, दूसरी ओर उनकी कीमतें आम जनता की पहुंच से दिनों दिन दूर होती जा रही हैं। अनियंत्रित विकास की विसंगतियां मुंह बाए सामने खड़ी हैं, फलस्वरूप अमीर और अमीर होते गए हैं, गरीब और गरीब। **यह सब देख कर लगता है कि हमारी विकास-योजनाओं में कहीं कोई बड़ी खामी है।**

गरीबी दूर करने के अनेकों कार्यक्रम चलाए जाएं और गरीबों की दशा में कोई सुधार न दिखाई दे तो इसे विडम्बना ही कहा जाएगा। एक ओर बढ़ती जनसंख्या इसके लिए जिम्मेदार है, दूसरी ओर विकास से आई समृद्धि के वितरण की खामी और समाज के हर क्षेत्र में बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण गरीब-अमीर के बीच की खाई उत्तरोत्तर बढ़ती दिखाई दे, तो इसे क्या कहा जाए? विकास का असंतुलन या स्थिति में सुधार के लिए राजनीतिक, प्रशासनिक सभी स्तरों पर इच्छा शक्ति का अभाव या किसी स्वार्थपरता की खातिर यथास्थिति को स्वीकार? सभी कारण मिले जुले हैं, लेकिन इन सबके ऊपर है, मूल्य-ह्रास। जिस देश में त्याग के मूल्य की प्रतिष्ठा रही, संयम और अपरिग्रह की परंपरा रही, भोग पर साम्य योग की प्रधानता रही और विकास की परिभाषा को योग और भोग के समन्वय में, शरीर और मन के सम्यक विकास में व्याख्यायित किया जाता रहा, उस देश में ही यह संभव था कि एक लंगोटी और एक लाठी वाले गांधी बाबा देश के बहु-संख्यक समाज (नेता से जनता तक) को अपने पीछे चला सके और इतने बड़े ब्रिटिश साम्राज्य के साथ अहिंसक लड़ाई लड़ स्वराज्य पा सके।

वही महात्मा गांधी अपने अंतिम दिनों में देश के विभाजन और सांप्रदायिक आग से इतने निराश हो चले थे कि उनके मुख से निकला 'भगवान अब मुझे उठा ले।' इसका एक कारण यह भी था कि आजादी का लक्ष्य पाकर वे कांग्रेस को भंग कर देना

चाहते थे कि ये बलिदानी लोग कहीं सत्ता पाकर त्याग के मूल्य को भूल न जाएं। राष्ट्रीय कांग्रेस को एक राजनैतिक पार्टी में बदलने का परिणाम वे जानते थे। पर उनकी बात नहीं मानी गई। इसका दुष्परिणाम देखने से पहले ही भगवान ने उन्हें उठा लिया, जैसे उनकी बात सुन ली गई हो।

जिस देश में त्याग के मूल्य की प्रतिष्ठा रही, संयम और अपरिग्रह की परम्परा रही, भोग पर साम्य योग की प्रधानता रही और विकास की परिभाषा को योग और भोग के समन्वय में, शरीर और मन के सम्यक विकास में व्याख्यायित किया जाता रहा, उस देश में ही यह संभव था कि एक लंगोटी और एक लाठी वाले गांधी बाबा देश के बहुसंख्यक समाज (नेता से जनता तक) को अपने पीछे चला सके और इतने बड़े ब्रिटिश साम्राज्य के साथ अहिंसक लड़ाई लड़ स्वराज्य पा सके।

लेकिन बाद में जिस तरह भारतीय समाज में राजनैतिक व सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ, जिस गति से हुआ, वह तो शायद उनकी कल्पना से भी परे था। उनके मन में तो सर्वोदय का सपना था। गरीब से गरीब का उत्थान चाहते थे वे। उन्हें पक्का विश्वास था कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है अतः देश का भविष्य ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर ही आधारित है। इसलिए हर गांव को स्वावलंबी बना कर, हर गांव को अपनी समस्याएं स्वयं हल करने वाला गणतंत्र बना कर वह भारत के स्वराज्य को सु-राज्य या 'राम राज्य' में बदल देना चाहते थे। आजादी के इतने वर्षों बाद 73वां संविधान संशोधन लाकर हमने पंचायती राज का मार्ग प्रशस्त किया है, पर आज जो सामाजिक प्रदूषण शहर से गांव तक फैल चुका है, सत्ता के लिए आपाधापी और उखाड़-पछाड़ वाली गला-काट प्रतिद्वंद्विता के वर्तमान माहौल में क्या वह भारत की आत्मा के अनुकूल पंचायती राज हो सकेगा?

इसलिए हर गांव को स्वावलंबी बना कर, हर गांव को अपनी समस्याएं स्वयं हल करने वाला गणतन्त्र बना कर वह भारत के स्वराज्य को सु-राज्य या 'राम राज्य' में बदल देना चाहते थे।

जब अच्छे कदमों में भी शंकाओं के फन सिर उठाने लगें, वांछित सफलताओं पर आरंभ में ही प्रश्नों के बादल घिरने लगें तो निश्चय ही ये प्रश्न, ये शंकाएं पूरी व्यवस्था को ही कटघरे में ला खड़ा करते हैं। व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन से ही अनिश्चितता और निराशा के घटाटोप को भेदा जा सकता है। इसलिए और इसीलिए फिर से सोच उभरने लगी है कि कहीं गांधी के रास्ते से भटक कर ही तो हम आज अपने रास्ते से नहीं भटक गए हैं? और उस रास्ते की तलाश करके ही शायद हम अपने भूले रास्ते की फिर से खोज कर सकेंगे। आज हमें ही नहीं, पूरे विश्व को उस रास्ते की तलाश है। अनियंत्रित उपभोग-हिंसा-असुरक्षा के दुष्चक्र को भेद, वापस नियंत्रित उपभोग-अहिंसा-प्रेम और सुरक्षा की ओर लक्ष्य से हटकर इतनी दूर निकल आने के बाद यह लौट कठिन तो हो सकती है, असंभव नहीं। तब तो और भी नहीं, जब पूरे विश्व से ये संकेत मिल रहे हों और विकराल स्थितियों से गुजरने के बाद उन स्थितियों का दबाव ही इस लौट के लिए बढ़ रहा हो।

पर लौट निश्चित है देर-सवेर क्योंकि मनुष्य बाहरी दबाव चाहे झेल ले, अपने भीतर के दबाव को अधिक देर तक नहीं झेल सकता। इसमें संदेह नही कि आज हर व्यक्ति कहीं न कहीं, किसी न किसी हद तक अपने भीतर के द्वंद्व से घिरा है और उसे मुक्ति की, सुरक्षा की तलाश है। इस तलाश का मार्ग भी कहीं न कहीं, किसी न किसी हद तक गांधी-मार्ग से होकर ही निकलता है, तो क्यों न हम उसी की तलाश करें। मानवता की मुक्ति के अनेक रास्ते हो सकते हैं, पर गांधी का रास्ता शायद संतप्त मानवता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रास्ता है। हां, संभवतः भविष्य के समाज का सर्व स्वीकृत रास्ता भी हो सकता है यह, तो आइए, इसकी तलाश करें।

पर लौट निश्चित है देर-सवेर, क्योंकि मनुष्य बाहरी दबाव चाहे झेल ले, अपने भीतर के दबाव को अधिक देर तक नहीं झेल सकता। इसमें संदेह नहीं कि आज हर व्यक्ति कहीं न कहीं, किसी न किसी हद तक अपने भीतर के द्वंद्व से घिरा है और उसे मुक्ति की, सुरक्षा की तलाश है। इस तलाश का मार्ग भी कहीं न कहीं, किसी न किसी हद तक गांधी मार्ग से होकर ही निकलता है, तो क्यों न हम उसी की तलाश करें।

गांधी जी एक समाजशास्त्री के रूप में

एक महामानव के रूप में गांधी जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनका चिंतन-क्षेत्र इतना व्यापक और कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत था कि उनके विराट व्यक्तित्व में हमें उनके मानव-हितकारी अनेक रूपों का परिचय मिलता है।

अकादमिक अर्थ में गांधी जी समाजशास्त्री नहीं थे। उन्होंने समाजशास्त्र पर कोई पुस्तक नहीं लिखी। पर सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए उन्होंने जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया अपने मूलभूत सिद्धांतों--सत्य और अहिंसा की जो सामाजिक परिणति उन्होंने हमारे सामने रखी, वह एक ऊंचे दर्जे के समाजशास्त्री की सी ही है।

गांधी जी ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रयोग किए, किंतु उनके जीवन के कार्य कलापों में सामाजिक आविष्कारों का प्रमुख स्थान है। सामाजिक सत्यों के अन्वेषण में उनकी दृष्टि एक वैज्ञानिक की ही रही है। जैसे एक वैज्ञानिक घटनाओं और तथ्यों के पर्यवेक्षण के आधार पर कल्पना करता है, फिर उसे प्रयोगों से सिद्ध करता है, वैसे ही गांधी जी ने सामाजिक समस्याओं पर प्रयोग और परीक्षण किए और अपने जीवन को प्रयोगशाला बना कर अपने निष्कर्षों और मान्यताओं को दूसरों के सामने रखा। इसलिए एक व्यावहारिक समाजशास्त्री का गौरवपूर्ण पद वे सहज ही पा जाते हैं। वे कहा भी करते थे, "जो वैज्ञानिक अपनी कल्पनाओं के प्रयोग अपने ऊपर नहीं करता, वह सच्चा वैज्ञानिक कहलाने का अधिकारी नहीं है।" इस दृष्टि से गांधी जी एक वैज्ञानिक ही नहीं, सच्चे वैज्ञानिक भी ठहरते हैं। उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' रूप में ही लिखी गई। फिर भी अपने प्रयोगों की संपूर्णता का दावा उन्होंने कभी नहीं किया, जो एक वैज्ञानिक की पहचान है।

जैसे एक वैज्ञानिक घटनाओं और तथ्यों के पर्यवेक्षण के आधार पर कल्पना करता है, फिर उसे प्रयोगों से सिद्ध करता है, वैसे ही गांधी जी ने सामाजिक समस्याओं पर प्रयोग और परीक्षण किए और अपने जीवन को प्रयोगशाला बना कर अपने निष्कर्षों और मान्यताओं को दूसरों के सामने रखा।

गांधी जी की कार्यपद्धति की महत्ता इस बात में भी है कि उसका आम जनता के भावों, विचारों, साधनों और उनके अनुरूप उनके सपनों से मेल बैठ जाता था। वे जानते थे कि समाज किस समय, किस सीमा तक किस विशेष परिवर्तन के लिए तैयार हो सकता है। वे जब कभी कोई सामाजिक परिवर्तन या सुधार लाना चाहते थे, उसके लिए पहले जनमत भी तैयार करते थे। सामाजिक समस्याओं का अध्ययन उन्होंने समाज के ऊंच-नीच, बाहरी-भीतरी सभी अंगों में अपनी पैठ बनाकर बहुत बारीकी से किया था। वह समाज की नब्ज पर इसीलिए गहरी पकड़ रख सके। सामाजिक परिवर्तनों के लिए कब, कैसा कदम उठाया जाना चाहिए इसकी गहरी जानकारी रखते थे वे। इसीलिए उनके विचारों से असहमत नेता भी उनके पीछे चलते थे। जन-मत की अवहेलना कोई भी नहीं कर सकता। आज के समाजशास्त्री भी चाहें तो उनके व्यावहारिक समाजशास्त्र से बहुत कुछ सीख सकते हैं और तदनुरूप समाज को प्रेरित कर सकते हैं।

गांधी जी का 'अहिंसा' का प्रयोग कोई नया प्रयोग नहीं। इसके पूर्व बुद्ध, ईसा, महावीर और अनेक संतों ने अहिंसा की व्याख्या और वकालत की है। अंतर इतना है कि उन संतों ने इसे वैयक्तिक गुण के रूप में अपनाया, जबकि गांधी जी ने इसे समाज-नियमन का साधन और विदेशी दासता से लड़ने के लिए सार्वजनिक हथियार बनाया। अहिंसा की यह सामाजिक धारणा गांधीवाद की मौलिकता है और इसकी व्यावहारिक भूमिका की सफलता गांधी जी की विशिष्ट देन।

गांधी जी का 'अहिंसा' का प्रयोग कोई नया प्रयोग नहीं। इसके पूर्व बुद्ध, ईसा, महावीर और अनेक संतों ने अहिंसा की व्याख्या और वकालत की है। अंतर इतना है कि उन संतों ने इसे वैयक्तिक गुण के रूप में अपनाया, जबकि गांधी जी ने इसे समाज-नियमन का साधन और विदेशी दासता से लड़ने के लिए सार्वजनिक हथियार बनाया।

'सत्याग्रह' का सिद्धांत भी कोई मौलिक सिद्धांत नहीं है। हमारी पौराणिक कथाओं में प्रहलाद की कहानी सत्याग्रह का एक उज्ज्वल प्रमाण है। अनेक संतों, महात्माओं ने हजारों वर्ष पूर्व सत्याग्रह का प्रयोग किया, परंतु गांधी जी की मौलिकता इसी में है कि उन्होंने इसे वैयक्तिक से सामाजिक बनाया और इस प्रकार मानव-समाज के इतिहास में एक नया अध्याय खोला। उन्होंने इसका सूत्र समाज की पारिवारिक इकाई में से ही ढूंढा। परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम, ममत्व तथा तादात्म्य-भाव की प्रधानता रहती है, इसलिए वहां किसी सदस्य की गलत बात को बिना वैर-भाव रखे, सत्याग्रह द्वारा सहन किया जाता है और इसी अस्त्र द्वारा अंत में उसका हृदय परिवर्तन किया जाता है। हमारे घरों में प्रतिदिन रूठना, भूख-हड़ताल करना, मान-मनोव्वल, शर्तों के उचित आदान-प्रदान द्वारा अंत में सुखद परिणति या प्रेम-मिलन, ये सब क्रिया-कलाप सत्याग्रह के ही तो हैं, जिनमें वास्तविक संघर्ष, वैर-भाव, ईर्ष्या-द्वेष या मनमुटाव के लिए कोई स्थान नहीं रहता। गांधी जी ने इसी पारिवारिक भाव की समाज में कल्पना की, जिसमें सत्याग्रह द्वारा समस्याओं के निराकरण की व्यवस्था की गई। इसीलिए सामाजिक पृष्ठभूमि में इसका अध्ययन और प्रयोग मानव के लिए कितना कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

मार्क्स-लेनिन के समाजवाद और गांधी के समाजवाद में मुख्य अंतर है, संघर्ष और समता का। संघर्षवादी दृष्टिकोण से मनुष्य को अपने हित के लिए प्रकृति से भी संघर्ष करना होगा और अपने संपर्क में आने वाले मनुष्यों से भी। हित-संघर्ष के आधार पर अनेक

वर्ग खड़े हो जाते हैं। मालिक के विरुद्ध मजदूर, शहर के विरुद्ध गांव, स्त्री के विरुद्ध पुरुष। यहां तक कि पीढ़ी-संघर्ष के नाम पर बाप के विरुद्ध बेटा भी। गांधी वर्ग-संघर्ष नहीं, वर्ग-निर्मूलन चाहते थे। जैसे सारी नदियां समुद्र में आकर मिल जाती हैं, वैसे ही समाज में सभी वर्गों के विविध हितों का सामंजस्य करना होगा। हमें संघर्ष नहीं, मंथन चाहिए। दो लकड़ियों को घिसने से अग्नि पैदा होती है, जो दोनों को भस्म कर सकती है। इसी तरह संघर्ष का परिणाम विनाश होता है, जबकि चिंतन से राह सूझती है, मंथन से मक्खन निकलता है। मां बच्चे को प्रेम से, ममता से छाती से लगाकर स्तनपान कराती है और बच्चा मां की गोद में भावात्मक सुरक्षा पाकर प्रसन्नता से, चाव से दूध पीता है। अब इसे बच्चे द्वारा अपने अस्तित्व के लिए स्तन से संघर्ष या मां का दोहन कहना क्या उचित होगा? यह तो प्रेम का, स्नेह का, भावात्मक सुरक्षा का मार्ग है।

किसी के पास श्रम-शक्ति है, किसी के पास बुद्धि, तो किसी के पास सम्पत्ति। पृथ्वी पर ऐसा कोई अभागा नहीं होता, जिसके पास कुछ न हो, क्योंकि प्रेम की शक्ति तो सबमें है। समाज की समरसता के लिए यही शक्ति चाहिए। कार्य-विभाजन के सिद्धांत से अलग-अलग शक्तियों का उपयोग करना और परस्पर आदान-प्रदान से, मिल-बांट से तथा दूसरों के हित में त्याग से संतुष्टि पाना सामाजिक संतुलन व समरसता का मार्ग प्रशस्त करना है। जहां इस उपाय से काम न चले, वहां सत्याग्रह का साधन अपनाया जा सकता है। साध्य कुछ भी हो, साधन की पवित्रता व निर्दोषता आवश्यक है। गांधी जी ने इसी पर बल दिया।

यह दृष्टि भारतीय दृष्टि है। सर्वोदय विचार की दृष्टि है। आत्मा की एकता पर आधारित साम्य योग की दृष्टि है। पश्चिमी दृष्टि से यह सर्वथा भिन्न हैं। 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' और जीवन-रक्षा व जीवनोन्नति के लिए प्रकृति का अधिक से अधिक दोहन पाश्चात्य दर्शन के मूल सिद्धांत हैं, जबकि भारतीय दर्शन में प्रकृति के कण-कण से मनुष्य की समरसता दिखाई गई है। हम वट-पीपल पूजते हैं, तुलसी-चौरे पर दीप जलाते हैं, चिड़ियों को दाना चुगाते हैं, हर अनुष्ठान में से गाय-कुत्ते-कौवे का ग्रास निकालते हैं, द्वार पर आए साधु व अतिथि को लौटाते नहीं। इसीलिए जीव-जंतु रक्षण व पर्यावरण-संरक्षण कभी हमारे सामने एक अलग से विषय नहीं रहा, न मिल-बांट कर खाने की आदत के लिए हमें किसी बाहरी या राजनीतिक दबाव से बाध्य होना पड़ा। "सर्वे भवंतु सुखिनः" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" वाली इस भारतीय दृष्टि पर ही आधारित रही, गांधी जी की 'राम राज्य' की कल्पना राम राज्य अर्थात् एक उन्नत व सभ्य समाज, जिसमें सबका समान हित समाहित है छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी का।

गांधी जी राज्य और समाज में कोई भेद नहीं करते। उनकी मान्यता के अनुसार, एक उन्नत समाज में राज्य की कोई आवश्यकता नहीं होगी। राज्य मनुष्य की असभ्यता का सूचक है। अपनी इसी मान्यता के आधार पर उन्होंने सर्वोदय समाज व राम राज्य के रूप में एक आदर्श समाज की कल्पना की, जो उनके सत्य, अहिंसा, सादगी, अपरिग्रह, श्रमनिष्ठा, आत्मनिर्भरता और अभय के सिद्धांतों पर आधारित है। आज की परिस्थितियों में इस दृष्टिकोण को 'व्यावहारिक नहीं' कहकर इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। लेकिन समाज को वर्तमान दुरावस्था से निकालना है तो इसी दृष्टिकोण को सफलता के लिए निश्चित मानकर व्यवहार में लाना होगा।

हम वट-पीपल पूजते हैं, तुलसी चौरे पर दीप जलाते हैं, चिड़ियों को दाना चुगाते हैं, हर अनुष्ठान में से गाय-कुत्ते-कौवे का ग्रास निकालते हैं, द्वार पर आए साधु व अतिथि को लौटाते नहीं। इसलिए जीव-जंतु रक्षण व पर्यावरण संरक्षण कभी हमारे सामने एक अलग से विषय नहीं रहा, न मिल-बांट कर खाने की आदत के लिए हमें किसी बाहरी या राजनीतिक दबाव से बाध्य होना पड़ा।

गांधी जी अर्थशास्त्री के रूप में

गांधी जी व्यावहारिक समाजशास्त्री तो थे ही, व्यावहारिक अर्थशास्त्री भी थे। समाज में सम्पत्ति के बंटवारे को लेकर उनका 'ट्रस्टीशिप' का अनोखा सिद्धांत विश्व के मान्य आर्थिक सिद्धांतों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसलिए आज संसार भर के चिंतकों और अर्थशास्त्रियों का ध्यान इसके अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ है। वास्तव में यह अर्थशास्त्र ही नहीं अर्थ दर्शन भी है, जिसका आधार भारतीय संस्कृति और इस संस्कृति को पोषित करने वाले संतों का दर्शन है — "सांई इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाय, स्वयं भी भूखे न रहें, साधु न भूखा जाए।" .... "सवै भूमि गोपाल की।" इससे बढ़ कर साम्यवाद और क्या होगा? पर यह आधुनिक आयातित अर्थ में साम्यवाद नहीं, प्राचीन भारत का साम्य योग है। साम्यवाद संघर्ष पर आधारित है, साम्य योग प्रेम व करुणा पर। ट्रस्टीशिप में यही भावना निहित है — अमीरी को मिटाना नहीं, स्वैच्छिक वितरण से गरीबी को मिटाना। अमीरों से छीन कर गरीबों में बांटना नहीं (यह द्वेष और संघर्ष का मार्ग है) अमीरों से लेकर गरीबों का स्तर उन्नत करना। कांग्रेस का सारा कार्य, आजादी के लिए, विदेशी सत्ता से सारा

संघर्ष इसी के बलबूते चला। बिड़ला, बजाज परिवार इसकी मिसाल रहे तब।

"कबिरा खड़ा बाजार में लिए लंगुटिया हाथ....." समर्थ होते हुए भी गांधी जी ने स्वयं एक लंगोटी धारण की, तभी तो वे दूसरों से त्याग करवा सके। फिर देश के लिए वह त्याग धन-सम्पत्ति का हो या स्कूल-कालेज छोड़ कर कैरियर का, नौकरियां और पद-उपाधियां छोड़ने का हो या निजी सुविधा-सुरक्षा छोड़ कर दर-दर भटकने और जेल जाने का विकल्प चुनने का। यहां तक कि बिना किसी बाध्यता या दबाव के जिन्दगी पर मौत को तरजीह देने तक का भी। देश को आजाद कराने का लक्ष्य हो या देश को दूरवस्था से निकाल कर निर्माण करने और सर्वहितकारी खुशहाली लाने का, साध्य की समानता और साधन की पवित्रता से सब सध जाता है। गांधी जी ने इसी पर जोर दिया।

उनका सपना था, गांवों की आत्मनिर्भरता और खुशहाली, क्योंकि असली भारत वहीं बसता है। अंग्रेजों के विरुद्ध हमारी लंबी व कठिन लड़ाई इसीलिए तो थी कि उन्होंने अपने हित में हमारे कुटीर उद्योग नष्ट कर दिए, गरीबों की रोजी-रोटी छीन ली। उनसे उनकी भाषा, आस्था तक छीन ली (पूरी तरह नहीं छीन पाए, यह अलग बात है, क्योंकि हमारी आस्थाओं की जड़ें बहुत गहरी हैं) और परामुखी हो लोग शहरों की ओर भागने लगे। उनकी अपनी गणतंत्रीय संस्थाएं तक नहीं बचीं, जो उन्हें रोक पातीं या बदहाली से उबार पातीं। आजादी की लड़ाई का एक हथियार 'स्वदेशी आंदोलन' भी इसीलिए बना था, अन्यथा गांवों के बहुसंख्यक वर्ग में स्वदेशी आंदोलन के क्या मायने थे।

"ट्रस्टीशिप" में यही भावना निहित है–अमीरी को मिटाना नहीं, स्वैच्छिक वितरण से गरीबी को मिटाना। अमीरों से छीनकर गरीबों में बांटना नहीं (यह द्वेष और संघर्ष का मार्ग है)। अमीरों से लेकर गरीबों का स्तर उन्नत करना।

पिछले कुछ दशकों में हमने गांधी को खोकर बहुत कुछ खोया तो कुछ पाया भी। हमने संसार के कुछ उन्नत कहे जाने वाले देशों में साम्यवाद का उठान भी देखा, पतन भी। पूंजीवाद का फैलता साम्राज्य भी देखा, उपनिवेशवाद की समाप्ति पर उसका सिकुड़ना भी। उसकी बदौलत उन्नति के शिखर भी देखे और उन शिखरों से देखे गए उन्नत मानवता के धराशायी होते सपने भी। इधर अब हम नियंत्रित व मिश्रित अर्थ व्यवस्था से निकल कर खुलेपन की ओर बढ़ आए हैं तो इस मोड़ पर भविष्य के लिए हमें, आज नहीं तो कल (इस खुलेपन के परिणाम देख लेने के बाद) विकल्प चुनना ही है। बहुत संक्षेप में विचार करें तो मोटे तौर पर ये कुछ मुद्दे ध्यान में रखने से संभवत कुछ दिशा-निर्देश मिल सकेगा :

खुलेपन की बात को लेकर पहले रूस, चीन और भारत की स्थिति का अंतर समझें। इस 'ग्लासनोस्त' के पूर्व रूस की बाहरी खिड़कियां बंद थीं, एक 'आयरन' कर्टन का देश कहा जाता था वह। स्टालिन के बाद के नेताओं ने धीरे-धीरे खिड़कियां खोलनी शुरू कीं फिर जब गोर्बाचौव ने खुलेपन का नारा दिया तो एकाएक विस्फोट हो गया। चीन में भी धीरे-धीरे खुलेपन ने प्रवेश किया। हमारा देश कभी भी उनकी तरह बंद नहीं रहा, हमारी पूर्व-स्थिति को एक नियंत्रित खुलापन ही कह सकते हैं। फिर बंद या खुलेपन पर उस संदर्भ में बहस बेकार है। इस पर चिंतन-मंथन होना चाहिए कि इस ढील को हम अपने हित में कैसे प्रयोग में लाएं? अगर इससे समृद्ध और समृद्ध होते हैं, गरीब और गरीब तथा बेरोजगारी बढ़ती है तो हमारे बुद्धिजीवियों को सोच की धार पैनी करके आम जनता को दिशा दिखानी होगी, अन्यथा जनता अपने ढंग से इससे निबटेगी, जनतंत्रीय जागरूकता के बाद अब वह निष्क्रिय हो, तमाशा ही नहीं देखती रह जाएगी।

यह खुलापन एक संभावना भी व्यक्त कर रहा है, एक खतरे का संकेत भी दे रहा है। नव औद्योगिक देशों : कोरिया, ताइवान, सिंगापुर की मिसालें सामने हैं। उन्हें विकास का तोहफा अमरीका ने नहीं दिया। उन्होंने अपनी नीतियों, श्रम-निष्ठा और उद्यम से हासिल किया है। सबसे पहले जरूरी है, परस्पर सकारात्मक सहयोग का रचनात्मक उपाय। मॉडल अमरीकी हो या जापानी, यह हमारे उद्यम और चिंतन पर निर्भर है कि हम लातानी अमरीकी देशों की तरह विश्व बैंक व अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के ऋण को अपने गले का फंदा बना लें या अपने हित में उसका सही उपयोग कर लें। ध्यान रहे, देश की सर्वसम्मत नीति देश हित में ही प्रभावी नहीं होती, बाहर भी प्रभावी सिद्ध होती है। कोटा, परमिट वाली प्रतिबंधित नीति से निकल कर आज हम भ्रष्टाचार से अधिक कारगर तरीके से लड़ सकते हैं, यदि हमारे नेताओं में यह राजनैतिक इच्छाशक्ति हो और वे स्वयं 'काजल की कोठरी' से निकल सकें। दूसरी ओर यदि हम अपनी काहिली छोड़, उद्यम नहीं करेंगे और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति में ही लिप्त रहेंगे तो अधिक उत्पादन, अधिक समृद्धि का लाभ आम जनता तक कैसे पहुंचाएंगे? उत्पादन और उपभोक्ता में निकट संबंध स्थापित हो और उपभोग में सभी की समान साझादारी नहीं तो कम से कम अंतर पर साझीदारी अवश्य हो, तो खुलापन एक अवसर हो सकता है, अन्यथा यह

गरीब, अमीर की विषमता की खाई को और बढ़ा देगा जिसका अंजाम अराजकता के विस्फोट में भी हो सकता है।

अंग्रेजों के विरुद्ध हमारी लंबी व कठिन लड़ाई इसीलिए तो थी कि उन्होंने अपने हित में हमारे कुटीर उद्योग नष्ट कर दिए, गरीबों की रोजी रोटी छीन ली। उनकी भाषा, आस्था तक छीन ली (पूरी तरह नहीं छीन पाए, यह अलग बात है, क्योंकि हमारी आस्थाओं की जड़ें बहुत गहरी हैं) और परामुखी हो लोग शहरों की ओर भागन लगे।

मूल प्रश्न है कि एक अविकसित या विकासशील देश में समृद्ध पश्चिमी देशों की जीवन-शैली प्रचलित हो जाए, तब साधन तो कुछ ही हाथों के लिए उपलब्ध होंगे, फिर सूचना-क्रांति से आम लोगों की बढ़ी आकांक्षाओं-अपेक्षाओं का क्या होगा? उस स्थिति में टकराव और अपराध को रोकना क्या संभव होगा? यह खतरा है, जिसे समय रहते महसूस किया जाना चाहिए। पश्चिम की समृद्धि की ओर देखने के साथ, किस तरह यह समृद्धि आई, इसे भी लोगों को बताया जाना चाहिए। आज के विकसित देश जिनके उद्यम और आचरण से उन्नत बने वे थे इंग्लैंड के प्यूरिटन, रूस के बोलशैविक्स, फ्रांस के जैकाबियन, अमरीका के न्यू फ्रंटियरमैन, जापान के समुराई, जिन्होंने आर्थिक क्रांतियों का नेतृत्व किया और देश का निर्माण किया। गीता के कर्मयोगियों के से इन लोगों की तुलना उन हिप्पियों, यंपियों से करके देखिए, जो स्वयं काहिली, अनुशासनहीनता, अराजकता, निठल्लेपन और गंदगी की जिन्दगी जीते हुए व्यवस्था विरोध करने निकले और करने के नाम पर उन्होंने अपने मां-बाप का, अपने देश का नाम बदनाम किया और देश-विदेश का माहौल बिगाड़ा। भारत में भगवान शिव से लेकर औघड़ों की एक लंबी परंपरा है, पर वे कल्याणकारी, औघड़दानी शिव के उपासक हैं, समाज के बाहर रह कर भी समाज-हित में ही चिंतन-मनन करते हैं। यही कारण है कि कुछ समय 'हिप्पी-कल्चर' अपने भद्दे रंग दिखा कर भी हमारे यहां कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ पाया।

वर्तमान भोगवादी प्रवृत्ति की आगे क्या नियति होगी, अभी से कहना कठिन है। लेकिन यह निश्चित है कि एक 'अति' के बाद इसका भी वही हश्र होगा, क्योंकि गीता के निष्काम कर्म वाली भारतभूमि में वह अपनी जड़ें नहीं जमा सकतीं। सिद्धांत : इन दोनों प्रवृत्तियों में विरोध है। इसलिए ही नहीं कि बहुसंख्यक वर्ग अनियंत्रित भोग से वंचित है, इसलिए भी कि यह गीता के संदेश से भिन्न है, इसलिए बहुसंख्यक भारतीय मानसिकता के विपरीत है। निष्काम कर्म के विपरीत भोगवाद पहले फल की कामना को स्थापित करता है। इसलिए कर्मवाद की जगह लालसा आती है, जो दिनोंदिन बढ़ती जाती है। येन केन प्रकारेण धन प्राप्ति की लालसा-चोरी, धोखाधड़ी, अपराध, हिंसा के मार्ग इसी से खुलते हैं। यही खतरा है, अनियंत्रित उपभोग का, अन्यथा 'दूधों नहाओ, पूतों फलो' की कामना करने वाला यह देश न कभी समृद्धि का विरोधी रहा, न जीवन में कला-सौंदर्य का। हमने केवल साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता पर जोर दिया।

साधन की पवित्रता पर विशेष बल देकर गांधी जी ने भारतीयों को अपने इसी सांस्कृतिक गुण की ओर प्रवृत्त किया था। साध्य कुछ भी हो, किसी भी सीमा तक हो, समृद्धि के बंटवारे से समस्या फिर अपने आप ही हल हो जाती है। समृद्ध लोगों के लिए उनकी प्रेरणा थी, अपने आप को अपनी समृद्धि का मालिक नहीं, न्यासी (ट्रस्टी) समझें और अपनी आवश्यकता भर रखकर शेष जरूरतमंदों में, उत्पादन के भागीदार मजदूरों में वितरित कर दें। आज की आर्थिक विषमता से अपनी समस्याओं का समाधान समाजवाद से नहीं, पूंजीवाद से नहीं, उपनिवेशवाद से नहीं, इसी 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' से संभव है, क्योंकि खुलेपन की अर्थनीति से हमें उत्पादन और समृद्धि को घटाना नहीं, बढ़ाना है, तो उसका नीतियुक्त वितरण भी करना होगा।

येन केन प्रकारेण धन-प्राप्ति की लालसा–चोरी, धोखाधड़ी, अपराध, हिंसा के मार्ग इसी से खुलते हैं। यही खतरा है, अनियंत्रित उपभोग का, अन्यथा "दूधों नहाओ, पूतों फलो" की कामना करने वाला यह देश न कभी समृद्धि का विरोधी रहा, न जीवन में कला सौन्दर्य का।

खतरा आर्थिक उपनिवेशवाद से उतना नहीं, जितना मानसिक उपनिवेशवाद से है। सांस्कृतिक खतरा बाजार के खतरे से ज्यादा है। कोई भी देश चाहे वह कितना ही समृद्ध व बलशाली क्यों न हो, हम पर तभी हावी होगा, जब हम उसे हावी होने देंगे। 'दूसरा अमरीका' बनने का सपना देखते समय हम यह न भूलें कि बिना सामंतवादी शक्तियों का सहारा लिए अमरीका ने लोकतंत्र द्वारा उन्नति की और आज की उसकी यह समृद्धि श्रमजीवी संस्कृति के कारण संभव हो सकी। हमें हू-ब-हू नकल के बजाय, अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सदियों से विकसित अपनी मानसिकता और अपनी साधन-क्षमता को ध्यान में रखना होगा। अपने निजी भविष्य के निर्माण के लिए अपनी दृष्टि, अपनी दिशा तय करनी होगी। आर्थिक विकास तभी तक ग्राह्य है, जब तक वह जीवन-धर्म को समृद्ध करता हो। उपभोक्तावाद भी ग्राह्य है, यदि उसमें आम आदमी की भी भागीदारी हो। इसके बजाय हमारे यहां आज एक ऐसा वर्ग पनप रहा है, जो अपनी जड़ों से कटकर पश्चिमी जीवन-शैली पर ही नजरें टिकाये है, आम जनता के दुख-दर्द के प्रति निष्ठुरता की हद तक उदासीन भी है। यही बड़ा

खतरा है, उपभोक्तावाद का। हमारे प्रसारण-माध्यमों ने भी अपसंस्कृति को बढ़ावा देकर इस आग में घी का काम ही किया है। सारी जनता की कीमत पर एक वर्ग को नवसामंतों के क्रूरतम रूप में पनपने देना ही खुलेपन का विनाशकारी अंजाम होगा। इसलिए देखना होगा कि इस मंथन से प्राप्त विष को हम कहां तक पचा पाते हैं? और इससे कितना अमृत ग्रहण कर पाते हैं?

उदारीकरण की प्रक्रिया का सबसे खतरनाक पहलू है, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भारत में बढ़ती पैठ, जबकि गांधी जी स्वदेशी कंपनियों में भी बड़े पैमाने पर यंत्रीकरण के खिलाफ थे और अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मुहैया कराने के लिए कुटीर उद्योगों पर बल देते थे। कुटीर उद्योगों का आंचलिक स्वरूप

हमें हू-ब-हू नकल के बजाय, अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सदियों से विकसित अपनी मानसिकता और अपनी साधन क्षमता को ध्यान में रखना होगा। अपने निजी भविष्य के निर्माण के लिए अपनी दृष्टि, अपनी दिशा तय करनी होगी।

आज कितना भी नष्ट हो चुका हो, नई आवश्यकताओं के अनुरूप उनका बाजार आज भी मंद नहीं हुआ है । विदेशी निर्यात का एक बड़ा भाग हथकरघा-वस्त्रों, परंपरागत हस्तशिल्पों, कलाओं और कुटीर उद्योगों से निर्मित वस्तुओं से संबंधित है और यही एक आशा की किरण है, बढ़ती बेरोजगारी की रोकथाम के लिए बदलते वक्त के साथ स्वदेशी आंदोलन की परिभाषा भी बदलनी होगी। केवल वे वस्तुएं ही स्वदेशी नहीं, जिनका उत्पादन भारत में होता है, उन्हें भी स्वदेशी माना जाना चाहिए, जिन्हें हम अपने लिए उपयोगी मानकर ग्रहण कर चुके हैं। अफीम, गांजा भारत का उत्पादन होने पर भी यदि ये वस्तुएं हमारे लिए अनुपयोगी व हानिकारक हैं, तो इन्हें स्वदेशी समझकर भी अपनाया नहीं जा सकता। इसी तरह हमारी जीवन-शैली में रच-बस गई विदेशी तकनीकी का भी बहिष्कार नहीं किया जा सकता। उसे अपने साधनों, अपनी जरूरतों के अनुसार विकसित ही किया जाना चाहिए।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ जनजागरण अभियान की तभी जरूरत है, जबकि वे हमारे छोटे उत्पादनों और कुटीर उद्योगों का बाजार भी हथियाने लगे। यही नहीं, उन्होंने तो राज्याध्यक्षों की हत्याएं करके सरकारों का तख्ता पलटने, अपने हानिकारक उत्पादों का असर जानने के लिए विकासशील व विकसित देशों की निर्दोष जनता को 'बलि का बकरा' बनाने और अपने आणविक कचरे को पिछड़े देशों में फेंककर लोगों की जानों से खेलने तक की अमानवीय भूमिका भी निभाई है। और अब ये सूचना-माध्यमों के आकाशीय हमले द्वारा हमारी सदियों पुरानी आध्यात्मिक संस्कृति को ही भ्रष्ट अपसंस्कृति में बदलने का प्रयास कर रही हैं। यही वह असली खतरा है, जो हमें इस मानसिक गुलामी के माध्यम से फिर से देश को गुलामी की ओर ढकेलने का संकेत दे रहा है।

इन सारी स्थितियों के संदर्भ में ही आज गांधी की प्रासंगिकता बढ़ी है। संयम का अर्थ स्वयं का दमन नहीं होता। नैतिकता से रहित आर्थिक उन्नति कभी भी सही विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करती। भारत के संदर्भ में तो एकदम नहीं, जहां भौतिक व मानसिक विकास को साथ-साथ प्रश्रय देकर मानव के समग्र विकास पर बल दिया गया है। व्यक्ति का समग्र विकास ही अंततः समग्र सामाजिक विकास की राह खोलता है। इसी तरह, संचार-साधनों के विकास से आज दुनिया सिकुड़ कर कितनी ही छोटी क्यों न हो गई हो, राष्ट्रीयता के माध्यम से ही अंतर्राष्ट्रीयता की ओर प्रस्थान विश्व-बंधुत्व की कल्याणकारी भारतीय अवधारणा के अनुकूल होगा। अपनी समूची आस्था, अपने पूरे आत्म-विश्वास के साथ हमें इसी ओर बढ़ना है। इतिहास गवाह है कि हमने बड़े-बड़े झटके झेले हैं, वर्तमान हिंसा, आतंकवाद, अनियंत्रित उपभोक्तावाद का झटका भी झेल लेंगे। स्थिति शीघ्र ही पलटा खाएगी। गांधी भारतीय परिदृश्य से कुछ समय के लिए भले ही ओझल हो गए हों, वे हैं और रहेंगे।

जी-302, सैक्टर-22,
नोएडा-201301

अपरिग्रह से मतलब यह है कि हम कोई चीज का संग्रह न करें जिसकी हमें आज दरकार नहीं है।

–महात्मा गांधी

(बापू के आर्शीवाद, 25 नवम्बर, 1944)

ग्राम स्वराज—ग्रामीण विकास का आदर्श माडल

✍ प्रो० आर. पी. मिश्र

इस लेख में लेखक ने बताया है कि अंग्रेजों ने गांवों से उद्योग धंधों को नष्ट कर हमारे गांवों की अर्थ व्यवस्था के मेरूदंड को तोड़ दिया था और हमारे गांवों की स्वावलम्बन-क्षमता को खत्म कर दिया था। गांधी जी ने सार्वजनिक जीवन में कदम रखते ही ग्रामीण पुनर्निमाण को अपना एक प्रमुख लक्ष्य बनाया और जीवन-पर्यंत उसके लिए प्रयास जारी रखा। लेकिन लेखक ने कहा है कि गांव आजादी के बाद बनी विकास नीतियों का केन्द्र बिन्दु नहीं रहा। लेखक ने 45 वर्ष की देश को उपलब्धियों का जिक्र करते हुए कहा है कि देश में जिस रफ्तार से शहरीकरण बढ़ रहा है उससे खतरे के संकेत मिल रहे हैं। लेखक ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के कुछ उपायों की चर्चा करते हुए हाल में किया गया 73वां संविधान संशोधन सही दिशा में एक कदम बताया है।

भारत गांवों में बसता है। अब से कुछ ही समय पहले भारत वास्तव में गांवों में ही रहता था। परंतु इस समय यह बात आंशिक रूप से ही सही है। तीन चौथाई से अधिक भारतीय हालांकि अब भी गांवों में ही रहते हैं और दो तिहाई से अधिक श्रम शक्ति ग्रामीण कार्यों में, विशेषकर खेती के काम-धंधों में लगी हुई है लेकिन देश की सम्पदा का अधिकांश हिस्सा शहरों में ही केन्द्रित होता जा रहा है। देश की जो कुल वार्षिक आय का केवल एक तिहाई हिस्सा ही ग्रामीण भारत दे पाता है। 'ग्रामीण' और 'पिछड़ापन' ये दोनों शब्द वस्तुतः एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं।

देश को आजादी मिलने से पहले राजनीतिक व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था में ग्रामीण भारत ने जो भूमिका निभायी थी, उसमें आमूल परिवर्तन आ चुका है। अब लगातार और धीमे परिवर्तन का जमाना नहीं रह गया है, बल्कि संतुलित मानव एवं पर्यावरण विकास, संस्कृति, कृषि और स्वायत्तता आदि का समय आ चुका है। आज का ग्रामीण भारत लगभग पूरी तरह शहरी भारत में समाहित हो चुका है। यह शहरी क्षेत्र ही आज के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन और प्रौद्योगिकी-शक्ति का नियमन करता है।

ग्रामीण भारत का ह्रास लगभग दो सौ वर्ष पहले शुरू हुआ जब हमारा देश उपनिवेशवादी शासन के चंगुल में फंस गया था। मध्यकालीन सामंतवादी व्यवस्था ने ग्रामीण व्यवस्था की स्वायत्तता में लगातार हस्तक्षेप करके उस पर गहरे घाव छोड़ दिए थे। लेकिन उनका असर सीमित था। इसलिए ग्रामीण समाज को अपने सिद्धांतों को फिर से स्थापित करने में कोई बहुत अधिक समय नहीं लगा।

लेकिन ग्रामीण भारत पर ब्रिटिश प्रभाव बहुत व्यापक और दूरगामी रहा। उपनिवेशवादी नीतियों ने ग्रामीण व्यवस्था और सामुदायिक एकता के मेरूदंड को ही तोड़ दिया था। ब्रिटिश शासकों ने क्रमबद्ध तरीके से ग्रामीण उद्योगों और हस्तशिल्पों को नष्ट कर दिया था। इसका उल्लेख अनेक दस्तावेज भी प्रस्तुत करते हैं। 1900 ईस्वी तक ग्रामीण भारत छिन्न-भिन्न हो चुका था, ग्रामीण उद्योग-धंधे चौपट हो गये थे। गांवों की स्वावलंबन क्षमता नष्ट हो गयी थी, कृषि का आधार नष्ट हो गया था और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गयी थी।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि उन दिनों ग्रामीण भारत में जो कुछ था, वह महान था, बल्कि उसमें अनेक गंभीर खामियां और कमियां थीं, जिनमें परिवर्तन लाने और सुधार करने की जरूरत थी। परंतु ब्रिटिश राज ने सुधार न करके उसमें और अस्थिरता लाकर ग्रामीण आय के स्रोतों को ही बरबाद कर दिया। ब्रिटेन में जो 'औद्योगिक क्रांति' आयी थी, उसके अनुभवों का लाभ उठाते हुए, उन्होंने भारतीय अर्थ व्यवस्था को विपरीत दिशा में धकेल दिया। उन्होंने भारत की विविधतापूर्ण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर शहरी अर्थ व्यवस्था तथा केंद्रित उद्योगों की अर्थ व्यवस्था लाद दी।

औद्योगिक क्रांति ने सम्पत्ति जमा करने की प्रक्रिया शुरू कर दी थी और इससे सम्बंधित उनके बड़े हित उभर रहे थे। कारण ब्रिटिश व्यापारियों ने अपने हितों के बगैर भारत में उद्योग लगाने की ओर कोई कदम नहीं उठाया होता। इंग्लैंड में ग्रामीण लोगों पर औद्योगिक क्रांति के प्रभाव की ओर वे लोग लापरवाह नहीं रहे लेकिन भारत में ग्रामीण लोगों की क्या हालत हुई इसे दुनिया भूल नहीं सकती।

ग्रामीण विकास का गांधीवादी दृष्टिकोण

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक 25 वर्षों के दौरान भारत के राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गांधी का अभ्युदय हुआ और

निदेशक, गांधी भवन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उन्होंने ग्रामीण पुनर्निर्माण की योजना शुरू की जिसे उन्होंने जीवन पर्यंत जारी रखा। इस संदर्भ में महात्मा गांधी के ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यों को देखा जा सकता है। गांधी ने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष रूप से देखा था कि ब्रिटिश समाज में औद्योगिक क्रांति के असहनीय बोझ से किस तरह अमानवीयकरण बढ़ता जा रहा था, उसे महसूस करते हुए, उन्होंने कहा था कि प्रकृति और मानव का शोषण और दोहन किए बिना औद्योगीकरण हो ही नहीं सकता। उन्होंने कहा था ''भगवान न करे कि भारत उसी तरह के औद्योगीकरण की राह पर चले जिस तरह पश्चिम चल पड़ा है। एक छोटे से द्वीप-देश के आर्थिक साम्राज्यवाद ने आज समूचे विश्व को जंजीरों में जकड़ लिया है। यदि 30 करोड़ लोगों का सारा देश ही इसी तरह के आर्थिक शोषण में लग जाय, तो यह सारी दुनिया को उसी तरह चट कर डालेगा जिस तरह टिड्डी दल कर डालता है।'' उन्होंने एक पुस्तिका 'हिंद स्वराज' में एक लेख में ऐसी सभ्यता की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसका मुख्य स्रोत भारतीय संस्कृति में है और हर भारतीय को बिना किसी पूर्वाग्रह के इस पुस्तिका को पढ़ना चाहिए। इसमें एक भारतीय आदर्श प्रस्तुत करके बताया गया है कि स्थायी विकास का यह आदर्श होगा। गांधी जी के अनुसार, यदि मानव ने अपने अस्तित्व और विकास को बनाये रखना है तो उसे यह आदर्श स्वीकार करना ही होगा।

आज ऐसे गांवों की जरूरत है जो स्वावलंबी हों और मानव की ऐसी छोटी-छोटी बस्तियां हों जो समूचे विश्व को एक व्यापक कुटुम्ब के रूप में यानि वासुधैव कुटुम्बकम के आदर्श को प्रतिस्थापित करें। गांधी जी के ग्राम आदर्श का यही बुनियादी तत्व है। गांधी जी के सपनों का गांव जो भविष्य में बनेगा, उसकी परिकल्पना आत्म-निर्भर विशाल गांव की है। गांधी जी ने हमेशा छोटे पैमाने की मानव बस्तियों पर जोर दिया और उसके लिए ऐसी ही संस्थाओं, मशीनों, टेक्नालोजी, यातायात, कृषि, उद्योग, सेवाओं आदि पर जोर दिया क्योंकि उनके अनुसार मानव ही इन सभी का साधन है। मानव को जो अमानव बनाये, वह वांछनीय और अनुसरणीय नहीं है। गांधीवादी परिकल्पना में गांव सबसे उपयुक्त मानव बस्ती है, जो स्थायी अर्थ व्यवस्था और नीति विकास में मदद कर सकती है। यह सामुदायिक एकता, कृषि, उद्योग के समेकित विकास, सामाजिक सेवाओं, संस्कृति, मानव उत्कर्ष, स्वतंत्रता आदि का केंद्र है। गांधी जी कोई कोरी कल्पना ही नहीं कर रहे थे बल्कि उन्होंने मानवता के समक्ष जो लक्ष्य रखा था, उसके अनुसार वह चाहते थे, कि 'भारत इस तरह के सभी प्रयोगों की प्रयोगशाला बने।'

गांधी जी की उपेक्षा

गांधी जी की मृत्यु तो 1948 में हुई परंतु उससे बहुत दिन पहले ही सभ्यता संबंधी उनके आदर्श को दरकिनार कर दिया गया था। वास्तव में गांधी जी की प्रासंगिकता स्वतंत्रता आंदोलन के नेता के रूप में अधिक मानी गई थी। एक दूरदर्शी, अभिनव प्रयोगकर्ता, तार्किक और चिंतक के रूप में उनकी भूमिका को कम आंका गया। आजादी ज्यों ज्यों निकट आती गयी, उनका स्थान केंद्र की अपेक्षा क्रमशः किनारे की ओर सरकता गया यहां तक कि जब देश के बंटवारे पर सहमति हुई तो उनकी उपेक्षा कर दी गयी।

गांधीवादी परिकल्पना में गांव सबसे उपयुक्त मानव बस्ती है, जो स्थायी अर्थ व्यवस्था और नीति के विकास में मदद कर सकती है। यह सामुदायिक एकता, कृषि और उद्योग के समेकित विकास, सामाजिक सेवाओं, संस्कृति, मानवोत्कर्ष, स्वतंत्रता आदि का केन्द्र है। गांधी जी कोई कोरी कल्पना ही नहीं कर रहे थे बल्कि उन्होंने मानवता के समक्ष जो लक्ष्य रखा था, उसके अनुसार वह चाहते थे, कि ''भारत इस तरह के सभी प्रयोगों की प्रयोगशाला बने।''

स्वतंत्र भारत ने विकास के गांधीवादी प्रतिमान को अपनाने की कभी कोशिश नहीं की बल्कि मिश्रित अर्थ व्यवस्था का विकल्प चुना। ऐसी अर्थ व्यवस्था जिसमें पश्चिमी पूंजीवादी व्यवस्था और सोवियत समाजवादी व्यवस्था के ऐसे रूप को अपनाया गया जो वास्तव में कभी एक दूसरे से अच्छी तरह मिल ही नहीं सकते थे। भारतीय आम जनता गांधी जी को ऐसा उद्धारक मानती थी जो निस्वार्थी था और जिसका उद्देश्य भारत को और भारत की जनता को उसकी खोयी प्रतिष्ठा वापस दिलाना था।

पश्चिमी देशों में पढ़े भारतीय नेताओं की पश्चिम की शहरी औद्योगिक सभ्यता में आस्था अधिक थी। वास्तव में उनका मॉडल पश्चिमी देशों का ही था, और वे मानते थे कि विकास की पश्चिमी शैली पर ही चलकर भारत अपनी अर्थ व्यवस्था की पटरी पर फिर से वापस पहुंच सकता है। गांधी जी का मॉडल जनसाधारण को कार्य में जुट जाने के लिए प्रेरित करने के लिए बहुत ही अच्छा था। परंतु भारत को एक आधुनिक देश बनाने के उद्देश्य से यह अच्छा नहीं था। यही वजह रही कि आजादी के बाद से जो भी परियोजनायें शुरू की गयीं, शब्दावली तो गांधीवादी रही लेकिन उनकी शैली पश्चिमी रही और वे अल्पकालिक उद्देश्यों को लेकर

बनायी गयीं। सामुदायिक विकास, ग्राम पंचायतें, राष्ट्रीय सेवा योजना, खादी को प्रोत्साहन, समेकित ग्रामीण विकास आदि ऐसी योजनाएं नहीं हैं जिनसे ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की सारी बुराइयों का स्थायी उत्तर मिल ही जाए। बल्कि ये ऐसे उपाय थे जिनके बारे में ग्रामीण आबादी सिर्फ अनुमान लगाती रह सकती थी। भारतीय बुद्धिजीवियों को इस बात का पूरा यकीन था कि यूरोप और अमरीका की तरह भारत का भी एक दिन पूरी तरह शहरीकरण हो जायेगा।

गांव या तो शहरों के फैलने से लुप्त हो जाएंगे या गांवों से लोगों के शहरों की ओर पलायन करने से नष्ट हो जाएंगे। केवल आबादी का 10 प्रतिशत भाग ही गांव में बचा रह जायेगा। इसलिए गांवों के लिए कोई स्थायी या दीर्घकालीन व्यवस्था की जरूरत नहीं है। लेकिन बढ़ती हुई शहरी आबादी की उदर-पूर्ति के लिए खेती में सुधार लाना अनिवार्य होगा। इसके लिए गांवों में शिक्षा को प्रोत्साहन देना होगा ताकि प्रशिक्षण आदि के लिए गांवों से लोगों को शहरों में भेजा जाता रहे।

हमारी वर्तमान स्थिति

पिछले 45 वर्षों के दौरान हमने क्या हासिल किया है? हम खाद्यान्नों के मामले में आत्म-निर्भर हो गये हैं। हमारी औद्योगिक प्रगति उल्लेखनीय रही है। हमारी आबादी का एक चौथाई हिस्सा शहरों में रहता है जो अमरीका की कुल आबादी के बराबर है। हमारी वैज्ञानिक सफलताएं केवल विकासशील देशों के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व के विकसित देशों के लिए भी आकर्षण का विषय रही हैं। हमने अपनी अर्थ व्यवस्था को उन नियंत्रणों से मुक्त करने का कार्यक्रम अपनाया है, जो नियंत्रण पिछले चार दशकों से हमारे यहां लागू थे यह रही हमारे साख की बात। दूसरी ओर भारत की आबादी का एक तिहाई हिस्सा अब भी गरीबी रेखा से नीचे रह रहा है। हमारी आबादी बढ़ने की रफ्तार खतरनाक है। शहरी आबादी का आधा हिस्सा झुग्गी झोंपड़ियों और तंग बस्तियों में रहता है। शिक्षित युवाओं तथा अनपढ़ लोगों का शहरों की ओर पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है। कृषि विकास अब ऐसे बिंदु पर पहुंच चुका है, जिसके और ज्यादा अधिक बढ़ाने की गुंजाइश नहीं रह गयी है और यदि लगातार दो बार सूखा या अकाल पड़ जाये तो देश की खाद्य व्यवस्था गंभीर खतरे में पड़ जाएगी। हमने पृथ्वी के एक हिस्से के पर्यावरण को क्षत-विक्षत कर डाला है। अनेक प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर डाला है। हमारे नगर दुनिया के सबसे ज्यादा प्रदूषित शहरों में हो गये हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य के मामले में हम विश्व के सबसे कम विकसित देशों में से हैं।

यही वजह रही कि आजादी के बाद से जो भी परियोजनाएं शुरू की गई, शब्दावली तो गांधीवादी रही लेकिन उनकी शैली पश्चिमी रही और वे अल्पकालिक उद्देश्यों को लेकर बनाई गई। सामुदायिक विकास, ग्राम पंचायतें, राष्ट्रीय सेवा योजना, खादी को प्रोत्साहन, समेकित ग्रामीण विकास आदि ऐसी योजनाएं नहीं है जिनसे ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की सारी बुराइयों का स्थायी उत्तर मिल ही जाए। बल्कि ये ऐसे उपाय थे जिनके बारे में ग्रामीण आबादी सिर्फ अनुमान लगाती रह सकती थी।

हमारी सफलताओं को हिंसा, भ्रष्टाचार और धन तथा सत्ता की लोलुपता और ग्रामीण क्षेत्रों में निराशा के बादलों ने ढक लिया है। हम एक महान सभ्यता की देन हैं। परंतु हम इस समय केवल उसके ह्रास और पतन को ही देख रहे हैं। हम मूल से कटकर हवा में झूल रहे हैं। हमारे सामने एक ही लक्ष्य रह गया है कि हम कैसे हर चीज पर शासन करें भले ही वह कब्रिस्तान ही क्यों न हो? हमारी व्यवस्था में क्या गड़बड़ी हुई है, इसके कई कारण गिनाए जा सकते हैं लेकिन सभी कारणों का सिर्फ एक कारण लगता है, वह यह कि भारत गांधीवादी मार्ग से हट गया है। हम पश्चिमी लोकतंत्र विज्ञान, टैक्नालोजी और विकास आदि जैसे तमाम शब्दों की भावनाओं को सही ढंग से आत्मसात नहीं कर पाये जैसा कि जापानियों और चीनियों ने किया है और हमारे पतन का यही सबसे बड़ा कारण है।

गांधी जी के ग्राम स्वराज को फिर से अपनाना

गांधी जी की महानता इस बात में है कि उन्होंने विश्व के नए विचारों को आत्मसात् करके और उनमें परिष्कार लाकर, सुधार लाकर उन्हें आत्मसात् किया। जो कुछ शाश्वत और नैतिक था और मानव की मर्यादा के अनुरूप था, उन्होंने उसे अपनाया। उन्होंने ग्राम तथा ग्रामीण पुनर्निर्माण की जिस अवधारणा को प्रोत्साहन दिया वह उनके उस महान लक्ष्य का एक हिस्सा मात्र थी।

गांधी जी ने उसे लक्ष्य को पूरा करने का संकल्प लिया था। वास्तव में सम्पूर्ण ब्रह्मांड का एक उद्देश्य है। हमारा ब्रह्माण्ड अब भी विकसित हो रहा है। इसी तरह मानव का भी विकास हो रहा है। मानवता के बिना मनुष्य पशु है और उसका यह उद्देश्य रखा गया है कि मानवता की ओर बढ़ने के लिए मानव पशु भावनाओं और आकांक्षाओं को त्याग दे। हिंसा अपने विविध रूपों में पाशविक है जो मानव को अनेक रूपों में अपने आगोश में लिए हुए हैं।

गांधी के शब्दों में विकास का तात्पर्य मानवता की ओर विकास

प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना है न कि इसे विपरीत दिशा में चलाना या इसकी गति को धीमा करना। लेकिन ऐसा तभी संभव है जब मानव का अपने ऊपर नियंत्रण हो और इस तरह का नियंत्रण ऐसे समाज में असंभव हो जाता है जिसमें अनेक प्रकार की प्रौद्योगिकियां और उत्पादन प्रक्रिया तथा तेज रफ्तार हो। गांधी जी व्यावहारिक थे और वे हमेशा नयी दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास करते थे। वे नहीं चाहते थे कि औद्योगिक क्रांति की वजह से जो प्रक्रिया चल रही है, उसकी रफ्तार को उल्टा कर दिया जाए। वे सिर्फ इतना चाहते थे कि इस क्रांति को धीरे-धीरे क्रमिक रूप से एक नयी दिशा दी जाए और इसके लिए अंतिम लक्ष्य निर्धारित करना जरूरी था जिसमें शिक्षा और विकास नीतियों के जरिये नया निवेश किया जाए। वे यह जानते थे कि कोई भी दस्तावेज अंतिम दस्तावेज नहीं हो सकता, और किसी मानव प्राणी या उसकी किसी पीढ़ी को यह अधिकार नहीं है कि वह सभी आगामी पीढ़ियों के लिए कोई अंतिम कार्यसूची तैयार कर दे क्योंकि कार्यसूची में बदलते समय के साथ परिवर्तन करना ही होगा। हमें कोई ऐसा लक्ष्य तय करना चाहिए जो हमारी दृष्टि में सही हो, और उसमें पूर्णता प्राप्त करने और अंतिम दस्तावेज तैयार करने का काम हम भावी पीढ़ियों पर छोड़ दें। गांधी जी के अनुसार "नयी सभ्यता के केंद्र में ग्राम होना चाहिए।" लेकिन इस बात को शुरू किये जाने से पहले ही नामंजूर किया गया। इसे कोरा काल्पनिक और प्रगति-विरोधी बतलाया गया। इसके प्रभाव की उपेक्षा कर दी गयी और इसका चुनाव जीतने तथा ग्रामीण लोगों के वोट हासिल करने के लिए राजनीतिक हथकंडों के रूप में इस्तेमाल किया गया। 1990 के दशक में स्थायी विकास का नया नारा दिया गया। लेकिन इस लेख में इस विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती और इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि यदि स्थायी विकास की कोई राह है तो वह है जिसका प्रस्ताव गांधी जी ने किया था।

एक हजार की आबादी की मानव बस्ती एक ऐसा सही आकार है जो समुदाय का गठन करने के लिए उपयुक्त है जिसमें सत्ता का ज्यादा केन्द्रीकरण किए बगैर स्वावलंबन पर जोर दिया जाना चाहिए जिसमें अपनी न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका हो। दूसरी ओर कृषि उद्योग तथा अन्य सेवाओं का इस तरह उपयोग किया जाए जो विभिन्न प्रकार के हुनर और प्रतिभा को उभारने तथा उसको आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध कराये। यदि गांवों का ऐसे विकास होने लगेगा, तो शहरों की ओर लोगों का जाना अपने आप धीमा हो जाएगा और यहां तक कि रुक जाएगा। फिर शहरों में तेजी से बढ़ती तंग बस्तियां, झुग्गी झोपड़ियां आदि लुप्त हो जायेंगी, पर्यावरण का प्रदूषण भी कम होगा और औद्योगिक उत्पादन का कृषि के साथ घनिष्ठ संबंध कायम हो जाएगा। गरीबी और बेरोजगारी भी कम हो जाएगी। ग्रामीण पुनर्निर्माण और विकास के लिए कुछ निम्नलिखित प्रमुख कदम उठाए जा सकते हैं :-

1. भारत को चारों ओर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार पर पूर्णविराम लगाना होगा। इस सारे भ्रष्टाचार की जड़ चुनावी भ्रष्टाचार है।
2. ग्राम पंचायतें तथा अन्य स्थानीय संस्थाएं राजनीति से मुक्त रखी जाएं और पार्टी टिकटों के आधार पर चुनाव न लड़े जाएं।
3. प्रत्येक ग्राम पंचायत को उपयुक्त वित्तीय संसाधन और धनराशि सीधे दी जाए जो उनके खाते में पहुंचे।
4. ग्रामीण औद्योगीकरण का एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया जाए और गांवों में लघु तथा कुटीर उद्योगों के कार्यक्रम को शुरू किया जाए।
5. प्रत्येक गांव के लिए बीस वर्ष की एक बड़ी योजना तैयार की जाए और उस पर अमल किया जाए ताकि भारत में सन् 2015 तक हर गांव निवास योग्य बन जाए।

वास्तव में इस के बारे में असीमित सुझाव दिए जा सकते हैं लेकिन लगभग हर चीज में आमूल परिवर्तन करना होगा। स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने के लिए स्वर्गीय राजीव गांधी ने जो संवैधानिक संशोधन सुझाएं वे वास्तव में सही दिशा में साहसपूर्ण कदम हैं। यदि इस दिशा में ईमानदारी से अमल किया जाए तो नयी व्यवस्था लाने में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। अर्थ व्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने और उसे उदार बनाते हुए जहां विश्व का रूप देने का प्रयास किया जा रहा है, वहीं ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर भी जोर देने तथा ग्रामीण औद्योगीकरण करने की अत्यंत आवश्यकता है। हर पंचायत के लिए एक बृहद योजना और कार्यक्रम बनाने की तत्काल आवश्यकता है जो भूमि के इस्तेमाल तथा आवास के लिए उपयुक्त ढांचा प्रस्तुत कर सके। स्थानीय कालेजों और स्कूलों का भी इसमें सहयोग लिया जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इंग्लैंड ने ऐसा ही किया था और भारत को भी इस समय ऐसा ही कदम उठाने की जरूरत है। अब वक्त आ गया है, जब भारत गांधीवादी पद्धति पर अपने विकास कार्यक्रमों को नये सिरे से तैयार करे और विकास की सारी प्रक्रियाओं का केन्द्र बिंदु गांव को बनाकर यदि सभी कार्यक्रमों पर अमल किया जाए तो निश्चय ही एक नए युग का सूत्रपात हो सकेगा और गांधी के सपनों का 'ग्राम स्वराज' आ सकेगा।

ग्रामीण विकास और गांधी जी

✍ राजीव वोरा

लेखक के अनुसार स्वतंत्रता के बाद हमने ग्रामीण विकास के लिए गांधी जी की राह अनुसरण नहीं किया। इस बारे में अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग के लोगों से गांधी जी के मतभेदों का उल्लेख करते हुए लेखक का मानना है कि शहरी वर्ग द्वारा गांव के लोगों का शोषण किया जा रहा है। भारतीय ग्राम्य-समाज में परम्परा से प्रचलित न्याय और विधि निर्माण के अधिकार की चर्चा भी लेखक ने की है।

ग्रामीण विकास के संदर्भ में आज गांधी जी को याद करना प्रायश्चित करने हेतु तो हो सकता है लेकिन जो कुछ हो रहा है उसे गांधी जी के विचारों के अनुरूप तो नहीं कहा जा सकता। प्रश्न—हम गांधी जी के रास्ते से भटक गये हैं कि नहीं, यह पूछने भर का भी नहीं है क्योंकि भटकने का बोध तो उसे होता है जो सही रास्ते पर जाना चाहता हो, लेकिन पूरा पता न होने के कारण दूसरे किसी रास्ते पर चला जाता है उसे उस दूसरे रास्ते का भी ज्ञान नहीं होता। अगर उसे यह भान हो कि यह दूसरा रास्ता फलां जगह पर ले जाता है और उसके मार्ग में फलां फलां पड़ाव पड़ते हैं तो कम से कम उस रास्ते को तो वह छोड़ ही देगा। समझ लेगा कि यह तो उसका रास्ता नहीं ही है। लेकिन अगर उसे रास्ते का ठीक से ज्ञान ही नहीं हो तो वह अज्ञानवश, निर्दोष भाव से या भोलेपन से या किसी और के प्रभाव में आकर भी किसी दूसरे रास्ते पर चल सकता है। भटकना इसे कहते हैं। न कि अपनी पसंद से, अपने हिसाब से पूरा सोच समझकर और अपने से अधिक ज्ञानी लोगों द्वारा आगाह किये जाने पर भी जब कोई किसी खास रास्ते पर चल पड़ता है, इतना ही नहीं दूसरों को महज अपनी सत्ता के कारण निर्देशित करने लग जाता है तब उसे भटक गया कैसे कहेंगे? उस निर्दोषता या भोलेपन को ओढ़ने का उसे बिलकुल अधिकार नहीं है, जो भटके हुए राहगीर को होता है।

"गांधी जी के रास्ते से हम भटक गये हैं क्या?" इसमें फिर यह "हम" कौन हैं? "हम" कह कर क्या इस सदोष भटकाव की जिम्मेदारी में सारे देशवासियों को सम्मिलित मान लेना वाजिब है? गांधी जी के आदर्शों, विचार और कार्यक्रमों से भिन्न ही नहीं बल्कि विपरीत दिशा में देश के नवनिर्माण का रास्ता चुनने की जिम्मेदारी सारे देश पर नहीं लादी जा सकती। इन आदर्शों से भिन्न किस्म के आदर्शों और उन्हें प्राप्त करने के साधन और तरीकों पर गांधी जी से बिल्कुल विपरीत राय रखने वाला एक खास वर्ग था। गांधी जी का उनसे सतत संघर्ष रहा। गांधी जी ने एक से अधिक बार यह कहा कि देश के अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग से उनके गहरे मतभेद हैं तथा उन्हें वे अपने साथ नहीं रख पा रहे हैं। इतना ही नहीं 1925 में उन्होंने एक प्रश्न के उत्तर में यहां तक कह दिया कि "अंग्रेज तब चले जायेंगे जब उन्होंने हमारे ही भीतर अपने दलालों का एक वर्ग पैदा कर दिया होगा।" भारत की ग्राम्य व्यवस्था के पुनः निर्माण के विषय में गांधी जी और पं. जवाहर लाल नेहरू के बीच 1927 से लेकर 1945 तक जो कुछ महत्वपूर्ण पत्र व्यवहार हुआ उसमें दोनों के मतभेद उभरकर आए।

गांधी जी जहां भारत की ग्राम्य संस्कृति को राष्ट्रीय निर्माण का प्रेरणा स्रोत समझते थे वहीं भारत का अंग्रेजी पढ़ा लिखा वर्ग गांवों को नैतिक और बौद्धिक संकीर्णता तथा पिछड़ेपन का प्रतीक समझता था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने गांधी जी को जो कुछ लिखा उसके कुछ अंश देखने से गांवों के प्रति भारत के नये शासक वर्ग का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

श्री जवाहर लाल नेहरू को पत्र लिखकर गांधी जी ने कहा:

"यद्यपि मुझे तुम्हारे मेरे बीच का दृष्टिभेद कुछ-कुछ दिखाई देने लगा था, मुझे कतई अन्दाज नहीं था कि ये मतभेद इस भयानक हद तक के होंगे....तुम्हारे और मेरे बीच के मतभेद इतने व्यापक और मूलभूत किस्म के हैं हमारे बीच कोई सहमति का आधार मुझे नहीं दिखाई देता........।"(17 जनवरी, 1925)

भारत के भावी निर्माण की दिशा के सम्बन्ध में ये मतभेद मूलभूत रूप से व्यक्तिगत नहीं माने जाने चाहिए। श्री नेहरू उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे जो अंग्रेजी शिक्षा पाकर भारत को, उसके लोगों को, उसकी परापूर्व से निर्मित उस व्यवस्था तथा बुद्धि को जड़ और हीन समझने लगे थे जिसे गांधी जी बिलकुल, दूसरी नजर से देखते थे। वे मानते थे कि विदेशी शासन के चले जाने तथा कुछ कालक्रम में आई विकृतियों से भारतीय समाज में आये दोषों की साफ-सफाई कर दी जाए तो भारत की ग्राम्य व्यवस्था फिर से सजीवन हो जाएगी और केवल वही व्यवस्था ऐसी है जो

आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की आत्म और पर विनाशकारी प्रवृत्ति से मानव जाति को उबार सकती है। वह व्यवस्था अर्थ और काम की प्रवृत्ति पर धर्म और मोक्ष की प्रेरणा से अंकुश रखती है जबकि पाश्चात्य सभ्यता में ''धर्म और नीति की तो बात ही नहीं है।'' उसमें सत्ता, सम्पत्ति और साधनों का केन्द्रीकरण नहीं होता, गांव के श्रम और साधनों पर गांवों का ही अधिकार होता है तथा खेती प्रधान जीवन शैली में अन्य उद्योग खेती का शोषण न करके उसके द्वारा निर्मित अर्थ व्यवस्था के अधीन रहते हैं, जिसके चलते किसान और किसानी से जुड़ा समाज सम्पन्न रहता था। जबकि आधुनिक व्यवस्था ग्राम्य व्यवस्था तथा किसानों से विविध प्रकार से—जिन प्रकारों को कानूनी रूप दे दिया जाता है—धन, साधन-स्रोत तथा श्रम की लूट मचा कर ही खड़ी होती है तथा खुद को टिकाये रखती है। ऊपर से वह देश पर मुट्ठी भर लोगों का प्रभुत्व बढ़ा देती है

वे (गांधी जी) मानते थे कि विदेशी शासन के चले जाने तथा कुछ कालक्रम में आई विकृतियों से भारतीय समाज में आए दोषों की साफ-सफाई कर दी जाए तो भारत की ग्राम्य व्यवस्था फिर से सजीवन हो जाएगी और केवल वही व्यवस्था ऐसी है जो आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की आत्म और पर विनाशकारी प्रवृत्ति से मानवजाति को उबार सकती है।

जो पश्चिम से सम्बन्ध रखकर, उनकी विद्या, भाषा तथा तौर तरीके सीखकर इस लूट के तंत्र को पश्चिम की सत्ता के हित में चलाते रहने की काबलियत हासिल कर लेते हैं। इसलिए गांधी जी ने अंग्रेजी पढ़े लिखे तथा पाश्चात्य व्यवस्था के पक्षधर लोगों को 'पश्चिम के दलाल' की संज्ञा दी तथा कहा कि मेरा मुख्य विरोध इन्हीं लोगों से है। ये वर्ग आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का पूजक होने के कारण भारत की स्वावलम्बी और महद अंश में स्वायत तथा स्वाधीन व्यवस्था के विरोधी थे। नयी शहरी सभ्यता पर आधारित उनकी कल्पना का भारत गांवों का सर्वांगीण शोषण करके तथा प्राकृतिक संसाधनों का विनाश करके ही खड़ा हो सकता था। ये लोग पाश्चात्य जीवन शैली से अभिभूत थे।

इस विषय पर नेहरू जी से चल रही बहस के क्रम में 1945 में गांधी जी ने लिखाः

''करोड़ों लोग शांति और सुविधा का जीवन कभी शहरों और महलों में नहीं पा सकते।....हिंसा और असत्य के रास्ते पर वे ऐसा नहीं कर सकते।...गांवों की तो सादगी में से ही हमें उस सत्य और अहिंसा की दृष्टि मिलेगी।.....जीवन की वास्तविकता और स्वत्व के लिए जरूरी वस्तुएं प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार और नियंत्रण में होनी चाहिए। व्यक्ति का स्वयं का इस पर नियंत्रण नहीं हो तो वह जी नहीं सकता.......।''

श्री नेहरू ने उत्तर में लिखा : ''मेरी समझ में नहीं आता कि सत्य और अहिंसा का मूर्त स्वरूप अनिवार्यतः गांवों में क्यों संभव होना चाहिए। आमतौर पर गांव तो बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा होता है और ऐसे पिछड़ेपन के वातावरण में से प्रगति की ओर कतई आगे नहीं बढ़ा जा सकता। संकीर्ण दिमाग वाले लोग ही अधिकतर हिंसक और झूठे होते हैं।''

''करोड़ों लोगों के लिए महल-बंगले का प्रश्न नहीं है। लेकिन इस बात का कोई कारण नजर नहीं आता कि करोड़ों लोगों के पास सुख-सुविधा से सज्ज आधुनिक मकान जिसमें कि वे सभ्यतापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें, क्यों नहीं होने चाहिए..... शहरों की सभ्यता और संस्कृति से लाभान्वित होने को गांवों को हमें उत्साहित भी करना पड़ेगा।''

गांधी जी की कल्पना के विषय में नेहरू जी ने लिखा, ''केवल धुंधला-सा चित्र मात्र मेरे दिमाग में है.... मैं उसे अवास्तविकतापूर्ण तब भी मानता था, आज भी मानता हूं।......आप जानते हैं कि कांग्रेस ने उस चित्र को सोच-विचार के काबिल नहीं समझा, उसे अपनाने की तो बात ही दूर रही....।''

जहां तक हमारी राज्य व्यवस्था का प्रश्न है गांधी जी के विचारों की मान्यता नहीं है। यह सवाल उठाना कि ''गांधी जी के विचारों के अनुकूल कुछ हुआ है कि नहीं'' या ''कहां हमारी उस हिसाब से गलती हुई है'' इत्यादि बेमानी सवाल हैं। यह सवाल किया जाना चाहिए कि क्यों हमारी व्यवस्था ने गांधी जी को छोड़ दिया है।

भारतीय ग्राम्य-समाज में परंपरा से न्याय और विधि निर्माण का अधिकार रहा है जिससे ग्राम्य-समाज का अपने पर अपना शासन चलता था। वे उसे समझते थे इसीलिए पालन कर सकते थे तथा उसमें अपने हिसाब से सुधार भी कर सकते थे।

स्पष्ट है कि एक औपनिवेशिक शिक्षा के परिणामस्वरूप पैदा हुए इस शासक वर्ग ने अपनी मान्यताओं के आधार पर उस दिशा का चयन देश के लिए किया जिसके परिणामस्वरूप आज भारत के सात लाख गांव केवल शहरों की जरूरत पूरी करने वाले, शहरी व्यवस्था का उपनिवेश बन कर रह गये हैं। इस कथन का सीधा सादा स्पष्ट प्रमाण यही है कि औपनिवेशिक समय में जिस प्रकार गांवों का नैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पतन होता रहा वैसा ही पतन, शायद अधिक तेजी से ही, आजादी के बाद के वर्षों

में हुआ है। अनेक आंकड़े शहरी वर्ग द्वारा ग्रामवासियों और ग्राम्य क्षेत्र के शोषण को खोलकर बताते हैं। वे देना यहां जरूरी नहीं, फिर भी यही ताजा आंकड़ें चौंकाने के लिए पर्याप्त हैं कि बिहार जैसे कुदरत से समृद्ध प्रदेश में अस्सी प्रतिशत बच्चे बुरी तरह भूख के शिकार हैं। देश के जंगल, पानी और भूमि का जो ह्रास हुआ है उसके आंकड़ों ने डेढ़ दशक से सबको चिन्तित कर रखा है। देश की करीब एक चौथाई जनता अपने घरों से बेदखली की स्थिति में है। दस में से नौ पशु भूखे मर रहे हैं और एक तिहाई भूमि अपनी उर्वरता गंवा चुकी है। सामाजिक स्तर पर जहां अंग्रेजी पढ़ा-लिखा वर्ग अपने में पूरी तरह संगठित है और इसलिए पिछले पैंतालिस वर्षों में उसकी स्थिति में बेहद तरक्की हुई है ग्राम्य समाज को आर्थिक और जातीय समूहों में बांट कर समाज को पूरी तरह तोड़कर बेहद असंगठित कर उन्हें आपस में ही युद्ध की स्थिति में उलझा दिया है।

भारत के गांवों की जो भी विशेषताएं रही या जो कुछ उनका अपना रहा—उद्योग, तकनीक, कौशल, भाषा—उनको लेकर कोई विकास की वर्तमान धारणा के अनुसार प्रगतिशील, 'उन्नत' या 'विकसित' नहीं हो सकता। भारतीय ग्राम्य समाज में परंपरा से न्याय और विधि निर्माण का अधिकार रहा है जिससे ग्राम्य समाज का अपने पर अपना शासन चलता था। वे उसे समझते थे इसीलिए पालन कर सकते थे तथा उसमें अपने हिसाब से सुधार भी कर सकते थे अंबेडकर जी को अगर गांवों की अपनी व्यवस्था से इसलिए शिकायत रही कि उस व्यवस्था ने हरिजनों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया था, तो उसका उपाय उसी स्तर पर किया जाना चाहिए था। लेकिन उसके बदले भारत के संविधान में गांवों की एक इकाई के रूप में मान्यता ही खत्म कर दी गई। परिणाम यह हुआ कि अब समस्त ग्राम्य समाज एक छोटे से अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग की आंकाक्षाओं को पूरा करने का मानव संसाधन बन कर रह गया है।

गांधी शांति प्रतिष्ठान,
221-223, दीन दयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली

ग्रामीणों को इतनी ज्यादा कुशलता पैदा करनी पड़ेगी कि उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं के लिए तैयार बाजार खड़ा मिले। जब हमारे गांव पूरी तरह से विकसित हो जाएंगे तो उनमें कुशल और कला से युक्त प्रतिभावान लोगों की कोई कमी नहीं होगी।

—महात्मा गांधी

हमारी अर्थनीति की दिशा और दशा

✍ यशपाल जैन

इस लेख में लेखक ने बताया है कि गांधी जी ग्रामवासियों की दयनीय हालत को समझते थे। इसलिए उन्होंने अपनी सारी नीतियां और कार्यक्रम गांवों और ग्रामीण विकास को ध्यान में रखकर तय किए। लेखक ने कहा है कि आज गांवों की दशा सुधारने के लिए पैसा तो बहाया जा रहा है परंतु गांव वालों को अपनी हालत सुधारने हेतु मेहनत करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा रहा। लेखक ने देश की काफी बड़ी आबादी के गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने का कारण नीतियों में कहीं कुछ खामियों को माना है और उन पर पुनर्विचार करने का सुझाव दिया है।

4 अप्रैल 1936 के 'हरिजन' में गांधी जी ने लिखा था, "मेरा विश्वास है और मैंने इस बात को असंख्य बार दुहराया है कि भारत अपने चंद शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गांवों में बसा हुआ है, लेकिन हम शहरवासियों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और गांवों का निर्माण शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए ही हुआ है। हमने कभी यह सोचने की तकलीफ नहीं उठाई कि उन गरीबों को पेट भरने जितना अन्न और शरीर ढकने जितना कपड़ा मिलता है या नहीं और धूप तथा वर्षा से बचने के लिए उनके सिर पर छप्पर है या नहीं।"

गांधी जी ने इस सत्य को इतनी गहराई से अनुभव किया कि उन्होंने अपनी सारी नीतियां ग्रामों और ग्राम विकास को लक्ष्य में रखकर ही निर्धारित कीं। इतना ही नहीं उन्होंने स्वयं ग्राम वासियों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, सादगी आदि को अपनाया। उनके साबरमती और सेवाग्राम आश्रम इसकी जीती-जागती मिसालें थे।

भारत में यह प्रयोग करने से पहले उनका ध्यान दक्षिण अफ्रीका में गया, जहां उन्होंने मानवीय अधिकारों के लिए इक्कीस वर्ष तक सतत संघर्ष किया था। उसी दौरान एक दिन अनायास उनके सामने अंग्रेजी के विख्यात लेखक जॉन रस्किन की "अन्टू दि लास्ट" पुस्तक आई। इस पुस्तक का उनके जीवन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा। तीन बातें मुख्यतः उनके समक्ष आईं: 1. सबकी भलाई में अपनी भलाई है। 2. छोटे-बड़े काम में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि आजीविका का सबको समान अधिकार है। 3. मेहनत मशक्कत अर्थात किसान-मजदूर की कमाई ही सच्ची कमाई है। इनमें से पहली दो बातें उनके ध्यान में थीं, तीसरी इस पुस्तक से उन्हें सूझी और अगले दिन ही वह अपने आश्रम को शहर से हटाकर खेत पर ले गए, जहां सारे आश्रमवासियों ने स्वयं शरीर श्रम से अपनी जीविका कमाने का उपक्रम किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि जो प्रयोग उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में आरंभ किया, उसे जीवन पर्यन्त छोड़ा नहीं।

भारत की 85 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। उसकी दुर्दशा को गांधी जी ने स्वयं अपनी आंखों से देखा। उन्होंने लिखाः

"मैंने पाया है कि शहरवासियों ने आम तौर पर ग्रामवासियों का शोषण किया है। सच तो यह है कि वे गरीब ग्रामवासियों की ही मेहनत पर जीते हैं। गांवों की अधिकांश आबादी लगभग भुखमरी की हालत में रहती है। दस प्रतिशत अधभूखी रहती है और लाखों लोग चुटकी भर नमक और मिर्च के साथ मशीनों का पालिश किया हुआ निस्सत्व चावल या रूखा सूखा अनाज खाकर अपना गुजारा चलाते हैं। आप विश्वास कीजिए कि यदि उस किस्म के भोजन पर हम लोगों में से किसी को रहने के लिए कहा जाए तो हम एक माह से ज्यादा जीने की आशा नहीं कर सकते या फिर हमें यह डर लगेगा कि ऐसा खाने में कहीं हमारी मानसिक शक्तियां नष्ट न हो जायें। लेकिन हमारे ग्राम वासियों को तो इस हालत में से रोज रोज गुजरना पड़ता है।"

गांधी जी ने समझ लिया कि देश की अधिसंख्यक आबादी के दयनीय अवस्था में रहने पर भारत के अभ्युत्थान की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः भारत स्वतंत्र हो, उससे पहले ही उन्होंने गांवों पर अपना ध्यान केन्द्रीभूत किया। वह जिस रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे, उसका अधिष्ठान उन्होंने ग्राम स्वराज्य को बनाया। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, शैक्षिक आदि सभी दृष्टियों से ग्रामों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। गांधी जी के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ था सब प्रकार से स्वावलम्बी बनना, अपने अभिक्रम को जगाना, अपने सड़े-गले रिवाजों, अपने अंध-विश्वासों को दूर करना, मिल-जुलकर रहना, शराब तथा अन्य द्रव्यों को पास न फटकने देना, घूरों के ढेर को दूर करके गांवों को सब तरह से स्वच्छता का नमूना बनाना, सामाजिक जीवन के लिए जरूरी और महत्व के उद्योग-धन्धों को अपनाना, स्वदेशी की भावना को बढ़ाना और टिकाना, भारत के

सभी श्रेष्ठ तत्वों से जोड़ने वाली बुनियादी तालीम की व्यवस्था करना, बड़ी उम्र के लिए सीधी सादी भाषा में पढ़ाई लिखाई का प्रबन्ध करना, आर्थिक समानता स्थापित करना, किसान-मजदूरों की हालत में सुधार करना। इन सबको उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों का अंग बनाया। ग्राम पंचायतों को संगठित करके उनके द्वारा देश के शासन को संचालित करना उन्हें अभीष्ट था। जिस प्रकार मजबूत भवन के लिए मजबूत नींव होना आवश्यक है, उसी प्रकार स्वराज्य की बुनियादी इकाई वह पंचायती राज को मानते थे।

गांधी जी के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ था सब प्रकार से स्वावलम्बी बनाना, अपने अभिक्रम को जगाना, अपने सड़े-गले रिवाजों, अपने अंध-विश्वासों को दूर करना मिल-जुलकर रहना, शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों को पास न फटकने देना, घूरों के ढेर को दूर करके गांवों को सब तरह से स्वच्छता का नमूना बनाना, सामाजिक जीवन के लिए जरूरी और महत्व के उद्योग-धन्धों को अपनाना, स्वदेशी की भावना को बढ़ाना और टिकाना, भारत के सभी श्रेष्ठ तत्वों से जोड़ने वाली बुनियादी तालीम की व्यवस्था करना, बड़ी उम्र के लिए सीधी सादी भाषा में पढ़ाई लिखाई का प्रबन्ध करना, आर्थिक समानता स्थापित करना, किसान-मजदूरों की हालत में सुधार करना।

अपने सपनों के भारत का चित्र प्रस्तुत करते हुए गांधी जी ने लिखा था:

"मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूंगा जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी महसूस करेंगे कि यह उनका देश है जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों में पूरा मेल जोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा, हम न किसी का शोषण करेंगे, न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे।"

इस प्रकार गांधी जी ने स्पष्ट कर दिया कि वे आजाद भारत का विकास किस आधार पर करना चाहते हैं।

देश आजाद हुआ। देश के शासन की बागडोर भारतीय नेताओं के हाथ में आई लेकिन दुर्भाग्य से कुछ ही समय बाद गांधी जी चले गए। जिन नेताओं के हाथ में शासन आया उन्होंने देश का शासन चलाने और देश की गरीबी को दूर करने के प्रयास शुरू किए। उन्होंने सीमेंट, इस्पात, बिजली आदि के बड़े-बड़े कारखाने खोले और परावलम्बी राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास किया। पंचवर्षीय योजनाएं बनाईं, किन्तु वे यह भूल गए कि समाज और राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास मानव अर्थात मानव नीति की धुरी पर अवलम्बित है। उन्होंने भौतिक मूल्यों पर जोर दिया, मानव उपेक्षित हो गया। गांधी का रास्ता बड़ी तेजी से छूटता गया।

गांधी जी ने बार-बार कहा था कि हम उतने ही पैर पसारें, जितनी लम्बी हमारी चादर है, लेकिन देश के कर्णधारों के सामने तो अमरीका और रूस के स्वप्न थे। वे एक रात में भारत को अमरीका और रूस बना देना चाहते थे। मुझे याद है कि जब पहली पंचवर्षीय योजना बनी तो पं० जवाहरलाल नेहरू ने आचार्य विनोबा भावे को सलाह मशविरे के लिए दिल्ली बुलाया और उनके सामने पंचवर्षीय योजना के आंकड़े रखते हुए कहा कि इन पांच वर्षों के भीतर देश का कायाकल्प हो जाएगा। विनोबा परम ज्ञानी थे। वह दृष्टा थे। गांधी जी की तरह देश की स्थिति और साधनों को पहचानते थे। उन्होंने कहा, "एक भूखे आदमी को कहो कि उसका घर एक महीने बाद अनाज से भर जाएगा तो उस आदमी का उत्तर होगा, मैं एक महीने जीवित रहूंगा या नहीं। भारत कृषि प्रधान देश है। अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए किसान को अच्छा बीज दो और सिंचाई की सुविधा करो। अन्न का उत्पादन बढ़ेगा तो देश की खुशहाली बढ़ेगी।"

मानना होगा कि आजादी के बाद देश ने असामान्य उन्नति की। वह स्वावलम्बी बन गया, लेकिन नैतिक मूल्य आहत होते गए। पद और अर्थ ऊंचे बने, मनुष्य छोटा हुआ। आज हमारा देश मूल्यों के भारी संकट से गुजर रहा है तो उसका मूल कारण यही है कि देशकाल की परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा गया। देश के सामने घोर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। नई-नई पंचवर्षीय योजनाएं बनती गई किन्तु उन्हें पूरा करने के लिए भारत को दूसरे देशों का मुंह ताकना पड़ा।

भ्रष्टाचार इतना बढ़ा कि उसने सारे देश को आक्रांत कर दिया है। घाटे के बजट ने मुद्रास्फीति को जन्म दिया। मुद्रास्फीति ने महंगाई को बढ़ावा दिया। इन व्याधियों के साथ-साथ देश में आतंकवाद ने अपना खूनी पंजा फैलाया।

अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया कि राष्ट्रीय नीतियों के कारण अमीर अधिक अमीर बना है, गरीब अधिक गरीब हुआ है। शहर पनपे हैं और गांव सूखे हैं।

गांधी जी ने बड़ी-बड़ी मशीनों का विरोध किया था, क्योंकि वह मानते थे कि बड़ी-वड़ी-मशीनें मानव श्रम को अकारथ बना देती हैं। वही हुआ। देश में ज्यों ज्यों मशीनी युग बढ़ता गया आदमियों का श्रम बेकार होता गया।

लेकिन बदकिस्मती यह है कि गांवों के नाम पर रुपया पानी की तरह बहाया जाता है, परन्तु ग्रामवासियों को अपने हाथ पैरों की मेहनत से अपनी दशा सुधारने के लिए प्रेरित नहीं किया जाता।

आज हम देखते हैं कि देहातों की हालत पहले से भी वदतर हो गई है। पौष्टिक आहार की कमी, स्वच्छ मकानों का अभाव, निरक्षरता, बीमारी आदि ने ग्राम व्यवस्था को जर्जर कर दिया है। सरकार करोड़ों अरबों रुपया देहातों की भलाई के लिए खर्च करती है, लेकिन पता नहीं कि वह रुपया कहां जाता है। स्वर्गीय राजीव गांधी ने तो साफ साफ कह दिया था कि गांवों को एक रुपया देते हैं तो मुश्किल से पन्द्रह पैसे वहां पहुंचते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। खेती के काम में किसान के मुश्किल से चार महीने लगते हैं। शेप महीने वह प्रमाद में व्यतीत करता है। गांधी जी ने कहा था कि किसानों को पूरक उद्योग धन्धे दो जिससे न केवल उसके समय का उपयोग हो अपितु देश का उत्पादन भी बढ़े। गांवों के लिए कहने को उद्योग धन्धों की व्यवस्था की गई लेकिन उसके पीछे किसी प्रकार की गंभीरता नहीं थी। दुर्भाग्य से आजादी के सैंतालीस वर्ष बाद भी ज्यादातर देहात बड़ी ही बुरी हालत से गुजर रहे हैं। उनके टूटे फूटे घर, कूड़ों के ढेर, अधनंगे बच्चे, विभिन्न बीमारियों से आक्रांत नर-नारी, निरक्षरता का साम्राज्य, अन्ध विश्वास, ये तथा ऐसी ही बुराइयां आज वहां देखी जा सकती हैं।

गांधी जी ने गांवों की दुर्दशा पर कांग्रेसी नेताओं तथा कार्यकर्ताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों तथा बड़ी बड़ी सभाओं की व्यवस्था देहातों में कराई थी। इसके साथ ही देश के नौजवानों का आह्वान किया था कि वे देहातों में जाएं। उन लोगों के बीच उन्हीं की तरह रहें और वहां पैसे के जोर पर नहीं, देहात के लोगों में उत्साह जागृत करा कर काम करने का प्रयत्न करें। लेकिन वदकिस्मती यह है कि गांवों के नाम पर रुपया पानी की तरह बहाया जाता है, परन्तु ग्रामवासियों को अपने हाथ पैरों की मेहनत से अपनी दशा सुधारने के लिए प्रेरित नहीं किया जाता।

सरकार ने अब उदारीकरण की नई आर्थिक नीति बनाई है, जिसके फलस्वरूप बाहर की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत का दरवाजा पूरी तरह खुल गया है। हमारे प्रधानमंत्री बार-बार कह रहे हैं कि हमारी योजनाओं को अब बाहर की कंपनियां पूरा करेंगी। उन पर खर्च होने वाला हमारा रुपया और कामों के लिए बच जाएगा। आज यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि जिस प्रकार पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, उसी प्रकार बाहर से आने वाली विशालकाय मशीनें भारत के कुटीर उद्योगों को निगल जाएंगी, कम्प्यूटर लाखों करोड़ों हाथों को बेकार बना देंगे और जिस मानव श्रम की हमारे देश में बहुतायत है, वह बिलखता रह जाएगा।

इस संवंध में महात्मा गांधी कहते हैं:

"हमारी अर्थ-व्यवस्था में उन मशीनों के लिए कोई जगह नहीं होगी, जो मनुष्य की मेहनत की जगह लेकर कुछ लोगों के हाथों में सारी ताकत इकट्ठी कर देती हैं। सभ्य लोगों की दुनिया में मेहनत की अपनी अनोखी जगह है। उसमें ऐसी मशीनों की गुंजाइश होगी जो हर आदमी को उसके काम में मदद पहुंचायें।"

आगे फिर वह कहते हैं:

"सच तो यह है कि हमें गांव वाला भारत और शहरों वाला भारत, इन दो में से एक को चुन लेना है। गांव उतने ही पुराने हैं जितना कि यह भारत पुराना है। शहरों को विदेशी आधिपत्य ने बनाया है। जव यह आधिपत्य मिट जाएगा तब शहरों को गांवों के मातहत होकर रहना पड़ेगा। आज तो शहरों का बोलवाला है और वे गांवों की सारी दौलत खींच लेते हैं, इससे गांवों का ह्रास और नाश हो रहा है। गांवों का शोषण खुद एक संगठित हिंसा है। अगर हमें स्वराज की रचना अहिंसा के पाए पर करनी है तो गांवों को उनका उचित स्थान देना होगा।"

विगत वर्षों के आधार पर हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी नीतियों में कहीं कोई खामी है, जिससे देश की काफी बड़ी आवादी आज भी गरीवी की रेखा के नीचे जीवन बिता रही है। इसलिए हमें अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

गांधी जी का मार्ग आज भी खुला है उससे हम जितना दूर जाएंगे, उतना ही देश का नुकसान होगा। अब तो यह साफ है कि यदि हमारा लक्ष्य-विन्दु शहर रहेंगे और गांवों की ओर हमारी उदासीनता रहेगी तो हमारी नीतियां राष्ट्रहित सावित नहीं करेंगी।

सस्ता साहित्य मंडल,
एन-17 कनाट सर्कस,
नई दिल्ली–110001

ग्रामीण विकास–गांधी जी के अनुरूप

✍ प्रो. के.डी. गंगराडे

लेख में विकास नीतियों की खामियों का जिक्र करते हुए लेखक ने कहा है कि जीवन को केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। बहुत सी वस्तुएं ऐसी हैं जिन्हें खरीदा नहीं जा सकता। लेखक ने ऐसी 14 चीजों के नाम गिनाए हैं जो सुखी जीवन के लिए जरूरी हैं। लेखक ने बताया है कि वर्तमान विकास नीतियों ने किस तरह मानवीय संबंधों पर गहरी चोट की है और रुपये को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया है।

गांधी जी ने 1945 में जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखा कि "मेरे आदर्श गांव में बुद्धिमान व्यक्ति होंगे। वह पशुओं की तरह गंदगी और अंधेरे में नहीं रहेंगे।....पुरुष व महिलायें स्वतंत्र होंगे और वह दुनिया में किसी के विरुद्ध भी निजित्व कायम रखेंगे। प्लेग, हैजा व चेचक की बीमारियां नहीं होगी, न कोई बेकार होगा और न कोई ऐशो-आराम में लोटेगा। रेलवे, डाक तार इत्यादि की व्यवस्था की कल्पना की जा सकती है।" वास्तव में जब हम जन आधारित विकास को अपना प्राथमिक लक्ष्य मानकर विचार करते हैं। उसमें गांव का शहरों द्वारा शोषण नहीं होना चाहिए जैसा कि आज हो रहा है बल्कि कृषि और उद्योग तथा गांव और शहर में पूरा समन्वय होना चाहिए।

भारत गांवों में रहता है। जब तक हम उनका सुधार, पुनः निर्माण और विकास नहीं करेंगे, देश का विकास नहीं हो सकता। गांधी जी ने कहा था, "यदि भारत को विनाश से बचाना है तो हमें सीढ़ी के सबसे निचले भाग से शुरू करना होगा। यदि निचला भाग सड़ा हुआ है तो ऊपर और बीच के हिस्सों पर किया गया काम अन्त में गिर पड़ेगा। ग्राम विकास के संदर्भ में शहर-गांव का प्रतिरोध मुख्य समस्या है—गांव का शोषण हिंसा है।" इसी तरह के विचार रवीन्द्र नाथ टैगोर ने व्यक्त किए थे। उन्होंने कहा था कि "भारत माता (गांव) को पद से गिराकर गांव के साधनों को शहरों में खींच कर नौकरानी बना दिया है।" इस शोषण ने गांधी जी को यह कहने पर मजबूर किया था कि "गांवों का खून शहरों की इमारत में लगा सीमेंट है। मैं चाहता हूं कि वह खून जो शहरों की अंतड़ियों में बह रहा है वह फिर गांवों के शरीर में वापिस आ जाए।" गांव हमारे देश और राज्य के विकास का मुख्य आधार है क्योंकि पेड़ों की वृद्धि के लिए जड़ों का मजबूत होना जरूरी है। गांधी जी आमूल विकेन्द्रीकरण चाहते थे जिससे ग्रामीण जीवन का पुनः विकास हो सके।

गांधी जी के पंडित नेहरू को लिखे महत्वपूर्ण पत्र का उद्देश्य राष्ट्र के सम्मुख गांव का केस रखना था। आज हम मुड़कर देखें तो गांधी जी की इस विकल्प परियोजना को स्वीकार करने वाला कोई नहीं हैं।

वर्षों की सामाजवादी अर्थ व्यवस्था के बाद भी आज भी हममें यह स्वीकार करने की हिम्मत नहीं है कि यह कोई समाजवाद नहीं था वरन् बिगड़ा हुआ उद्यमी स्वरूप।

सच्चाई को स्वीकार करने की असमर्थता ने आने वाली अर्थ व्यवस्था को प्रभावित किया है। इसी प्रकार कोई विश्वास ही नहीं करता कि गांधी कार्यक्रम पर कभी अमल किया गया था। साम्राज्यवादियों ने भी दबी जबान में भविष्यवाणी की कि सत्ता का हस्तांतरण पिछड़ों को ऊपर लाएगा। साम्राज्यवादियों को मालूम था कि दोहरे व्यक्तित्व से अर्थ व्यवस्था को संवारा नहीं जा सकता।

विकास का स्वरूप

प्रयास और नतीजों के बीच भारी असंगति को परम्परागत अर्थ व्यवस्था में खोजा जा सकता है जो कि स्वयं में दोषपूर्ण है। जब तक इस के स्वरूप, संस्थाओं और उनसे संबंधित गुणवत्ताओं में आमूल परिवर्तन नहीं होता, आम जनता के जीवन में वास्तविक सुधार और खुशहाली को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। रूढ़िगत अर्थ व्यवस्था विकास को आर्थिक प्रगति से और आर्थिक प्रगति को बड़े आधार पर औद्योगीकरण के साथ जोड़ती है। विकास गति को राष्ट्रीय सकल उत्पाद से संबंधित किया जाता है। विकास दर की इस कटु धारणा ने हमें दूसरे योजनाबद्ध क्षेत्रों, जैसे रोजगार में वृद्धि और गरीबी उन्मूलन के प्रति उदासीन बना दिया है। रूढ़िगत विकास नीतियों ने अमीर को अधिक अमीर और गरीब को ज्यादा गरीब बनाया है। यह उच्च वर्ग से प्रभावित विकास नीति है।

* भूतपूर्व कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उच्च श्रेणी से प्रभावित विकास

मौजूदा विकास का स्वरूप समाज के उच्च वर्ग द्वारा प्रभावित है। इससे धनवान और बहुत धनवान वर्ग को लाभ पहुंचा है जबकि निम्न वर्ग गरीबी और अपमान की स्थिति में जीवन बसर कर रहा है भारत की पंचवर्षीय योजनाओं ने ऊपर के 20 प्रतिशत वर्ग को लाभान्वित किया है जिसके पास राष्ट्रीय संपत्ति का 50 प्रतिशत हिस्सा है और इसने 80 प्रतिशत आबादी को बिल्कुल अलग छोड़ दिया है। श्री के. एस. चार्ल्स के लेख के अनुसार जो गांधी मार्ग के जुलाई-सितम्बर 1990 के अंक में प्रकाशित हुआ था, इस विकास नीति का लोगों से कोई संबंध नहीं है।

आर्थिक विकास के नाम पर प्राकृतिक सौन्दर्य को बर्बाद किया जा रहा है। जन जातियों को अपने स्थान से उखाड़ा जा रहा है, पुनः प्राप्त न होने वाले प्राकृतिक स्रोतों को बिना सोचे समझे नष्ट किया जा रहा है तथा हवा, पानी, भूमि और खाद्य पदार्थों को प्रदूषित किया जा रहा है।

संख्या बनाम गुणवत्ता

जब विकास नीति को राष्ट्रीय आय के अनुपात में मापा जाता है तो इसका सीधा परिणाम आंकड़ों को देखना है। गुणवत्ता को बिल्कुल भुला दिया जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है कि मथुरा रिफाइनरी से हमारी कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और इसलिए यह महत्वपूर्ण है। इससे ताजमहल को क्या हानि पहुंचेगी इसकी अनदेखी की जाती है और यही गुणवत्ता संबंधित दृष्टिकोण का अभाव है।

आर्थिक विकास के नाम पर प्राकृतिक सौन्दर्य को बर्बाद किया जा रहा है। जन जातियों को अपने स्थान से उखाड़ा जा रहा है, पुनः प्राप्त न होने वाले प्राकृतिक स्रोतों को बिना सोचे समझे नष्ट किया जा रहा है तथा हवा, पानी, भूमि और खाद्य पदार्थों को प्रदूषित किया जा रहा है। विकास की यह विचारधारा हमें वातावरण को प्रदूषित करने और प्रकृति को भारी खतरा पैदा करने के परिणामों को भूलने के लिए बाध्य करती है। नर्मदा सरोवर और इस तरह की बहुउद्देशीय योजनाओं में गुणवत्ता की पूरी तरह अवहेलना की गई है।

नर्मदा सरोवर परियोजना हमारे समय के विरोधाभास की प्रतीक है। मानव, वृक्षों की तरह गहरी जड़ें रखते हैं। उन्हें एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह नहीं रोपा जा सकता। किसी को अपनी भूमि से हटाना उसे मृत्यु देने के समान है। 'हितावद' में विजय लापलीकर के अनुसार बाबा आम्टे की नर्मदा परियोजना को छोड़ने की मांग विकास की ओर ले जाएगी विनाश की तरफ नहीं। नर्मदा बांध के पक्ष लोग इतने भावुक हो गए हैं कि उन्होंने वास्तविक स्थिति से मुंह मोड़ लिया है। राष्ट्रीय आय को ही सब कुछ मानकर स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और समाज कल्याण के अन्य मुद्दों को पीछे धकेल दिया गया है।

तकनीकी विशेषज्ञ

अगर आर्थिक विकास में विकसित देशों से जानकारी हस्तान्तरण करने में तकनीकी विशेषज्ञों की भूमिका को स्वीकार किया जाता है तो ये विशेषज्ञ विकास दृश्य पर पूरी तरह छा जाते हैं। स्थानीय व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी स्वतन्त्रता खो देते हैं और प्रत्येक जानकारी के लिए इनके मोहताज रहते हैं। दूसरे पर आश्रित रहने की मनोवृत्ति स्थानीय लोगों में फैल जाती है क्योंकि सम्पूर्ण वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान का आधार इन विशेषज्ञों को ही माना जाता है। विशेषज्ञ राजनीतिक और सैद्धान्तिक विषयों को कुशलता से छिपा लेता है और उसकी राय से कोई मतभेद जाहिर नहीं कर सकता। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष भी इससे अछूते नहीं हैं।

आम धारणा है कि तकनीकी कौशल पश्चिमी सभ्यता में निहित गुणों के कारण प्रस्फुटित है, सही नहीं है। चीन और भारत में वैज्ञानिक व तकनीकी सफलताओं का अच्छा रिकार्ड विद्यमान है। जब तक विकास की परिभाषा भौतिक पदार्थों की बढ़ोतरी के रूप में सोची जाती रहेगी हम तकनीकी स्वरूप के लिए पश्चिम का मुंह ताकते रहेंगे और स्वदेशी ज्ञान, स्थानीय समस्याओं और प्रश्नों से हमारा ध्यान हटा रहेगा।

अगर आर्थिक विकास में विकसित देश में से जानकारी हस्तान्तरण करने में तकनीकी विशेषज्ञों की भूमिका को स्वीकार किया जाता है तो ये विशेषज्ञ विकास दृश्य पर पूरी तरह छा जाते हैं। स्थानीय व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी स्वतन्त्रता खो देते हैं और प्रत्येक जानकारी के लिए इनके मोहताज रहते हैं।

विकास का मानवीयकरण

प्रोफेसर आर. पी. मिश्र ने मानवीय विकास को सामाजिक परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया बताया है जिसमें मानव-गुणों का तुरन्त व दीर्घकालीन विकास होता है। गुणात्मक जीवन को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं देखना है वरन् सभी संबंधित पहलुओं

को ध्यान में रखना है। किस विषय को प्रमुखता प्रदान करनी है और किस समय तक, यह स्थानीय स्थिति से निर्धारित होगा। प्रो. मिश्र प्रश्न कहते हैं कि क्या रुपये से खुशी खरीदी जा सकती है। नहीं। इससे खाद्य पदार्थ, आवास व कपड़ा इत्यादि, प्राप्त किए जा सकते हैं जिनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इन वस्तुओं की जीवन स्तर के लिए आवश्यक पूर्ति होनी चाहिए। इनकी एक बार पूर्ति होने के बाद, रुपया बहुत कम कुछ खरीद सकता है। इसके उपरान्त मानव की अन्य अपेक्षाएं अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं। बहुतायत होने पर भी मनुष्य दुखी रह सकता है अगर उसकी विभिन्न अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होती। मिशान की पुस्तक 'आर्थिक विकास के आधार' पर प्रो. मिश्र ने निम्न 14 आवश्यकताओं का उल्लेख किया है जिस पर अच्छा जीवन निर्भर करता है:

1. खाद्य एवं आवास, 2 स्वास्थ्य, 3. प्रकृति, 4. आराम, 5. सहज आनंद, 6. सुरक्षा, 7. प्रेम एवं विश्वास, 8. आत्म-सम्मान, 9. परिवार, 10. रिवाज, 11. भूमिका एवं योजना, 12. नैतिकता, 13. पौराणिक विश्वास, 14. निजी स्वतन्त्रता।

उनके विचार के अनुसार इनमें से केवल कुछ रुपये से खरीदी जा सकती हैं, अन्य सामाजिक परिधि में आती हैं जिनका निर्णय विकास के अलावा अन्य बातें करती ह।

सेना खर्चों में भारी वृद्धि

सारे विश्व में सेना के रखरखाव के खर्चों पर जनता का पैसा व्यय किया जा रहा है। इसके मुकाबले कितने वयस्क लिख पढ़ सकते हैं, बेरोजगारों या अर्ध बेरोजगारों की संख्या कितनी है कितने बच्चे प्राथमिक पाठशाला भी नहीं जाते, भूख और कुपोषण के शिकार कितने व्यक्ति हैं पहले जन्म दिन से पूर्व कितने बच्चे मर जाते हैं, कितनी जनसंख्या को पीने का पानी भी नहीं मिलता, शहरी गंदी बस्तियों और झोपड़ियों में रहने वालों की संख्या कितनी है? इन समस्याओं को हल करने पर व्यय कम है और उन्हें कोई प्राथमिकता नहीं दी जाती। उपरोक्त आधार पर विरोधाभास का अंदाजा किया जा सकता है।

मिसाल के लिए 1981 में 170 लाख गरीब बच्चों और माताओं की समुचित खर्च के अभाव में जीवनलीला समाप्त हो गई। इस आपातकालीन स्थिति पर नियत्रण के लिए 1.7 अरब डालर की आवश्यकता थी जितना धन सैनिक शक्ति पर केवल एक दिन में खर्च किया जाता है। तीसरी दुनिया में सबसे अधिक खतरनाक जानलेवा बीमारी मलेरिया के पूर्ण उन्मूलन का खर्च 45 करोड़ डालर आंका गया है जो विश्व में सम्पूर्ण सैनिक शक्ति पर केवल आधे दिन में होने वाले व्यय से भी कम है। विकासशील देशों में प्रत्येक 5 व्यक्तियों में से तीन को पीने का स्वच्छ पानी नहीं मिलता तथा 4 में से 3 व्यक्तियों को सफाई सुविधाएं उपलब्ध नहीं। विश्व खाद्य संगठन (एफ.ए.ओ.) के अनुसार इन सुविधाओं को 10 वर्ष के अन्दर उपलब्ध करने की योजना पर 60 अरब डालर खर्च होंगे जो कि विश्व सैनिक शक्ति पर मात्र 43 दिन में खर्च किया जाता है। कुपोषण के शिकार व्यक्तियों की संख्या 42 करोड़ से घटाकर 23 करोड़ तक लाने पर सन् 2000 तक 2.19 करोड़ डालर व्यय होने का अनुमान है जो केवल 16 दिन के फौजी खर्चों के बराबर है।

प्रो० मिश्र प्रश्न करते हैं कि क्या रुपये से खुशी खरीदी जा सकती है। नहीं। इससे खाद्य पदार्थ, आवास व कपड़ा इत्यादि प्राप्त किए जा सकते हैं, जिसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इन वस्तुओं की जीवन स्तर के लिए आवश्यक पूर्ति होनी चाहिए। इनकी एक बार पूर्ति होने के बाद, रुपया बहुत कम कुछ खरीद सकता है।

परमाणु हथियारों का भण्डार 20 हजार मेगाटन होने का अनुमान है। परमाणु बमों की संख्या 40-50 हजार के बीच है और उनकी संहारक क्षमता हीरोशीमा पर डाले गए बम से दस लाख गुणा अधिक है।

विश्व में आधे से अधिक वैज्ञानिक और इंजीनियर केवल सैनिक आवश्यकताओं के लिए कार्य करते हैं। परमाणु हथियारों की स्थिति में सुरक्षा केवल राजनीतिक उपायों द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है। सोवियत नेता खुश्चेव ने कहा था कि परमाणु युद्ध के बाद जीवित मृतकों से ईर्ष्या करेगा।

योजना व्यय के अलावा सबसे अधिक खर्च सैनिक क्षेत्र पर ही होता है जिसके लिए 1990-91 वर्ष में 16350 करोड़ रुपयों का प्रावधान था। सुरक्षा का खर्च कुल बजट का 13 प्रतिशत है।

दिशारहित आर्थिक विकास हानिकारक

दिशा रहित आर्थिक विकास, सामाजिक भावना, परिवार सुदृढ़ता तथा आपसी संगठन और मिलजुलकर काम करने की भावना को प्रोत्साहित करने में सहायक नहीं हुआ। व्यक्तिगत स्वार्थ का आज बोलबाला है। व्यक्ति अपने में इतना संकुचित हो गया है कि वह हर चीज को आर्थिक दृष्टि से देखता है, उसके सामाजिक मूल्य को नहीं।

पैसा आता, प्यार जाता

अनेक संस्थाओं के अध्ययन के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं और इसकी वहां काम करने वाले कार्यकताओं ने पुष्टि भी की है कि जब पैसा आता है तो प्यार चला जाता है। जिस संस्था को साधनों के लिए संघर्ष करना पड़ता था वह व्यक्तियों पर आधरित होती थी किन्तु आंतरिक और बाहरी साधनों और विकास योजनाओं के लिए आसानी से मिले धन से यह संस्थाएं व्यक्तियों से दूर अनुदान आधारित हो गई हैं। मानव को पीछे धकेल दिया गया है।

एक शैक्षिक संस्था के अध्ययन के बाद मैंने पाया कि जो व्यक्ति संस्थापक के साथ काम करते थे उनमें ईमानादारी, लगन और संस्थापक व संस्था के प्रति पूरी वफादारी थी। जिन व्यक्तियों के साथ वह काम करते थे, उन्हें उनका पूरा सहयोग प्राप्त था। संस्थापक की मृत्यु के पश्चात नेतृत्व ऐसे व्यक्तियों के हाथों में चला गया जिन्हें राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय माध्यमों से मिलने वाले अनुदान और रुपयों से अधिक सरोकार था। संस्थापक के काम से संस्था का पूरे देश व विदेशों में नाम हो गया था। इसके कारण काफी अनुदान मिलना शुरू हो गया। इस सहायता के साथ शर्तें भी आनी शुरू हो गई थीं, बाद में विदेशी विशेषज्ञ भी स्थानीय कर्मचारी व जनता के मार्गदर्शन के लिए आए।

पहले काम करने वालों, जिनमें लगन और भावना थी, ने महसूस किया कि नए कार्यकर्ताओं को संस्था और व्यक्तियों की अपेक्षा अपने कैरियर की अधिक चिन्ता है। एक वयोवृद्ध कर्मचारी जिसने संस्थापक के साथ काम किया, मुझे बताया कि पैसा तो आ गया है किन्तु प्यार चला गया है। काम के प्रति लगन नहीं रही है।

परिवार स्थिरता

गांवों के 1950 व 1980 के आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन से कुछ ऐसे नतीजे निकले कि गरीबी जोड़ती है और समृद्धि तोड़ती है। अस्सी से अधिक परिवारों में मैंने पाया कि आर्थिक विकास के बाद संयुक्त और संगठित परिवार नहीं रहे हैं। मां-बाप और अन्य आश्रितों को स्वयं अपनी देखभाल के लिए छोड़ दिया गया है। सशक्तों ने अपना निजी व्यापार और उद्योग शुरू कर लिया है। एक दूसरे के लिए स्नेह और आपसी सद्‌भावना का स्थान आर्थिक लाभ ने ले लिया है।

समुदाय

योजना और विकास प्रक्रिया की दूषित नीतियों ने व्यक्ति को रुपये का लालची बना दिया है। आपसी सद्‌भाव और सामूहिक लाभ को पीछे धकेल दिया है। व्यक्तिगत लाभों और निजी स्वार्थ ने सामुदायिक लक्ष्यों के ऊपर प्राथमिकता ली है। नेताओं ने धर्म का आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इस्तेमाल शुरू कर दिया है, जो अत्यन्त निंदनीय है।

भारत में धार्मिक कट्टरपंथी हिन्दू, मुस्लिम और सिखों में ऐसे स्तर पर पहुंच गई है जैसी पहले कभी नहीं थी। अत्यंत खेद और निंदनीय बात यह कि धर्म का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग हो रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न जातियां समझने लगती हैं कि उन पर हमला हो रहा है और इससे आपसी झगड़े शुरू हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में केवल धर्म का ही पतन नहीं होता वरन सारा समुदाय विखंडित होता है और धार्मिक कट्टरता पनपती है।

कार्य योजना

राष्ट्रों के सामने इतनी गंभीर समस्या कभी नहीं आई थी। हमारे कार्यक्रमों का आधार चार मुख्य मुद्दे होने चाहिए। (1) ऊर्जा की ऐसी प्रक्रियाएं विकसित करना जिनका जलवायु व वातावरण पर प्रभाव न पड़े। (2) विश्व में वनों को बढ़ाकर तीसरी दुनिया की प्राथमिक आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ वातावरण को शुद्ध रखना और अंतरिक्ष को अधिक गर्म न होने देना (3) प्रति व्यक्ति खाद्य के उत्पादन दर को दुगुना करना आजकल प्रति व्यक्ति अनाज उत्पादन दर गिर रही है इसे रोकना और (4) बढ़ती हुई आबादी के विस्फोट को रोकना जिससे जीवन स्तर गिरना बंद हो जाए। गांधी जी ने हमेशा व्यक्ति को आधार माना और उन्होंने उस पर अपने कार्यक्रमों की नींव रखी थी। उनके सब कार्य ऐसे होते थे जिनमें जन-जन का सम्पूर्ण सहयोग हो और उनमें उन कार्यक्रमों का नेतृत्व संभालने की क्षमता विकसित हो। अतएव हम जो भी कार्यक्रम शुरू करें उसमें यह पूरी तरह सुनिश्चित हो कि वह आम आदमी के लिए है और वह इसके संचालन के लिए पूर्णतया जिम्मेदार है। इसी से ही आर्थिक विकास और मानव मूल्यों की विषमताएं मिट सकेंगी।

देश के विकास में

गांधी जी की राह पर हम कितना चले हैं?

डा० गिरीश मिश्र

विश्व में अनेक क्रांतियां हुई है जिनमें अधिकांश को आज विफल माना जाने लगा है। इस लेख में लेखक ने बताया कि गांधी जी ने भारत में लोकतंत्र की जिस क्रांति का सूत्रपात किया था, वह विफल क्यों नहीं हुई। लेखक ने यह भी बताया है कि गांधी जी के विकास की कसौटी क्या थी, वे गांवों के सुधार के लिए किन बुराइयों को वहां से दूर करना चाहते थे। अंत में लेखक ने ग्रामीण विकास की ओर ज्यादा ध्यान देने का सुझाव दिया है।

बीसवीं शताब्दी के दौरान अनेक क्रांतियां हुई हैं। महान अक्तूबर क्रांति से लेकर चीनी, क्यूबाई और वियतनामी क्रांति की काफी चर्चा रही और उनका काफी गुणगान हुआ। उनके विभिन्न पहलुओं को लेकर ढेरों ग्रंथ रचे गये हैं मगर आज जब बीसवीं सदी समाप्त हो रही है तो इनमें से अधिकतर को विफल घोषित किया जाने लगा है। महान अक्तूबर क्रांति और उसके द्वारा रेखांकित आदर्शों और समाज-रचना के मार्ग के आगे प्रश्न चिन्ह लग चुका है। सोवियत संघ का विखंडन हो गया है और पूर्वी यूरोप के कई देश आंतरिक कलह से पीड़ित हैं। चीन और वियतनाम समाजवाद का जितना भी नाम लें बाजार आधारित अर्थ व्यवस्था तथा पूंजीवाद के मूल तत्वों को अपना रहे हैं।

परन्तु भारतीय क्रांति जीवित ही नहीं, बल्कि पूरे जोश खरोश से राष्ट्र निर्माण की ओर अग्रसर है। 1947 से लेकर अब तक अनेक बवंडर आए मगर भारतीय क्रांति के पैर नहीं उखड़े। उसने देश की अखण्डता को मजबूत किया और धर्म, जाति, भाषा आदि के कारण उत्पन्न भिन्नताओं के बावजूद भारतीयता के सूत्र में देशवासियों को बांधा है। धीमी गति से ही सही, किन्तु निरन्तर देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता रहा है। भारतीय क्रांति की इस सफलता और जीवंतता का मुख्य श्रेय उसके सर्वोच्च नायक महात्मा गांधी को जाता है। कहना न होगा कि गांधी जी ने भारतीय क्रांति को जो नैतिक आधार प्रदान किया उसी के कारण उसके पैर अब तक नहीं डगमगाये हैं।

भारतीय क्रांति की इस सफलता और जीवंतता का मुख्य श्रेय उसके सर्वोच्च नायक महात्मा गांधी को जाता है। कहना न होगा कि गांधी जी ने भारतीय क्रांति को जो नैतिक आधार प्रदान किया उसी के कारण उसके पैर अब तक नहीं डगमगाये हैं।

चूंकि भारतीय क्रांति को सफलतापूर्वक सम्पादित करने में गांधी जी ने अहिंसा और साधनों की शुद्धता और पवित्रता पर जोर दिया, इसलिए उसमें बीसवीं सदी की अन्य क्रांतियों की तुलना में काफी समय लगा परन्तु उसकी नींव काफी गहरी और मजबूत हुई। यही कारण है कि उसे जड़मूल से उखाड़ फेंकना आसान नहीं है। फ्रांसीसी चिंतक रूसो ने लिखा है कि बल पर आधारित शासन को बल द्वारा हटाया जा सकता है, किन्तु उसे नहीं जिसका आधार बल नहीं है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि पश्चिमी देशों को छोड़ दें तो भारत ही एक ऐसा देश है जहां 1947 से लेकर अब तक लोकतंत्र फलता फूलता रहा है। दूसरे और तीसरे विश्व के अन्य सब देश तानाशाही और सैनिक शासन के साये में रह चुके हैं या अब भी अनेक उसमें जी रहे हैं।

निरक्षरता, गरीबी और तमाम विभाजक शक्तियों के बावजूद भारत ने कभी लोकतंत्र को नहीं छोड़ा है और न ही विकास के मार्ग से हटा है। इसे अगर चमत्कार न कहें तो इसके पीछे गांधी जी द्वारा अनुप्रेरित क्रांति के मूल्य हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि पश्चिमी देशों को छोड़ दें तो भारत ही एक ऐसा देश है जहां 1947 से लेकर अब तक लोकतंत्र फलता-फूलता रहा है। दूसरी ओर तीसरे विश्व के अन्य सब देश तानाशाही और सैनिक शासन के साये में रह चुके हैं या अब भी अनेक उसमें जी रहे हैं।

अब हम गांधी जी द्वारा देश के विकास के लिए निर्देशित मार्ग पर आएं। यहां यह बात ध्यान देने की है कि गांधी जी ने अपने विकास संबंधी विचारों को सिलसिलेवार रूप से किसी पुस्तक में नहीं रखा है। न ही उन्होंने उनकी कहीं एक जगह तार्किक विवेचना की है। याद रहे कि गांधी जी को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वोच्च नेता और संचालक होने के कारण

निश्चिन्तता से बैठकर मार्क्स की तरह नोट्स वगैरह सामने रखकर अपने विचारों और चिंतन को एक जगह क्रमबद्ध करने का समय कहां था? दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों, चम्पारण और खेड़ा के किसानों तथा अहमदाबाद के मिल मजदूरों की समस्याओं को लेकर संघर्ष का नेतृत्व उन्होंने किया। नमक सत्याग्रह से लेकर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के नायक वे रहे। भारतीय समाज में साम्प्रदायिक सदभाव रहे तथा दलितों को उचित हक और सम्मान मिले इसकी चिन्ता उनको रही। ब्रिटिश सरकार से भारतीय आजादी के मामले में मुख्य वार्ताकार वे रहे। फिर कभी जेल, कभी बाहर और कभी दिल्ली में तो कभी नोआखाली और बिहार के दंगाग्रस्त गांवों में।

इन सब के बावजूद गांधी जी ने समय-समय पर देश की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किए और उनकी विवेचनाएं की। ये सब उनके द्वारा 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में लिखे गए लेखों, संपादकीय टिप्पणियों और प्रश्नोत्तरों, अनगिनत लोगों को लिखे पत्रों, भाषणों और साक्षात्कारों में बिखरे पड़े हैं। इनमें से अनेक विचार किसी न किसी तात्कालिक घटना या समस्या के सन्दर्भ में हैं जिनसे उनको अलग कर देखने से अर्थ का अनर्थ होने का भारी खतरा है। कहना न होगा कि कई लोगों ने ऐसा किया है और वे गांधी जी के विचारों को समझ नहीं पाए हैं।

अब आइए देखें कि गांधी जी स्वतंत्रता के बाद भारत का सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण किस आधार पर और किस दिशा में करना चाहते थे। गांधी जी समतामूलक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के कट्टर पक्षधर थे। धर्म, जाति, भाषा, वर्ग और लिंग के आधार पर किसी तरह के भेदभाव के वे पक्के विरोधी थे।

इन सब के बावजूद गांधी जी ने समय-समय पर देश की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किए और उनकी विवेचनाएं की। ये सब उनके द्वारा 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में लिखे गये लेखों, सम्पादकीय टिप्पणियों और प्रश्नोत्तरों, अनगिनत लोगों को लिखे पत्रों, भाषणों और साक्षात्कारों में विखरे पड़े हैं।

'यंग इंडिया' के (28 जुलाई 1921 और 11 अगस्त 1927 के) अंकों में लिखे अपने दो लेखों में उन्होंने रेखांकित किया था कि समाज के सभी सदस्य बराबर हैं। उनके बीच छोटे-बड़े का प्रश्न ही नहीं उठता। वस्तुतः "असमानता"— शब्द दुर्गन्धपूर्ण है और इसी के कारण बदमिजाजी और अमानवीय कृत्यों की पैदाइश होती है। कुछ वर्षों बाद हरिजन में उन्होंने जोर देकर कहा कि ब्राह्मण और भंगी में भगवान की निगाह में कोई फर्क नहीं है तो फिर समाज में उनके बीच अन्तर करना भगवान के विपरीत जाना नहीं है क्या?

गांधी जी के इन विचारों की छाप भारतीय संविधान और सरकार की घोषित नीतियों पर स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ती है। संविधान में सभी भारतीय नागरिकों को समान माना गया है और उन्हें विकास और उन्नति के समान अवसरों की गारंटी दी गयी है। सरकारी सेवाओं में कोई भेदभाव नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुकूल काम करने का अवसर पा सकता है।

यह सर्वविदित है कि गांधी जी पाश्चात्य सभ्यता और उसके आधार मुनाफा मूलक पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के घोर विरोधी थे। वे मानते थे कि इस प्रकार की सभ्यता में मानवीय मूल्यों को तरजीह नहीं मिलती वल्कि गलाघोंटू प्रतिद्वन्द्विता और स्वार्थ हावी रहता है। वे चाहते थे कि भारत में जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था बने उसमें इन दुर्गुणों से बचा जाए और भारतीय सभ्यता और संस्कृति के शाश्वत मूल्यों पर उसे आधारित किया जाए। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि अधिकतम मुनाफा कमाने को आर्थिक सफलता की कसौटी नहीं माना जाए। राष्ट्रीय आय में तेज वृद्धि को विकास का लक्ष्य नहीं माना जाए बल्कि देखा जाए कि उसका दरिद्रनारायण पर क्या प्रभाव पड़ता है। हर आर्थिक सामाजिक नीति को दरिद्रनारायण पर पड़ने वाले उसके सम्भावित प्रभाव की कसौटी पर कसा जाए। अगर इस बात पर गंभीरता से सोचा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि 1950 से 1970 के दशक तक के विकास-अर्थशास्त्रियों की रणनीतियों से दरिद्रनारायण की हालत जितनी सुधरनी चाहिए थी उतनी नहीं सुधरी। समाज के कमजोर वर्ग के लोग रोजी रोटी की खोज में गांवों से शहरों की ओर भाग रहे हैं और शहरों में गन्दी बस्तियां बढ़ रही हैं।

बड़े उद्योगों और आधुनिक उद्यमों के साथ ही ग्रामोद्योगों और खेतीवाड़ी के क्षेत्र का विकास जितना होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास की जो मूलभूत रणनीति रखी गयी थी उसमें घरेलू और छोटे उद्योगों के विकास पर बल दिया गया था। खादी और ग्रामोद्योग आयोग भी बना और इन उद्योगों को आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गयी। उनके उत्पादों के डिजाइनों और गुणवत्ता में सुधार के प्रयास किए गए जिससे देश-विदेश में उनके लिए मांग बढ़ सके। परन्तु जिस ढंग से इन नीतियों का कार्यान्वयन हुआ उससे पर्याप्त मात्रा में फायदा नहीं मिला और अनुकूल परिणाम नहीं निकले। ये उद्योग सबसीडी उन्मुख बन कर रह गए। नौकरशाही और भ्रष्टाचार जरूर पनपे।

गांधी जी ने इस बात को सही ढंग से समझ लिया था कि भारत का आर्थिक विकास पश्चिमी देशों के ऐतिहासिक अनुभवों के अनुकूल नहीं हो सकता क्योंकि आकार और जनसंख्या की दृष्टि से भारत बहुत बड़ा है। पश्चिमी देशों में आधुनिक विकास के परिणामस्वरूप श्रम और अन्य संसाधन कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों से हटकर उद्योगों और सेवाओं के क्षेत्र में ज्यादा लगे। अधिकतर जनसंख्या गांवों से निकलकर शहरों में आ बसी। गांवों के पुराने उद्योगों का अवसान हो गया तथा विस्थापित श्रमिकों को आधुनिक उद्योगों और सेवाओं के क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान किए गए। कृषि के क्षेत्र में मजदूरों की कमी को मशीनों द्वारा पूरा किया गया।

भारत जैसी विशाल जनसंख्या वाले देश में ऐसा सम्भव नहीं क्योंकि इतने लोगों के लिए कृषि से बाहर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना कोई आसान काम नहीं है। जिस पैमाने पर पूंजी और दूसरे संसाधनों की आवश्यकता होगी वह भारत जुटा नहीं सकता। न ही विदेशों से उसे इतनी भारी मात्रा में आर्थिक सहायता मिल सकती है। देश के अन्दर उपनिवेशवाद के कारण इतनी गरीबी है कि बचत और पूंजी निर्माण को बढ़ाना कतई संभव नहीं है।

उन्होंने कहा कि अधिकतम मुनाफा कमाने को आर्थिक सफलता की कसौटी नहीं माना जाए। राष्ट्रीय आय में तेज वृद्धि को विकास का लक्ष्य नहीं माना जाए बल्कि देखा जाए कि उसका दरिद्रनारायण पर क्या प्रभाव पड़ता है। हर आर्थिक सामाजिक नीति को दरिद्र नारायण पर पड़ने वाले उसके सम्भावित प्रभाव की कसौटी पर कसा जाए।

इसलिए गांवों और वहां उपलब्ध रोजी रोटी के अवसरों के विकास को देश के आर्थिक-सामाजिक विकास का एक अभिन्न अंग बनाया जाए। इससे गांवों से शहरों की ओर जनसंख्या का पलायन रुकेगा और गांवों का जीवन खुशहाल होगा। चूंकि भारत की अधिकतर जनसंख्या गांवों में रहती है इसलिए उनके जीवन स्तर में वृद्धि होने से पूरे देश का जीवन स्तर ऊंचा उठेगा।

जैसा कि गांधी जी ने अमरीकी पत्रकार लुई फिशर को अपने बहुचर्चित साक्षात्कार में बतलाया था "गांवों की तत्कालीन दशा में आमूल परिवर्तन करने की नितान्त आवश्यकता है। गांवों को निरक्षरता, गरीबी, भाग्यवादिता, अन्धविश्वासों और गन्दगी के नरक से निकाल कर बाहर लाना होगा। आधुनिक जीवन से जुड़ी सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं के माध्यम के रूप में गावों को विकसित करना होगा। गांवों में सफाई और स्वच्छता आए, अच्छी सड़कें बनें और दोनों ओर छायादार पेड़ तथा फूल पौधे लगें। निरापद पेयजल उपलब्ध हो और शौचालयों का निर्माण हो। गांवों में खेती की जमीन का पुनर्वितरण इस प्रकार हो कि वह मुनाफे का स्रोत न होकर रोजी रोटी कमाने का जरिया बन सके। उन्होंने आशा प्रकट की कि जमींदार समय की मांग को सुनेंगे और स्वेच्छा से अपनी जमीन पर उसके जोतने वाले किसानों को अधिकार प्रदान कर उन्हें शोषण और उत्पीड़न से मुक्त कर देंगे।" शायद पहली बार उन्होंने अपनी जिन्दगी में कहा कि अगर जमींदार स्वेच्छा से ऐसा नहीं करते और किसान जबर्दस्ती जमीन छीन लेते हैं तो वे इसे गलत नहीं मानेंगे।

जैसा कि गांधी जी ने अमरीकी पत्रकार लुई फिशर को अपने बहुचर्चित साक्षात्कार में बतलाया था, "गांवों की तत्कालीन दशा में आमूल परिवर्तन करने की नितान्त आवश्यकता है। गांवों को निरक्षरता, गरीबी, भाग्यवादिता, अन्धविश्वासों और गन्दगी के नरक से निकाल कर बाहर लाना होगा।"

आजादी के बाद सरकार ने जमीन के पुनर्वितरण और किसानों तथा खेतिहर मजदूरों के शोषण उत्पीड़न के लिए अनेक कदम उठाये हैं मगर निहित स्वार्थों तथा नौकरशाही ने उनका सही ढंग से कार्यान्वयन होने नहीं दिया है। नतीजा सामने है : भारत के गांव आज अशान्त हैं। बिहार, आन्ध्र प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों के गांवों में आए दिन हिंसा की घटनाएं होती रहती हैं। विभिन्न नक्सली गुटों तथा भूस्वामियों के बीच हिंसक मुठभेड़ें होती रहती हैं। इन सब की जड़ में भूमि का असमान वितरण तथा उससे उत्पन्न शोषण-उत्पीड़न है। गांव के परम्परागत उद्योग धन्धों के चौपट हो जाने के कारण गांवों से शहरों की ओर पलायन बड़ी तेजी से हो रहा है। वहां गन्दी बस्तियां और उनसे जुड़े दुर्गुण पनप रहे हैं। शहरों में भीड़-भाड़ और अपराध बढ़ रहे हैं।

शहरों से गांवों में छुट्टियों में आने वाले मजदूर शहरों में उपलब्ध सुख सुविधाओं के प्रति गांव वालों में ललक पैदा करते हैं। गांवों में रह रहे पढ़े-लिखे नौजवान बेरोजगारी से त्रस्त हैं और इनमें से कई जाने अनजाने अपराध की दुनिया में घुस जाते हैं। आज बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अशान्ति और अपराधों के पीछे यही बहुत बड़ा कारण है।

गांधी जी ने गांवों की आत्मनिर्भरता पर काफी जोर दिया था। उनका ख्याल था कि गांव स्थानीय बाजार के लिए स्थानीय तौर

पर उपलब्ध संसाधनों और श्रम पर आधारित रोजगार चलाएं। खेतीबाड़ी के सामान, फर्नीचर, कपड़े, गुड़, बरतन, टोकरियां, झाड़ू आदि गांवों में ही बनें जिनसे गांव वालों की बाहरी दुनिया पर निर्भरता कम हो। इसका यह मतलब नहीं है कि गांव शेष विश्व से कट जाएं। बाहर से समाचार पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें तथा ज्ञान-विज्ञान की चीजें वहां आएं। डाक्टर और दवाएं उपलब्ध हों। इन सबके बावजूद गांव के लोग अपनी धरती से जुड़े रहें। गांव से निरक्षरता और अन्धविश्वास जितनी जल्दी हो सके भगा दिए जाएं। गांधी जी की कल्पना का गांव एक सुसंस्कृत, सुशिक्षित, शान्त, स्वच्छ और उन्नत गांव था।

गांधी जी ने बार-बार कहा कि भारत की आजादी और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया ऊपर से नहीं बल्कि नीचे से होगी। भारतीय शासन और पुनर्निर्माण कार्यक्रम विकेन्द्रीकृत होगा। नई दिल्ली और प्रांतों की राजधानियों में केन्द्रित सत्ता को भारत के लाखों गांवों के बीच बांट देना होगा। गांवों में पंचायतों की स्थापना करनी होगी जिन्हें स्थानीय शासन, न्याय तथा विकास के कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी बनाना होगा। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ग्राम पंचायत को एक समतावादी संगठन होना चाहिए जिसका आधार सहयोग और आपसी एकजुटता होना चाहिए।

गांवों में पंचायतों की स्थापना करनी होगी जिन्हें स्थानीय शासन, न्याय विकास के कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी बनाना होगा। किन्तु उसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ग्राम पंचायत को एक समतावादी संगठन होना चाहिए जिसका आधार सहयोग और आपसी एकजुटता होना चाहिए। स्पष्ट था कि वे नहीं चाहते थे कि ग्रामीण जनता पर पंचायत के जरिए वहां के शोषक उत्पीड़क वर्ग हावी हो जाएं तथा विकास के लाभों और सुविधाओं को स्वयं हड़प लें।

स्पष्ट था कि वे नहीं चाहते थे कि ग्रामीण जनता पर पंचायत के जरिए वहां के शोषक-उत्पीड़क वर्ग हावी हो जाएं तथा विकास के लाभों और सुविधाओं को स्वयं हड़प लें। कहने का तात्पर्य यह कि पुरानी उत्पीड़क आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पंचायत के बैनर के तले जारी न रहे। गांधी जी ने आगाह किया कि ऐसी पंचायतों का विरोध होना चाहिए जो व्यक्ति को अल्पतंत्र की इच्छाओं के अधीन बनाए रखें। पंचायत को तो स्वेच्छा से एक दूसरे के साथ सहयोग करने तथा शासन, न्याय कार्य और विकास के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों में भागीदारी की इच्छा प्रकट करनी चाहिए। उन्हीं के शब्दों में, "स्वेच्छा से सहयोग ही सच्ची आजादी और नयी व्यवस्था को पैदा कर सकता है।"

आजादी के बाद देश में पंचायतों की स्थापना के लिए कानून बने और प्रयास हुए। लगभग सभी राज्यों में पंचायतों की स्थापना करवाने वाले महकमे बने तथा पदाधिकारियों की नियुक्ति हुई। मगर अनेक कारणों से अधिकतर राज्यों में पंचायत व्यवस्था पनप नहीं सकी। पंचायत गांव के लोगों में सहयोग और एकजुटता पैदा करने के बदले गुटबाजी और जाति पाति के झगड़ों के अखाड़े बन गईं। अनेक राज्य सरकारों ने समय पर और नियमित रूप से उनके चुनाव नहीं कराए जिससे वे ठप्प हो गईं। उनको शासन, न्याय और विकास कार्यक्रमों को चलाने के लिए अपेक्षित अधिकार और अवसर नहीं दिए गए। उनके पास धन का अभाव रहा और उन्हें करों तथा अन्य स्रोतों से आय जुटाने की छूट नहीं दी गई। हां, कागजों में ढेर सारी बातें लिखी गईं। फिर ग्रामीण विकास के कार्यक्रम तथा गांवों की सड़कों, कुंओं, नलकूपों, स्कूलों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों आदि की देखभाल का जिम्मा सरकार के विभाग सीधे करते रहे। इन कारणों से ग्राम पंचायतें निष्प्रभावी हो गईं।

वर्षों बाद श्री राजीव गांधी के शासन काल में फिर से उनको पुनर्जीवित करने की ओर ध्यान दिया गया। कानून कायदों में सुधार लाने तथा पंचायतों का चुनाव नियमित रूप से करवाने तथा सभी वर्गों के हितों की सही प्रतिनिधि संस्था बनाने की ओर ध्यान दिया गया। उनको अफसरशाही के चंगुल से मुक्त कराकर पर्याप्त अधिकार और आय के स्रोत सौंपने की ओर ध्यान दिया गया। इस प्रक्रिया को श्री नरसिम्ह राव की सरकार ने आगे बढ़ाया है तथा कानूनी कदम उठाए हैं। श्री राजीव गांधी ने जवाहर रोजगार योजना का जिम्मा और उससे जुड़े धन को सीधे ग्राम पंचायतों को देने की व्यवस्था कर अफसरशाही के दबदबे को काफी कमजोर कर दिया। कहना न होगा कि जवाहर रोजगार योजना से गांवों में निर्माण कार्यों को बढ़ावा मिला है और साथ ही पंचायतों की पुनःप्रतिष्ठा हुई है।

आजादी के बाद से लेकर जब तक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और पंचायतों की सहायता से सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को नीचे से आरम्भ करने की दिशा में गांधी जी के बतलाये रास्ते को कागजी रूप से ही अपनाया गया है, उसकी मूलभावना को नकारा गया है। इसी का परिणाम है कि भारत का आर्थिक-सामाजिक विकास संतुलित ढंग से नहीं हो पाया है। न ही विकास के परिणामों का समान रूप से वितरण हो पाया है। शहरों और गांवों के बीच खाई बढ़ी है तथा क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि हुई है। समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सौहार्द पूरी तरह नहीं पनप पाया है।

गांधी जी को आम तौर से आधुनिक उद्योगों का विरोधी बताया जाता है और उनके नाम पर अब तक चलाए गए औद्योगिक कार्यक्रमों का विरोध किया जाता है। ऐसा उनके लेखों और भाषणों को संदर्भ से अलग रख कर प्रस्तुत किया जाता है। गांधी जी को इस प्रकार पंडित नेहरू के विरोध में उतारने की कोशिश की जाती है। मगर यह वास्तविकता से काफी दूर है। गांधी जी और उनके उत्तराधिकारी के बीच 1930 और 1940 के दशकों के बीच दिलचस्प बहस चली जिसमें एक बार अप्रैल 1940 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० वी.के.आर.वी. राव ने भी भाग लिया। पंडित नेहरू गांधी जी को यह स्पष्ट कर पाए कि आधुनिक औद्योगीकरण और पूंजीवाद एक ही नहीं हैं। गांधी जी की स्वदेशी की अवधारणा को वर्तमान राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए आधुनिक उद्योगों का निर्माण आवश्यक है। इन उद्योगों के बिना देश की आजादी को सुरक्षित रखना आसान नहीं है। पिछले 47 वर्षों के दौरान भारत अनेक विदेशी हमलों से अपनी रक्षा औद्योगीकरण की बदौलत ही कर पाया है।

गांधी जी ने बहस के बाद स्वयं कहा कि उनका "भारत के औद्योगीकरण या भारी उद्योगों से कोई झगड़ा नहीं है। मैंने कराची प्रस्ताव को माना था जिसका मैं एक सह-लेखक था।" नवम्बर 1945 में लिखे एक पत्र में गांधी जी ने पंडित नेहरू से पूर्ण सहमति जतायी और बतलाया कि आधुनिक औद्योगीकरण से जुड़ी उनकी भ्रांतियां दूर हो गई हैं।

पहली बात है अपरिग्रह। अगर आर्थिक विकास का उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा और धन सम्पति जोड़ना हो तो इस आर्थिक विकास से शान्ति और सामाजिक सौहार्द को धक्का लगेगा। दूसरा अब तक अधिकतम लोगों का अधिकतम भला करने की बात कही जाती रही है परन्तु गांधी जी ने सर्वोदय यानी सबके उत्थान की बात को विकास के साथ जोड़ने की बात की। ऐसा करने पर वर्ग संघर्ष तथा दूसरों की कीमत पर अपना भला करने की बात छोड़नी होगी।

इस प्रकार यह कहना कि भारत ने आधुनिक औद्योगीकरण के कार्यक्रमों को लागू कर अपने को गांधीजी के रास्ते से अलग कर लिया, सही नहीं है। हां, उसने ग्रामीण विकास पर पर्याप्त जोर न देकर गलती की है तथा आधुनिक औद्योगीकरण की रणनीति के कार्यान्वयन में खामियों से समाज में आर्थिक विषमता और अफसरशाही बढ़ी है जो गांधी जी के विचारों के विपरीत जाती है। समय-समय पर इस दिशा में किए गए प्रयास सफल नहीं हो पाए हैं।

यद्यपि गांधी जी ने स्वीकार किया था कि भारत के भावी समाज की रूप रेखा सही-सही देना उनके लिए संभव नहीं होगा, फिर भी उन्होंने दो ऐसी बातें कही हैं जिनपर ध्यान देना जरूरी है। पहली, बात है अपरिग्रह। अगर आर्थिक विकास का उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा और धन सम्पत्ति जोड़ना है तो इस आर्थिक विकास से शान्ति और सामाजिक सौहार्द को धक्का लगेगा। दूसरा अब तक अधिकतम लोगों का अधिकतम भला करने की बात कही जाती रही है परन्तु गांधी जी ने सर्वोदय यानी सबके उत्थान की बात को विकास के साथ जोड़ने की बात की। ऐसा करने पर वर्ग संघर्ष तथा दूसरों की कीमत पर अपना भला करने की बात छोड़नी होगी।

ऊपर हमने जो कुछ कहा है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत ने न तो गांधी के बतलाये रास्ते को पूरी तरह अपनाया है और न ही पूरी तरह छोड़ा है। आज भारतीय क्रान्ति अगर जीवित है और आगे बढ़ रही है तो इसके पीछे गांधी जी एक बहुत बड़े कारक हैं।

आवश्यकता है कि सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय का अध्ययन-मनन कर उनके विकास सम्बन्धी विचारों की आधुनिक सन्दर्भ में विवेचना की जाए और यह बहस चलाई जाए कि उन विचारों को आज किस हद तक कार्यान्वित किया जा सकता है। उनके विचारों का सृजनात्मक रूप से विकास करना भी जरूरी है जिससे वे समय और परिस्थितियों के अनुकूल हों।

एन-112, साकेत,
नई दिल्ली-1100017

अगर हम लोकशाही की सच्ची भावना का विकास करना चाहते हैं, तो हम असहिष्णु नहीं हो सकते। असहिष्णुता यह बताती है कि अपने ध्येय की सच्चाई में हमारा पूरा विश्वास नहीं है।

—महात्मा गांधी
'यंग इंडिया', 2 फरवरी 1921

गांधी के सपने और आमूल परिवर्तन का प्रश्न

प्रदीप पंत

लेखक ने इस लेख में गांधी जी को इस युग का सबसे बड़ा समाज सेवी बताया है और कहा कि उन्होंने भारतीय समाज में विदेशी सत्ता और परम्परागत रूढ़ियों की बुराइयों को देखा और दोनों के खिलाफ लड़ाई एक साथ लड़ी। दरअसल स्वराज्य और रचनात्मक कार्यक्रम दोनों ही उनके लिए मानव उत्थान के साधन थे। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता और हरिजनों के प्रश्न को स्वराज्य से भी बड़ा मुद्दा घोषित किया था। गांधी जी को ग्राम विकास और ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार की संभावना कुटीर और छोटे उद्योगों में नजर आती थी। लेखक ने बताया है कि किस तरह सरकार ने पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर सभी योजनाओं में ग्रामीण विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। लेख में यह भी स्पष्ट किया गया कि पंचायती राज को नया स्वरूप प्रदान करके महिलाओं और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की जो भागीदारी सुनिश्चित की गई है, वह भी गांधीवादी चिंतन पर आधारित है।

अगर आपको कभी अहमदाबाद जाने का अवसर मिले तो महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम को देखने अवश्य जाइए। जिस नदी के किनारे यह आश्रम बना हुआ है, वह साबरमती अब अक्सर सूखी रहती है, लेकिन साबरमती आश्रम में बापू की यादें सूखी नहीं हैं। इसी आश्रम से गांधी जी ने आजादी की लड़ाई को दिशा दी थी और यहीं उनसे देश-विदेश के अनेक नेता मिलने को आया करते थे। यह ऐतिहासिक साबरमती आश्रम मोटे तौर पर दो हिस्सों में बंटा हुआ है। एक हिस्सा वह है जहां गांधी जी के ऐतिहासिक दस्तावेज़ रखे हुए हैं --इनमें कुछ ऐसे पत्र भी हैं जो अंग्रजों ने उन्हें लिखे थे और जिनमें उन्होंने गांधी जी के खिलाफ अशोभनीय संबोधनों का इस्तेमाल किया है। दूसरा हिस्सा वह है जहां गांधी जी रहा करते थे, चर्खा काता करते थे, जहां कस्तूरबा गांधी रहा करती थीं और जिसके विभिन्न हिस्सों में उनके शिष्य और शिष्याएं रहती थीं। साबरमती आश्रम का पहला हिस्सा तो महत्वपूर्ण है ही, लेकिन यह दूसरा हिस्सा हमारे आज के रहन-सहन और जीवन मूल्यों के संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो गया है। आश्चर्य होता है यह देखकर कि आजादी की लड़ाई का इतना बड़ा योद्धा इतने मामूली से कमरों में रहा करता था--अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी की केवल अत्यंत आवश्यक चीजों के साथ, एकदम सीदे-साधे ढंग से। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गांधी जी ने आवश्यकताओं को सीमित करने और सादगी के रहने की केवल वकालत ही नहीं की, बल्कि उसे अपने जीवन में भी उतार कर दिखाया। आवश्यकताओं को सीमित रखने और सादगी के साथ रहने के इसी जीवन-दर्शन में गांवों को आत्म-निर्भर इकाई बनाने, स्वदेशी, देश में बने खादी के कपड़े का उपयोग करने के उनके सिद्धांत गुथे हुए हैं।

गांधी जी की इस सादगी का रहस्य क्या था? निश्चित रूप से उनके मन में बचपन से बैठी हुई यह भावना कि आदमी को अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना चाहिए। शायद इसी भावना ने उन्हें न केवल एक राजनीतिक नेता बनाया जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को जड़ से हिला दिया, बल्कि एक अत्यंत महान समाजसेवी भी बनाया। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि महात्मा गांधी भारतीय महाद्वीप के ऐसे पहले व्यक्तित्व थे जिन्होंने भारतीय समाज, विदेशी सत्ता और परम्परागत रूढ़ियों आदि से मुक्ति को उसकी समग्रता में देखा और राजनीतिक लड़ाई तथा सामाजिक वर्जनाओं के खिलाफ लड़ाई, दोनों ही एक साथ लड़ी। एक बार उन्होंने कहा था--"मेरा विश्वास सत्य को अलग-अलग खंडों में विभाजित करने में नहीं है। राजनीति, धर्म, सामाजिक सुधार, आर्थिक उन्नति --ये सब एक ही इकाई के अंग हैं।"

गांधी जी की इस सादगी का रहस्य क्या था? निश्चित रूप से उनके मन में बचपन से बैठी हुई यह भावना कि आदमी को अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जीना चाहिए। शायद इसी भावना ने उन्हें न केवल एक महान राजनैतिक नेता बनाया जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को जड़ से हिला दिया, बल्कि एक अत्यंत महान समाजसेवी भी बनाया।

यह कहना भी अतिश्योक्ति न होगी कि गांधी जी इस युग के सबसे बड़े समाजसेवी थे जिन्होंने एक छोर पर छुआछूत की समाप्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता और खादी के प्रचार-प्रसार पर जोर दिया तो दूसरी ओर शराब बंदी, बुनियादी तालीम, महिला उद्धार, गांवों और गंदी बस्तियों की सफाई, कुष्ठ रोगियों की सेवा आदि

'रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित किया। वह अक्सर कहा करते थे कि इन सबकी प्राप्ति के बिना आजादी का कोई मतलब नहीं। उनके यहां आजादी का मतलब केवल सत्ता परिवर्तन नहीं बल्कि समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन था। गांधी जी जानते थे कि उनके पास जो कोई भी मिलने आता है, उसे यदि वे कोई भरोसेमंद चीज न दे सके तो निश्चय ही वह दुःखी होकर लौटेगा और हताश हो जाएगा। यही वजह थी कि वे अपने पास आने वालों में से किसी को मद्य निषेध की जिम्मेदारी सौंप देते थे तो किसी को नारी उद्धार का दायित्व, किसी को वे अछूत बस्तियों में काम करने का दायित्व दे देते थे तो किसी को कुष्ठ रोगियों की सेवा में लगा देते थे। उनके राजनीतिक संघर्ष के सैनिक समाज सेवा के कार्यकर्ता भी थे। समाजसेवा दरअसल गांधी जी के सम्पूर्ण सोच का एक अनिवार्य अंग थी। अगर हम बापू के जीवन की चन्द घटनाओं पर दृष्टि डालें, तो पाएंगे कि वे बचपन से ही समाज सेवा के प्रति समर्पित थे। विद्यार्थी जीवन में वे राजकोट में प्लेग के आतंक के दौरान सेवा के लिए पहुंच गए तो, बारह वर्ष की छोटी-सी आयु में उनके मन में इस बात को लेकर विद्रोह पैदा हो गया था कि घर में सफाई के लिए आने वाले ऊका नामक भंगी को छूने से उन्हें रोका क्यों जाता है?

बाल्यकाल की इस जिज्ञासा और सेवा-भाव का धीरे-धीरे विकास हुआ जिसने उनके मन में सब कुछ दूसरों के लिए अर्पित कर देने की भावना जगाई। यही वजह है कि जब दक्षिण अफ्रीका में जोहानसबर्ग से 20 किलोमीटर की दूरी पर उनके एक मित्र ने उन्हें भेंटस्वरूप कुछ जमीन दी तो गांधी जी ने वहां एक ऐसी कालोनी की स्थापना की, जहां किसी भी जाति, धर्म, और रंग के लोग रह सकते थे। उसके बाद भारत लौटने पर गांधी जी अपने इन सेवा कार्यों के निरंतर परिष्कृत करते रहे और उसकी चरम परिणति उनकी सेवा के 'रचनात्मक कार्यक्रमों' अर्थात् मद्य निषेध, सफाई, अछूतोद्धार, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, महिला उद्धार, कुष्ठ रोगियों की सेवा, आदिवासियों की सेवा के रूप में देखने को मिलती है। दरअसल 'स्वराज्य' और 'रचनात्मक कार्यक्रम' दोनों ही गांधी जी के लिए मानवता के उत्थान के साधन थे। यही कारण है कि बापू स्वराज्य की प्राप्ति के बाद भी रचनात्मक कार्यक्रमों को जारी रखना चाहते थे। इसलिए वे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का ऐसा दल तैयार कर रहे थे जो आजादी के बाद राजनीति और सत्ता सुख की चकाचौंध में भटकने के बजाय समाज सेवा की शुष्क दुनिया में चुपचाप काम करते हुए एक बेहतर भारत के निर्माण में अपना विनम्र योगदान करें। किन्तु दुर्भाग्यवश गांधी जी असमय ही हमारे बीच से चले गए और उनका यह सपना खंडित हो गया।

यह कहना भी अतिश्योक्ति न होगा कि गांधी जी इस युग के सबसे बड़े समाज सेवी थे जिन्होंने एक छोर पर छुआछूत की समाप्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता और खादी के प्रचार पर जोर दिया तो दूसरी ओर शराब बंदी, बुनियादी तालीम, महिला उद्धार, गांवों और गंदी बस्तियों की सफाई, कुष्ठ रोगियों की सेवा आदि रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित किया।

अगर हम गौर से देखें तो पाएंगे कि 'रचनात्मक कार्यक्रम' गांधी जी के राजनीतिक आंदोलन का पूरक भी था। इसीलिए उन्होंने बार-बार 'हिन्दू मुस्लिम एकता के बिना स्वराज नहीं' की बात कही और हरिजनों के प्रश्न को मानवता का प्रश्न मानकर उसे 'स्वराज से भी बड़ा' मुद्दा घोषित किया। ग्रामोद्धार की बात कहते थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि जब तक गांवों का भला नहीं होता तब तक आजादी का कोई अर्थ नहीं है और न ही गांवों में बसने वाली अधिसंख्यक भारतीय जनता के सहयोग के बिना आजादी की लड़ाई लड़ी जा सकती है। इसी प्रकार जब गांधी जी महिला उद्धार की बात करते थे तो इसका मतलब केवल महिलाओं की भलाई और कल्याण या उत्थान नहीं था बल्कि इसका मतलब उन्हें आजादी की लड़ाई का भागीदार बनाना भी था। इस काम में गांधी जी कितने सफल हुए, इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। कमला देवी चट्टोपाध्याय ने अपने एक निबंध में 6 अप्रैल, 1930 को नमक सत्याग्रह दिवस का वर्णन करते हुए कहा है-- "वह एक ऐसा स्मरणीय दिन था जब हजारों महिलाएं गर्वोन्नत योद्धाओं की भांति समुद्र की ओर बढ़ रही थीं। किन्तु उस समय उनके हाथों में हथियारों के बजाय मिट्टी, तांबे और पीतल के मटके थे और उन्होंने सैनिक वेशभूषा के बजाय भारतीय गांवों में पहनी जाने वाली सीधी-सादी सूती धोतियां पहन रखी थीं।"

गांधी जी के कुछ रचनात्मक कार्यक्रम तो राजनीतिक आंदोलन के साथ ही उनके आर्थिक चिंतन से भी जुड़े हुए थे, जिसमें वे भारतीय समाज का उद्धार देखते थे। खादी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है जो न केवल कांग्रेस की पहचान और भूमिका का प्रतीक बन गई थी, बल्कि वह एक ओर इंग्लैंड में लंकाशायर की कपड़ा मिलों से आने वाले कपड़े का विकल्प थी तो दूसरी ओर गांधी जी उसे बहुत से लोगों के लिए थोड़ी बहुत आजीविका के साधन के रूप में भी देखते थे। वस्तुतः खादी का अभिप्राय विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न था। 'रचनात्मक कार्यक्रम' शीर्षक

पुस्तक में गांधी जी कहते हैं "एक गरीब विधवा के हाथ में चर्खा उसे थोड़ा बहुत पैसे देने में मदद करता तो जवाहरलाल जैसे व्यक्ति के हाथ में वह स्वाधीनता प्राप्त करने का साधन हो जाता है।"

दरअसल 'स्वराज्य' और 'रचनात्मक' कार्यक्रम दोनों ही गांधी जी के लिए मानवता के उत्थान के साधन थे। यही कारण है कि बापू स्वराज्य की प्राप्ति के बाद भी रचनात्मक कार्यक्रमों को जारी रखना चाहते थे। इसलिए वे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का ऐसा दल तैयार कर रहे थे जो आजादी के बाद राजनीतिक और सत्ता सुख की चकाचौंध में भटकने की बजाय समाज सेवा की शुष्क दुनिया में चुपचाप काम करते हुए एक बेहतर भारत के निर्माण में अपना विनम्र योगदान करे।

पं. जवाहरलाल नेहरू को अक्सर गांधी जी के एकदम विपरीत चिंतन वाले व्यक्ति के रूप में पेश किया जाता है। यह सच है कि नेहरू जी का पालन पोषण एक बिल्कुल भिन्न माहौल में हुआ जहां ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य था। नेहरू जी की तमाम शिक्षा-दीक्षा भी इंग्लैंड में हुई। किन्तु हमें भूलना नहीं चाहिए कि गांधी जी के संपर्क में आकर मोतीलाल नेहरू परिवार ने इस ऐश्वर्य और अंग्रेजी ढंग के रहन-सहन को सबसे आगे बढ़कर तिलांजलि दी, विदेशी कपड़ों की होली जलाई और खादी को आजन्म धारण कर लिया। यही नहीं, कालांतर में गांधी जी ने नेहरू को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। और यह सब इस सत्य के बावजूद की आर्थिक चिंतन के मामले में कुछ मुद्दों पर नेहरू जी महात्मा गांधी से न केवल असहमत थे, बल्कि उनके कटु आलोचक भी थे। उदाहरण के लिए नेहरू जी महात्मा गांधी के 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत से कतई सहमत नहीं थे क्योंकि उनका ख्याल था कि मालिकों को अपने उद्योग का ट्रस्टी बना देने भर से कोई बुनियादी परिवर्तन न होगा और उद्योगों पर उन्हीं का कब्जा बना रहेगा। लेकिन इसके साथ हमें यह भ्रम भी दूर कर लेना चाहिए कि बड़े उद्योगों को लेकर गांधी जी और नेहरू जी में कोई मतभेद था। गांधी जी बड़े उद्योगों के विरोधी नहीं थे, लेकिन इसके साथ ही वह छोटे और कुटीर उद्योगों के प्रबल पक्षधर भी थे क्योंकि इसमें उन्हें गांवों को आत्म निर्भर बनाने, अधिकाधिक लोगों को काम मिलने और गांवों के विकास की संभावना नजर आती थी और यह बात सही भी थी? इस सोच के प्रति पंडित नेहरू का कोई विरोध न था बल्कि जब नेहरू जी ने भारत के योजनाबद्ध विकास की नींव रखी तो उसमें गांधी चिंतन के इस आयाम को प्रमुखता दी गई--खासतौर पर खेती की ओर विशेष ध्यान दिया गया। भारत सरकार के प्रकाशन 'भारत' के अनुसार--"पहली योजना (1951-56) के दो उद्देश्य थे : दूसरे विश्व युद्ध और देश विभाजन के कारण अर्थ व्यवस्था में आए असंतुलन को दूर करना तथा साथ ही साथ चहुमुंखी संतुलित विकास के लिए एक ऐसी प्रक्रिया शुरू करना जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि और कालांतर में जीवन-स्तर में सुधार सुनिश्चित हो। देश में 1951 में बड़े पैमाने पर अनाज के आयात और अर्थ व्यवस्था में मौजूदा मुद्रा स्फीतिकारी दबावों को देखते हुए योजना में सिंचाई और बिजली परियोजनाओं सहित कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। योजना में सरकारी क्षेत्र के लिए निर्धारित 2069 करोड़ रुपये (जिसे बाद में बढ़ाकर 2,378 करोड़ कर दिया गया) के कुल परिव्यय में से 44.6 प्रतिशत इसके विकास के लिए रखा गया।" कालांतर में

लेकिन इसके साथ हमें यह भ्रम भी दूर कर लेना चाहिए कि बड़े उद्योगों को लेकर गांधी और नेहरू में कोई मतभेद था। गांधी जी बड़े उद्योगों के विरोधी नहीं थे। लेकिन इसके साथ ही वह छोटे और कुटीर उद्योगों के प्रबल पक्षधर भी थे क्योंकि इसमें उन्हें गांवों को आत्मनिर्भर बनाने, अधिकाधिक लोगों को काम मिलने और गांवों के विकास की संभावना नजर आती थी और यह बात सही भी थी।

अन्य पंचवर्षीय योजनाओं में भले ही बड़े उद्योगों पर काफी ध्यान केन्द्रित किया गया, किन्तु कृषि और ग्राम विकास के लक्ष्य को न तो ओझल होने दिया गया और न धूमिल पड़ने दिया गया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जो बड़े उद्योग लगाए गए वे भी अंततः ग्राम विकास के लिए आवश्यक थे। लोहा और इस्पात के बड़े कारखाने लगाना इसलिए जरूरी था क्योंकि विशाल निर्माण कार्यो से लेकर किसान के हल तक के लिए लोहा इस्पात जरूरी है और गांव चाहे जितनी आत्म निर्भर इकाई बन जाए किन्तु लोहा इस्पात का निर्माण अकेले किसी एक गांव के बस की बात नहीं है। इसी भांति बड़े-बड़े उर्वरक और कीटनाशक कारखाने लगाना, बीजों और फसलों की उन्नत किस्में विकसित करने के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रयोगशालाओं का निर्माण और कृषि विद्यालयों और कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना बहुत आवश्यक थी। और ये सब बातें किसी भी अर्थ में गांधी विचारधारा से अलग हटने की प्रतीक नहीं थीं।

पहली पंचवर्षीय योजना के साथ ही सहकारिता आंदोलन और सामुदायिक विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। सच तो यह है कि 1952 में महात्मा गांधी के जन्म दिन 2 अक्तूबर को

सामुदायिक विकास के वृहद कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। इसके अन्तर्गत ग्राम तथा खंड स्तर के कार्यकर्त्ताओं का सहयोग लिया गया, खंड विकास, सहायक खंड विकास अधिकारियों आदि की बड़े पैमाने पर नियुक्ति की गई जिनके कार्यालय भी ग्रामीण क्षेत्रों में खोले गए तथा कृषि, पशुपालन, जन स्वास्थ्य, महिला विकास, ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग के विकास आदि को प्राथमिकता दी गई। ये सब स्वयं गांधी जी की भी प्राथमिकताएं थीं। कालांतर में इसी क्रम में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाए गए, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम आदि अपनाए गए। भूमि सुधार, पट्टेदारी व्यवस्था में सुधार, जमींदारी उन्मूलन, चकबन्दी, ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम, केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम, ग्रामीण सड़कों का विकास, कृषि विपणन व्यवस्था आदि इसी दिशा में उठाए गए कुछ सार्थक कदम हैं। इसी भांति डेरी विकास, प्रमाणीकरण, गुणवत्ता नियंत्रण, बीजों के सुरक्षित भंडारों का निर्माण, राष्ट्रीय बीज निगम और राज्य फार्म निगम की स्थापना, उर्वरकों का उत्पादन और उनकी खपत में वृद्धि को प्रोत्साहन, अनेक नदी जल योजनाओं का क्रियान्वयन, सिंचाई आदि के लिए बांधों का निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कदम भी उठाए गए जो ग्राम विकास के गांधीवादी चिंतन के क्रियान्वयन के व्यापक प्रयास हैं। कृषि उपकरणों का विकास, पौध संरक्षण, बागवानी विकास आदि भी इस प्रयास के महत्वपूर्ण अंग हैं।

दरअसल समस्या यह है कि अक्सर गांधीवादी या गांधी विचारधारा को बहुत छोटा करके देखा जाता है। गांधी जी का व्यक्तित्व जितना विराट था, उतनी ही विराट उनकी चिंतनधारा भी थी। जब वे ग्राम-विकास की बात करते थे तो हमें यह मानकर चलना चाहिए कि आज के संदर्भ में उसका अर्थ वही सब है जो हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल किया गया है या जिन उपायों की ऊपर चर्चा की गई है। इसी भांति जब गांधी जी ग्रामोद्योग के विकास की बात करते थे तो उसे आज हमें खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के कार्यों, हस्त शिल्प बोर्ड के प्रयासों आदि के रूप में देखना चाहिए। हमें भूलना न चाहिए कि सहकारी आंदोलन और सहकारिता विकास, जिसकी एक बेहतरीन मिसाल गुजरात में आनंद का दूध उद्योग है, भी गांधी विचारधारा की ही व्यापक स्तर पर क्रियान्विति है।

महात्मा गांधी पंचायत राज व्यवस्था के भी प्रबल समर्थक थे। उनके विचारों से प्रेरणा लेकर ही आजाद भारत की संविधान सभा ने इस दिशा में कदम उठाए। संविधान के अनुच्छेद 40 के अंतर्गत राज्यों के लिए यह आवश्यक किया गया कि वे ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने के लिए कदम उठाएं और उन्हें एक स्वशासित इकाई के रूप में सम्पन्न बनाने की व्यवस्था करें। हाल में संविधान संशोधन करके जिस पंचायती राज्य कानून की रचना की गई है और जिसे राज्यों में लागू करके पंचायतों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना है, वह भी गांधी की पंचायती राज की अवधारणा को अमली जामा पहनाने की दिशा में एक सार्थक कदम ही है। हां, अब यह अवश्य देखने की बात है कि वर्तमान राजनीतिक सामाजिक माहौल में यह नया कानून किस हद तक अपनी सम्पूर्ण भावना के साथ लागू हो पाता है--अर्थात् राज्य सरकारें सचमुच किस हद तक अधिकारों का विकेंद्रीकरण करती हैं और पीड़ित शोषित वर्गों यथा महिलाओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों को किस हद तक उनके कानून प्रदत्त अधिकार सौंपतीं हैं।

हाल में संविधान संशोधन करके जिस पंचायती राज कानून की रचना की गयी है और जिसे राज्यों में लागू करके पंचायतों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना है, वह भी गांधी जी की पंचायती राज की अवधारणा को अमली जामा पहनाने की दिशा में एक सार्थक कदम ही है।

दरअसल हमारे विकास तथा समाज के विभिन्न वर्गों के उत्थान का मूल आधार गांधी चिंतन ही है। चाहे कल्याण कार्य हों या फिर प्रौढ़ और महिला शिक्षा उसके बुनियादी प्रेरणा बिन्दु वहीं हैं जिन पर महात्मा गांधी ने जोर दिया था। उदाहरण के लिए उन्होंने प्रौढ़ों और महिलाओं को साक्षर बनाने पर विशेष बल दिया था। उन्होंने कहा था--"यदि घर में महिला शिक्षित है तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है।" उन्होंने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल देते हुए वर्धा से 'महिलाश्रम पत्रिका' निकाली। इसके अलावा 'नई तालीम' नामक पत्रिका भी उन्होंने आरम्भ करवाई जिसकी सम्पादिका श्रीमती आशा देवी आर्यनायकम थीं। दरअसल 1930 के नमक सत्याग्रह के पश्चात गांधी जी को यह महसूस हो गया था हिन्दुस्तान की स्त्रियां पुरुषों की भांति ही शक्ति के रूप में उभर सकती हैं। लेकिन बगैर शिक्षा के, बिना उन्हें घर की चहारदीवारी से बाहर निकाले महिलाओं की मुक्ति की बात करना व्यर्थ है। इसीलिए उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के साथ ही साथ स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत 'राष्ट्रीय साक्षरता

मिशन' के जरिए प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार और महिला शिक्षा को प्रोत्साहन तथा "महिला समाख्या" (महिलाओं की समानता की शिक्षा) इसी दिशा में उठाए गए कदम हैं। हां, यह बात जरूर विचारणीय है कि ये कदम किस हद तक सार्थक हैं या इन प्रयासों को कितनी सफलता मिली है। सच तो यह है कि आज भी हमारी अधिकांश महिलाएं निरक्षर हैं खासतौर पर गांवों में चिंताजनक स्थिति है। केरल जैसे राज्य अपवाद हैं जहां शिक्षा प्रसार, खासतौर पर महिलाओं और ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता प्रसार बड़े पैमाने पर हुआ है। आज भी मध्य प्रदेश जैसे विशाल राज्य में केवल लगभग 29 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर हैं और राज्य के एकाध आदिवासी जिले में तो केवल 11 प्रतिशत ही महिला साक्षरता हैं।

जो बात साक्षरता के संदर्भ में लागू होती है, वही अन्य तमाम कार्यक्रमों के संदर्भ में भी लागू होती है। हमने योजनाबद्ध विकास की नींव रखी, गांधीवादी सपनों के अनुरूप पहली योजना से ही कृषि और गांवों को इस योजनाबद्ध विकास का केन्द्र बिन्दु बनाया, कालांतर में ग्राम विकास, गांव वालों को रोजगार देने, उन्हें सिंचाई आदि की सुविधाएं मुहैया कराने, ग्रामोद्योग और सहकारिता के विकास के लिए कार्यक्रम बनाए, किन्तु अगर देश के एक छोर से दूसरे छोर की यात्रा की जाए तो लगता है कि गांवों की, गांव वालों की, किसानों और ग्रामीण महिलाओं की, हालत में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आया । कहीं कहीं तो गांवों में हिंसा, जातिवाद आदि ने गहरी जड़ें तक जमा ली हैं। लगता है हम तमाम योजनाओं और कार्यक्रमों के बावजूद आगे नहीं बढ़ पाए हैं। यहीं पर लगता है कि हम गांधी जी के रास्ते पर नहीं चल सके। अच्छी योजनाओं और कार्यक्रमों के बावजूद उनका क्रियान्वयन काफी हद तक दोषपूर्ण रहा है। राजीव गांधी ने कहा था-- और ठीक ही कहा था कि जिन पर धन खर्च किया जा रहा है, उन पर खर्च किए जाने वाले प्रत्येक एक रुपये में से केवल दस पैसे ही उन तक पहुंच पा रहे हैं। जाहिर है कि शेष नब्बे पैसे लाल फीताशाही, सरकारी अमले के वेतन, ठेकेदारों और सरकारी तंत्र की मिलीभगत और भ्रष्टाचार में निकल जाते हैं। ऐसा नहीं कि ग्राम विकास बिल्कुल नहीं हुआ, ऐसा नहीं कि खेत खलिहानों में फसलें नहीं बढ़ीं या ग्रामोद्योग का विकास व विस्तार नहीं हुआ, पर यह भी सच है कि उतनी सफलता नहीं मिली जितनी मिलनी चाहिए थी। आज भारत वहां नहीं है जहां 15 अगस्त 1947 से पहले था, किन्तु वह वहां भी नहीं है जहां उसे होना चाहिए था। इसके कारण भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में नौकरशाही का अडंगा आदि तो हैं ही, साथ ही जनसंख्या विस्फोट जैसी गंभीर समस्याएं भी हैं। यदि हमारी जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार कम होती तो विकास के लाभ ज्यादा लोगों तक पहुंचते। किन्तु ऐसा हो नहीं सका। दरअसल हर नजरिये से आमूल परिवर्तन लाने की दिशा में समग्र प्रयास न किया जाना इसके लिए जिम्मेदार है। गांधी जी केवल सत्ता परिवर्तन के यानि अंग्रेजों के जाने और भारतीयों द्वारा आमूल परिवर्तन के ही समर्थक नहीं थे। उन्होंने कहा था--"सामाजिक व्यवस्था को बदलना और राजनैतिक स्वराज्य के लिए संघर्ष दोनों ही साथ साथ चलने चाहिए। यहां पहले, पीछे या दोनों को अलग अलग खंडों में बांटने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। परन्तु नई सामाजिक व्यवस्था जबर्दस्ती नहीं लादी जा सकती। वह इलाज बीमारी से भी ज्यादा खराब रहेगा। मैं सुधार के लिए उतावला हूं। मैं सामाजिक व्यवस्था में व्यापक और आमूल परिवर्तन लाना चाहता हूं।"

भारत की सामाजिक व्यवस्था आज व्यापक और आमूल परिवर्तन की ही प्रतीक्षा कर रही है-- एक ऐसी प्रतीक्षा जिसमें गांधी के सपनों का भारत का निर्माण निहित है।

कहीं-कहीं तो गांवों में हिंसा, जातिवाद आदि ने गहरी जड़ें तक जमा ली हैं। लगता है हम तमाम योजनाओं और कार्यक्रमों के बावजूद आगे नहीं बढ़ पाए हैं। यहीं पर लगता है कि हम गांधी जी के साथ कदम से कदम मिलाकर नही चल सके।

सी-2/31, ईस्ट आफ कैलाश,
नई दिल्ली-110065

अहिंसा द्वारा प्रस्थापित जिस लोकतंत्र की मैंने कल्पना की है उस लोकतंत्र में सबको समान स्वतंत्रता मिलेगी। हर कोई अपना स्वामी स्वयं होगा।

—महात्मा गांधी

PERCEPTION...

The average villager depends on the weather
and the money-lender for his existence.

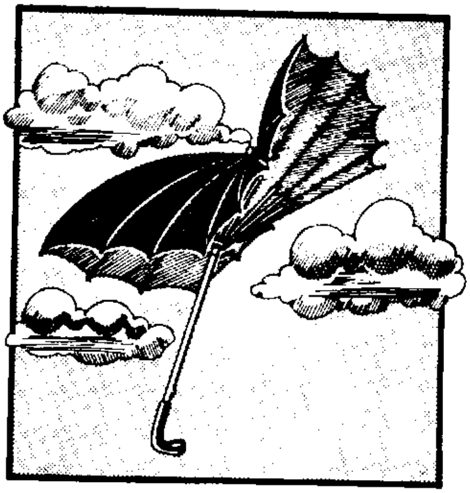

REALITY...

Times have changed. The village scene has changed.
And the villager is now much more master of his own destiny.
Because today, farmers' co-operatives funded by NCDC through the state governments have put up fertilizer plants, sugar mills, oilseed processing units, spinning mills — even poultry hatcheries and fisheries — offering growth potential and employment to the villagers.

From planning, promoting, guiding and supporting co-operative activities, to setting up plants, to marketing and distribution of the produce, NCDC is involved in practically every sphere of village life.
Of course, good weather will always be important in village life.

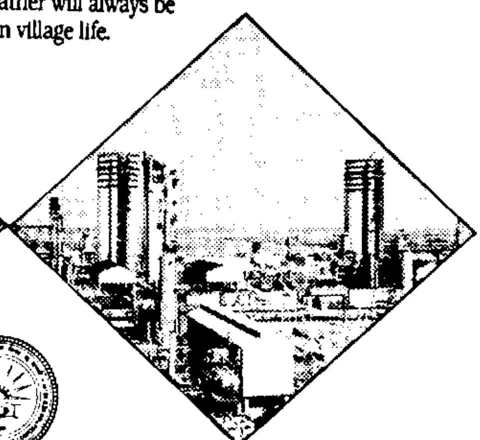

National Co-operative Development Corporation

4, Siri Institutional Area, Hauz Khas, New Delhi-110 016

NCDC. The Co-operative story.

F.N/XII-9338

आजादी के बाद ग्राम-विकास और बापू की सोच

✍ डा. प्रमिला शर्मा

अपने आखिरी वसीयतनामे में बापू ने अप्रत्यक्ष प्रणाली से सरकार चुनने का उल्लेख किया था। इसकी पहली सीढ़ी बापू ने ग्राम पंचायतों को रखा था। लेखिका ने उसकी चर्चा लेख में की है। देश की समस्याओं को सुलझाने में गांधी जी चर्खे को किस तरह उपयोगी मानते हैं उसका उल्लेख भी लेख में है। लेखिका ने लेख में यह भी बताया है कि बापू चीजों की बिक्री पर नियंत्रणों का विरोध तथा 'तालीमी शिक्षा' नाम की शिक्षा प्रणाली की वकालत क्यों करते थे।

गांधी जी के अभिन्न सहयोगी प्यारे लाल के साक्ष्य से 29 मई 1947 की सुबह की सैर के समय एक सहयोगी ने बापू से पूछा– "आपने हमें 'भारत छोड़ो' का रणनाद दिया। आपने हमारी लड़ाइयां लड़ीं। परन्तु अंतिम निर्णय के समय मैं देखता हूं कि आप तस्वीर में कहीं नहीं हैं। आपको और आपके आदर्शों को ताक में रख दिया गया है।

गांधी जी : आज मेरी बात कौन सुनता है?

सहयोगी : नेता भले न सुने, परन्तु लोग तो आपके पीछे हैं।

गांधी जी : लोग भी नहीं हैं। मुझे हिमालय में चले जाने के लिए कहा जा रहा है। सब लोग मेरे चित्रों और मूर्तियों को तो माला पहनाने के लिए उत्सुक हैं। परन्तु मेरी सलाह पर वास्तव में कोई चलना नहीं चाहता।

सहयोगी : आज न चलें परन्तु बहुत जल्दी ही उन्हें चलना पड़ेगा।

गांधी जी : उससे क्या फायदा? कौन जानता है कि उस समय मैं जिन्दा भी होऊंगा या नहीं। प्रश्न तो यह है कि आज हम क्या कर सकते हैं। स्वाधीनता की लड़ाई के समय एकता थी। सत्ता की आशा ने हमारा नैतिक पतन कर दिया है।"

(महात्मा गांधी पूर्णाहुति, पृ. 269, खण्ड III)

आजादी जैसे-जैसे समीप आ रही थी- बापू की व्यग्रता भी बढ़ रही थी। देश के नवनिर्माण का जो 'सपना' पूरा होना था उसके प्रति निष्ठा और संकल्प कमजोर पड़ता जा रहा था। सदियों की गुलामी के बाद भी यदि हम जानबूझकर यह न देखें कि हमारी नींव को कहां, कब और कैसे-कैसे उपायों से विदेशी सत्ता ने खोखला किया तो 'आजादी' के उत्सव से—जन-जन कैसे जुड़ेगा? गांवों की विकेन्द्रित व्यवस्था में शिक्षा, न्याय, प्रशासन, अर्थ-संचालन सभी कुछ स्वावलंबन पर टिके थे। यही कारण था कि अंग्रेजी सत्ता को अपने पांव जमाने के लिए इस सुदृढ़ व्यवस्था पर प्रहार करना जरूरी लगा। गांवों की पंचायती-व्यवस्था खर्चीली और भ्रष्ट न्यायप्रणाली नहीं थी, वह झूठे गवाहों और महंगी फीस पर नहीं टिकी थी। गांव कृषि प्रधान तो थे पर उसी अर्थ में उद्योग प्रधान भी थे। अपने लाभ के लिए जबरन 'नील' की खेती कराने वाले शोषणकर्ताओं ने ही जमींदार और कारकुनों का जाल बिछाया जिसके चलते 'किसान' खेतिहर मजदूर बन गया या शहरों में जाकर कारखानों में काम करने के लिए मजबूर हुआ। समर्थ गांव इतने परावलम्बी बन गए कि चाहे शिक्षा हो या स्वास्थ्य, न्याय हो या प्रशासन- सभी दृष्टि से 'शहरी व्यवस्था' उन्हें चलाने लगी। सच तो यह है कि कलकत्ता, दिल्ली के पराधीन होने से देश पराधीन नहीं हुआ देश तो वास्तव में तभी पराधीन हुआ जब हमारे गांवों की सदियों से चली आ रही सुव्यवस्था—'पंचायती राज्य'—को अंग्रेजों ने सदा के लिए छिन्न-भिन्न कर दिया। बापू की गहरी दृष्टि इस सत्य को भली भांति पहचानती थी। उनका 'स्वराज्य' नागरिक-वैभव और पश्चिमी शान शौकत के अनुकरण वाला नहीं था— वहां तो गांव में बसने वाले सच्चे भारत की सम्पन्नता जरूरी थी।

15 अगस्त 1947 को बापू पश्चिमी बंगाल में थे। मंत्रिमंडल के सदस्य उनसे आशीर्वाद लेने आए। बापू ने जो उनसे कहा वह मानो पूरे राष्ट्र के लिए दिशा-निर्देशक संदेश था:

"आज से आपको कांटों का ताज पहनना होगा। सत्य और अहिंसा की आप सतत साधना कीजिए। नम्र बनिए। सहिष्णु बनिए। ब्रिटिश राज्य ने आपके जीवट को बेशक परख लिया; परन्तु अब आपकी पूरी-पूरी परीक्षा होगी। सत्ता से सावधान रहिए। सत्ता मनुष्य को भ्रष्ट करती है। इसकी तड़क-भड़क और आडम्बर में नहीं कसिए। याद रखिए कि आप भारत के गांवों में बसे गरीबों की सेवा करने के लिए पदारूढ़ हैं। ईश्वर आपकी सहायता करे।"

बापू के लिए 'पंचायती राज्य' भारत की मूलभूत व्यवस्था थी। 27 दिसम्बर 1947 को बापू दिल्ली से बारह मील दूर सिंभाल गांव में गए जहां उन्हें बताया गया कि वहां के निवासियों ने पुनः 'पंचायत' बनाई है। बापू ने सुनकर कहा—"आप लोगों ने पंचायत बनाई है तो अच्छा किया, इसके लिए मुबारकबाद देता हूं। लेकिन अगर पंचायत का काम नहीं किया तो मैं कहूंगा कि पंचायत का नाम किया, लेकिन काम नहीं किया। आपकी पंचायत सच्चे माने में पंचायत नहीं है। लेकिन हिंदुस्तान में सच्ची पंचायत थी-- आपने तथा मैंने वह देखी नहीं है; लेकिन चीन और यूनान से जो लोग हिन्दुस्तान आए थे वह सब कहते हैं।... वे लिखते हैं कि हिन्दुस्तान में कहीं चोरी देखने में नहीं आई, किसी जगह ताला-कुंजी नहीं देखा, यह हजारों वर्षों की बात नहीं है।" उन्होंने ग्राम वासियों को शराब, जुआ, सिनेमा, गांजा आदि व्यसन छोड़ कर, छुआछूत मिटाकर मेलजोल से रहकर 'आदर्श ग्राम पंचायत' बनाने की सलाह दी। बापू के लिए 'ग्राम पंचायत' नारा या शब्द नहीं— जीवन पद्धति थी।

सच तो यह है कि कलकत्ता, दिल्ली के पराधीन होने से देश पराधीन नहीं हुआ— देश तो वास्तव में तभी पराधीन हुआ जब हमारे गांवों की सदियों से चली आ रही सुव्यवस्था 'पंचायती राज्य' को अंग्रेजों ने सदा के लिए छिन्न-भिन्न कर दिया।

बापू की चेतावनी

पर क्या बापू के मार्ग पर हम चल पाए? सत्ता तड़क-भड़क और आडम्बर में फंसी। ग्रामोत्थान की, रचनात्मक कार्यों की और निष्ठा की अवहेलना की गई। त्याग और दंभ रहित ग्राम सेवा की जगह 'चतुराई पूर्ण वक्तृत्व कला' ने ले ली। परिणाम यह हुआ कि लोकतंत्र की इस नई दौड़ में 'बहुमत' जुटाने में समर्थ सिद्धांत-हीन सत्ता के नए केन्द्र बन कर सामने आए और 'ग्राम स्वराज्य' पर हावी हो गए। गांधी जी ने शासनारूढ़ साथियों को बराबर इस दिशा में जागरूक रहने के लिए कहा। 'लोकमत' की उपेक्षा करके कुछ गिने चुने प्रतिनिधियों का शासन पश्चिमी दृष्टि से भले ही 'लोकतंत्र' कहा जा सके पर बापू की दृष्टि में 'लोकतंत्र' की यह 'संसदीय प्रणाली' हमारी परंपरागत भारतीय व्यवस्था के सर्वथा प्रतिकूल थी। 'हिन्द स्वराज्य' में बरसों पहले 'ब्रिटिश संसदीय प्रणाली' को वे ऐसी बांझ स्त्री से उपमित कर चुके थे जिसने कभी कोई श्रेष्ठ फल नहीं दिया। उनकी दृष्टि से 'ग्राम' को शासन की स्वायत्त इकाई बनाए बिना साफ-सुथरी शासन-प्रणाली असंभव थी। प्रौढ़ मताधिकार की प्रत्यक्ष प्रणाली को "सारे देश को डुबोने वाला प्रलय" कहते हुए बापू ने 3 अगस्त 1947 को 'हरिजन' में चेतावनी देते हुए लिखा कि "अगर हम सावधान नहीं रहे तो हमारे नवजात लोकतंत्र पर जड़ बहुमतों का भारी बोझ डालकर उसका गला घोंट दिया जा सकता है, जड़ और निष्क्रिय बहुमत का ऐसे भ्रष्ट और सिद्धान्तहीन लोक नेता अतिशय दुरुपयोग कर सकते हैं, जो असहयोग आंदोलन के आरंभ में विलीन हो गए थे। अच्छे बुरे कार्यकर्त्ताओं के चुनाव के लिए अच्छी तरह सोचे हुए रचनात्मक कार्यक्रम के बराबर दूसरा कोई कारगर उपाय नहीं होता। परंतु रचनात्मक कार्यक्रम तो धीरे-धीरे कांग्रेस जनों में अप्रिय होता जा रहा है। मेरा दृढ़तापूर्वक यह कहना है कि अगर कांग्रेस को शक्तिशाली संस्था के नाते जीना है, तो उसे रचनात्मक कार्यकर्ताओं का संघ बन जाना चाहिए।"

आखिरी वसीयतनामा

शक्ति और बल के दुरुपयोग से अनाधिकारी हमारे प्रतिनिधि न बन बैठें, इसके लिए जरूरी है कि केन्द्र में प्रतिनिधि अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के आधार पर चुन कर आएं ताकि मूल सत्ता 'ग्राम' के हाथ में रहे। बापू के आखिरी वसीयतनामे में इसका खुलासा विद्यमान है : "गांव वाले या गांव वालों के जैसे मनोवृत्ति वाले पांच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की चुनी हुई हर एक पंचायत इकाई बनेगी। आसपास की ऐसी हर दो पंचायतों की उन्हीं में से चुने हुए एक नेता की रहनुमाई में, एक काम करने वाला दल बनेगा। जब ऐसी सौ पंचायतें बन जाएं, तब पहले दर्जे के पचास नेता अपने में से दूसरे दर्जे का नेता चुनें और इस तरह पहले दर्जे का नेता दूसरे दर्जे के नेता के मातहत काम करे। दो सौ पंचायतों के ऐसे जोड़ कायम करना तब तक जारी रखा जाए, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढक लें। और बाद में कायम की गई पंचायतों का हर एक समूह पहले की तरह दूसरे दर्जे का नेता चुनता जाए। दूसरे दर्जे के नेता सारे हिन्दुस्तान के लिए सम्मिलित रीति से काम करें और अपने-अपने प्रदेशों में अलग-अलग काम करें। जब जरूरत हो, तब दूसरे दर्जे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनें और वह मुखिया, चुनने वाले जब तक चाहे तब तक सब समूहों को व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करे।" 29 जनवरी 1948 को लिखा गया यह आखिरी वसीयतनामा यदि पूरी ईमानदारी से अपनाया जाता तो विदेशी संसदीय प्रणाली, उद्योगीकरण, राष्ट्रीयकरण के साथ दाय-भाग में मिली अनेक समस्याओं का सामना भारत को न करना पड़ता। शहरीकरण के

हमले से 'गांव' बचे रहते और भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी से मुक्त 'स्वराज्य' प्राप्त होता!! हर गांव स्वावलंबी बन कर पूरी सत्ता और ताकत की धुरी बनता और विकेन्द्रित व्यवस्था में शोषण की संभावना ही न रह जाती। बापू के शब्दों में :

"गांवों का शोषण अपने आप में संगठित हिंसा है। ... मैं कहूंगा कि अगर गांवों का नाश होता है, तो भारत का भी नाश हो जाएगा। उस हालत में भारत भारत नहीं रहेगा। दुनिया को उसे जो संदेश देना है, उसे वह खो देगा।"

आदर्श गांव

बापू के लिए पूर्ण प्रजातंत्र का अर्थ 'ग्राम स्वराज्य' है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी गांव, शराबखोरी, छूआछूत से मुक्त साफ सुथरा गांव, पाठशाला, व्यायामशाला, सभा भवन, नाट्यशाला से युक्त गांव, जिसमें अस्वच्छता नहीं है ऐसा स्वस्थ गांव, जिसमें बेरोजगारी नहीं ऐसा ग्रामोद्योगों से भरा पूरा गांव, जहां कचहरियों में जा कर मुकदमे नहीं लड़े जाते वरन् उन्हें पंचों के न्याय से मिल बैठ कर सुलझाया जाता है- ऐसे शांतिप्रिय, अहिंसक गांव!! बापू के सपनों के भारत में 'गांव' की जो स्थिति है- उसे 'यूटोपिया' कह कर नकारा नहीं जा सकता। अपने स्वार्थ के लिए सदियों तक विदेशी सत्ता ने उनका शोषण कर जर्जर उन्हें जरूर बना दिया है, निश्चय ही उन्हें पुनर्रचना की जरूरत है। गांवों के निस्तेज स्वरूप में नूतन प्राण-संचार के लिए शहरों को आगे बढ़ना चाहिए।

"धरती माता की ओर लौटो, सादगी को अपनाओ, आम आदमी की सेवा ही ईश्वर और राष्ट्र की सेवा है"- इसी भावना

बापू के लिए पूर्ण प्रजातंत्र का अर्थ 'ग्राम स्वराज्य' है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी गांव, शराबखोरी, छुआछूत से मुक्त साफ-सुथरा गांव, पाठशाला, व्यायामशाला, सभा भवन, नाट्यशाला से युक्त गांव, जिसमें अस्वच्छता नहीं है ऐसा स्वस्थ गांव, जिसमें बेरोजगारी नहीं ऐसा ग्रामोद्योगों से भरापूरा गांव, जहां कचहरियों में जाकर मुकदमे नहीं लड़े जाते वरन उन्हें पंचों के न्याय से मिल बैठ कर सुलझाया जाता है– ऐसे शांतिप्रिय, अहिंसक गांव !!

को अपना स्पंदन बना कर जन-जन ने एकजुट हो आजादी की लड़ाई लड़ी थी। आम आदमी के सुख दुख को अपना मानने वाले बापू ने 'चरखा संघ', 'हरिजन सेवक', 'ग्राम उद्योग संघ' और 'तालीमी संघ' के रूप में जो रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रखा यदि उस पर ईमानदारी और निष्ठा से चला जाता तो अनेकानेक समस्याओं का सहज हल खोजना संभव था। 20 दिसम्बर 1947 के प्रार्थना-प्रवचन में बापू ने कहा कि ये चारों संघ धनिकों के लिए नहीं, बल्कि गरीबों के लिए हैं। "सब लोगों को इनके काम में हाथ बढ़ाना है। अगर हाथ न बढ़ायें तो वह काम चल नहीं सकता। अगर हम हिन्दुस्तान में पंचायती राज या लोगों का राज चाहते हैं तो सब लोगों को उस काम में मदद करनी है। वह कोई हवा में से तो आता नहीं है और न हिमालय से चल कर आता है। वह तो यहां की जनता के द्वारा ही हो सकता है। जनता एक तरह की नींव है, जिस पर हम एक बहुत ऊंचा मकान बना सकते हैं।" उन्होंने यदुवंशियों के विनाश की कहानी सुनाते हुए कहा कि शराब, व्यभिचार, परस्पर लड़ाई से उनका कृष्ण के वंशज होने पर भी विनाश हुआ। "वह नतीजा या तो हिंदुस्तान को आने वाला है और अगर नहीं आने वाला है तो केवल इससे ये चार चीजें बनी हैं उनको हम करते रहें। तभी हम सब आराम से रह सकते हैं।"

चरखा और ग्राम-स्वराज्य

'चरखा' बापू की दृष्टि में, "ग्राम उद्योग का मध्य बिन्दु है। चरखा तो सूरज है और दूसरे जो उद्योग हैं वे ग्रह हैं, जो सूरज के इर्द गिर्द फिरते रहते हैं।" आजाद भारत में, अपने हाथ में सत्ता आने पर भी पहनने को पर्याप्त वस्त्र न हो, खाने को पेट भर अन्न न हो—यह तो बापू के लिए अकल्पनीय था। यदि देश का हर व्यक्ति मात्र एक घंटा चर्खा चलाए तो पूरे देश में कोई भी बिना वस्त्र नहीं होगा— यह तो बापू का खुला दावा था। 10 दिसम्बर 1947 चर्खा संघ के उद्देश्य और कार्यप्रणाली का सविस्तार वर्णन करते हुए कहा- ".. मैं तो कहूंगा कि अगर हम पागल नहीं हैं तो कपड़े का घाटा तो हमारे यहां होना ही नहीं चाहिए। कोई भी मिल न रहे, तब भी घाटा नहीं होना चाहिए। आज हम चर्खे को, खद्दर-गाढ़े को अपनाना भूल गए हैं। आज कोई खद्दर की टोपी पहन लेता है, क्योंकि कुछ अभ्यास हो गया है, उसको साथ लेकर आजादी की लड़ाई लड़ी थी, लेकिन आज वह चीज हमारे जीवन में जिन्दा नहीं है। यह हमारे लिए दुःख की बात है। ... अगर सब लोग चर्खामय बन जाते हैं तो सब देहात सचमुच समृद्ध बन जाएं तो आज जो हालत देखते हैं, करुणामय है, वह बनने वाली नहीं है।... मिल के लिए सब सुविधा पैदा की जाती हैं। हम राज चलाते हैं, उसमें धनपति हैं, उनकी तो चलती है और जो हलपति हैं उनकी नहीं चलती है।... मैं तो चाहता हूं कि हर एक देहात

में चर्खा गुंजन करे और गाढ़े के सिवा कुछ दीखे ही नहीं।" चर्खा 'स्वावलंबन' और 'स्वदेशी कला कौशल' से जुड़ा है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 'स्वदेशी कला कौशल' को दबाया और लंकाशायर, मैनचेस्टर की मिलों को चलाने के लिए कपास का बेइन्तहा निर्यात किया। अकाल, भुखमरी, गरीबी, बीमारी से जर्जर, अर्धनग्न भारतवासियों के दुःखदर्द को मिटाने के अचूक कौशल 'चर्खे' की ताकत को बापू ने पहचाना और इस अचूक अस्त्र से विदेशी सत्ता तिलमिला गई। 'चर्खा' न केवल राष्ट्रीय आजादी का साथी था अपितु सही अर्थों में देशवासियों की आर्थिक प्रगति का प्रतीक भी था। अपने प्रार्थना प्रवचन (6 नवम्बर, 1947) में बापू ने कहा-- "इसमें मुझे रत्ती भर भी शक नहीं है कि खादी का अर्थशास्त्र ही देश का सच्चा और फायदेमंद अर्थशास्त्र हो सकता है।"

नियंत्रणों का विरोध

ध्यान रहे कि जिस समय बापू यह सब कह रहे थे उस समय देश में कपड़े की बेहद तंगी थी। कपड़े और खाने की वस्तुओं पर कंट्रोल था। उन्हें किसी भी अर्थ में कंट्रोल पसंद नहीं था। "अगर हाथ से सूत बुनने लगेंगे तो नंगे रहने की दरकार नहीं। तो हमारा खूबसूरत मुल्क, जिसमें इतने करोड़ लोग रहते हैं, जो धंधा जानते हैं, जिनको इतना इल्म है कि कपड़ा किस तरह तैयार किया जाता है, नंगा नहीं रह सकता। ...कपड़े पर अंकुश रखना मेरी निगाह में अज्ञानता की सीमा है।" (5 दिसम्बर, 47) बापू को नौकरशाही की इस आशंका में कतई विश्वास नहीं था कि देश में कंट्रोल हटा लेने से वस्तुओं के दाम अंधाधुंध बढ़ जाएंगे। उनकी दृष्टि में कंट्रोल-व्यवस्था के अंकुश तो आजादी खोने के लिए हैं। "अगर हकूमत कहे कि अंकुश हटा लेंगे तो लोग मर जाएंगे तो मैं कहूंगा कि पंचायत राज नहीं बना, लोगों का राज नहीं हुआ, राम राज्य तो हुआ ही नहीं। मैं तो उसी के खातिर जिन्दा रहना चाहता हूं।" (5 दिसम्बर, 1947) बापू नौकरशाही के अड़ंगे के बावजूद अपनी मान्यता पर दृढ़ रहे और सरकार को कंट्रोलों को हटाने के लिए कहते रहे। आज जिस खुली अर्थ व्यवस्था को बहुत बड़ी उपलब्धि के रूप में देखा जाता है कि लाइसेंस राज हटा कर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी दूर की गई है- उसे तो बापू के भीतर का कुशल ठेठ भारतीय अर्थशास्त्री आजादी की पहली भोर में ही देख चुका था। उनकी बात का असर हुआ और 5 जनवरी 1948 को अर्थात् अपने निधन के मात्र 25 दिन पूर्व उन्होंने जनता को यह सूचना दी कि कंट्रोल हटा लेने से दाम कितना गिरे और चोरबाजारी, रिश्वतखोरी पर नियंत्रण लगाः

"अंकुश निकल जाने के कारण बाजार में बेतहाशा ऊनी और रेशमी कपड़ा आ गया है। ऊनी और रेशमी कपड़े की कीमत कम से कम 50 फीसदी गिर गई है। काफी जगह 66 प्रतिशत गिरी है।... अगर सूती कपड़े पर से पूरी तरह अंकुश उठा लिया जाए तो कीमत कम से कम 60 प्रतिशत गिर जाएगी और कपड़ा भी ज्यादा अच्छा मिलने लगेगा।... सूती कपड़े से अगर अंकुश उठाया गया तो उसे सफल बनाने के लिए कम से कम तीन साल हिन्दुस्तान से बाहर क़पड़ा भेजने की मनाही होनी चाहिए। सरकारी दफ्तरों के आंकड़े तो जादू का खेल-सा रहते हैं। वे खुराक और कपड़े से अंकुश उठाने के रास्ते में नहीं आने चाहिए। ...अंकुश अमीर के लिए आशीर्वाद रूप और गरीब के लिए शाप रूप और अंकुश रखा जाता है गरीबों की खातिर। ... कपड़े के बारे में, अगर खादी को, जिसे आजादी की वर्दी कहा गया है, हम भूल नहीं गए तो कपड़े पर अंकुश रखने के लिए एक भी दलील नहीं है। हमारे पास काफी रूई है और काफी हाथ हैं जो देहातों में चर्खा और कर्घा चला सकते हैं। हम आराम से अपने लिए कपड़ा तैयार कर सकते हैं। न उनके लिए शोरगुल की जरूरत है, न मोटरलारियों की।... जब हमारी कैलिको, जिसे खादी कहते हैं, देहातों में बनती है और वहीं खपती है, तब इस केन्द्रीकरण की कोई जरूरत नहीं रहती। अपने आलस्य या अज्ञान अथवा दोनों को छिपाने के लिए हम अपने देहातों को गाली न दें।"

देश की आम जनता के सुख दुःख से जुड़ा व्यक्ति यदि उनका प्रशासन करे तो निश्चय ही वह उन स्वार्थपूर्ण नीतियों को लागू करने में हिचकेगा जो सत्ता के हित में पर जनता के अहित में हों। अंग्रेजों की कुटिलतापूर्ण नीतियों को क्रूरता से लागू करने वाली नौकरशाही ने राजनीति के तपे हुए नेताओं को भी गलत तथ्य और आंकड़े देकर गुमराह करना शुरू किया तो बापू ने सार्वजनिक सभाओं में, अपने लेखों में उनकी कुटिलता को लताड़ा। 17 नवम्बर, 1947 को सोमवार होने के कारण बापू का "मौन दिवस" था सो उन्होंने अपने लिखित संदेश में कंट्रोल हटाने के सम्बन्ध में बाधक बनी नौकरशाही विशेषज्ञों की चर्चा की—"मैं आपको थोड़ी देर और रोकूंगा ताकि कंट्रोल के बारे में आपसे कहूं जिस पर आज खूब बहस हो रही है। क्या उन पंडितों के शोर में जो दावा करते हैं कि कंट्रोल के फायदों के बारे में वे सब कुछ जानते हैं, जनता की आवाज की कोई सुनवाई नहीं होनी चाहिए? कितना अच्छा हो कि हमारे मंत्री जो कि जनता में से चुने गए हैं और जनता के हैं, जनता की आवाज सुने, बजाय उस दफ्तरी घिस घिस के माहिरों की जिनके बारे में वे खूब जानते हैं कि उन्होंने

सिविल नाफरमानी के वक्त उन्हें खूब नुकसान पहुंचाया था। तब इन पंडितों ने पूरी कड़ाई के साथ हकूमत की। क्या आज भी उन्हें ऐसा ही करना चाहिए?''

यह सच है कि लाइसेंस और कंट्रोलों की मार का शिकार गरीब गांव वाला अधिक होता है। अन्न उत्पादक ही इस प्रणाली के चलते आत्मनिर्भर नहीं रह पाता। 24 अक्तूबर 1947 के 'हरिजन' में बापू ने लिखा–''आज देश में कई ऐसी चीजें चल रही हैं, उनमें मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है, यह बात मुझे बहुत जोरों से कहनी चाहिए। ...मेरी राय में कांग्रेस सरकार ने खुराक और कपड़े पर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है। मेरी चले तो मैं अनाज का एक दाना भी बाहर से न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में आज भी काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोल की वजह से देहात के लोग उसे छिपा कर रखने की जरूरत महसूस करने को लाचार हुए हैं।'' (पन्द्रह अगस्त के बाद, पृ. 93) अफसरशाही के दबाव के कारण युद्ध के समय की आवश्यकता कहलाने वाला कंट्रोल आजाद भारत में भी बना रहा। फल यह हुआ कि एक ओर देहातों में भी जमाखोरी का दुर्गुण आया और साथ ही अन्न के आयात में बिचौलियों का कमीशन भी बना रहा। बापू की सलाह को न मानने का ही परिणाम है कि हम एक ही आर्थिक वर्ष में पहले तो चीनी का 'निर्यात' करते हैं और फिर बढ़ती कीमतों को कम करने का नाम लेकर विदेशों से 'आयात' करते हैं। ऊंचे दाम तो नीचे नहीं होते। अतः सरकारी मशीनरी की तामझाम का खर्चा तभी कम होगा जब देश का प्रत्येक गांव आत्म-निर्भर होगा। 22 दिसम्बर 1947 के 'हरिजन' में बैकुंठ भाई का पत्र 'देहातों में अनाज संग्रह' के बारे में छपा जिसमें कहा गया था कि अच्युतराव पटवर्धन के साथ उन्होंने चार वर्ष पूर्व एक योजना बनाई थी जिसके अनुसार पंचों की देखरेख में प्रत्येक गांव में गरीब प्रजा के हित में गोदाम बनाया जाए ताकि चौमासे में भाव बढ़ जाने पर उन्हें तंगी न हो। बापू ने देश की माली व्यवस्था में इस संग्रह-योजना को उपयोगी माना। बापू ने देहाती और व्यापारी दोनों से ईमानदार बनने की सिफारिश करते हुए नकद टैक्स के स्थान पर अन्न संग्रह की पुरानी प्रथा का समर्थन किया। नैतिक अनुशासन में बंधा अहिंसक समाज ही सच्चा प्रजातंत्री हो सकता है–वहीं पर स्वराज्य के लाभ निचली श्रेणी तक समान रूप से पहुंचते हैं। सरकारी दबाव में पलने वाली अर्थ व्यवस्था के भीतर तो भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, पक्षपात का घुन लगा रहता है। इस दृष्टि से बापू का विश्लेषण बहुत खरा और सटीक था।

ग्रामोद्योग

बापू देश के किसी भी कोने में जाते, वहां के निवासियों से मिलकर वहां की उपज, कला कौशल और व्यवस्था की रुकावटों के बारे में पूछते। भीषण नरसंहार के दौरान 'अकेला चलो रे' में विश्वासी नोआखली के गांव-गांव में शांति और भाईचारे का प्रसार कर रहे थे। उस हालत में भी 'ग्रामोदय' का भाव सदैव जाग्रत रहता था। सतीशचन्द्र दास गुरु के सोदपुर (कलकत्ता) आश्रम में केले के हरे पत्तों की राख से साबुन बनाने का जो फार्मूला बापू ने सीखा था, उसे उन्हें नोआखली के गांव वालों को बताया जिससे वह फेंक देने वाले केले के कचरे से साबुन बनाने लगे। तकली की कताई का यज्ञ आधा घंटा चलता और तब वे ग्राम सभा को सम्बोधित करते। सामान्य स्वास्थ्य रक्षा के नियम, उपलब्ध साधनों से घरेलू उद्योग यंत्रों का निर्माण, स्वावलंबन और सहकारिता की योजनाओं को ऐसे क्रियात्मक रूप से समझाते थे कि अशिक्षित ग्रामवासियों में भी नवजागृति आते देर नहीं लगती थी। 'ग्राम उद्योग संघ' भारतवर्ष के प्रत्येक गांव को स्वावलंबी बनाने की दिशा में उठाया गया मजबूत और अचूक कदम था।

तालीमी शिक्षा और ग्राम

बापू की दृष्टि में उद्योग तंत्र और शिक्षा दो अलग-अलग और अनमिल प्रणाली नहीं थीं। 'तालीमी शिक्षा' में दोनों अन्तर्निहित हैं। यह 'बुनियादी शिक्षा' न तो मैकाले की पद्धति से पढ़े-लिखे बेरोजगार गढ़ने का कारखाना है और न ऐसे तोतारटन्त सैद्धान्तिकों को जन्म देने वाली शिक्षण-फैक्टरी ही है जो विद्यार्थियों को जमीन से काट कर कहीं का भी नहीं रहने देती। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन थे और आर्यनायकम् और आशा देवी सहयोगी थे। अपने अंतिम दिनों में इस संघ की प्रगति के विषय में बापू चिंतित थे। सत्य और अहिंसा में सम्पूर्ण आस्था न रखने वाले यदि शिक्षक बना दिए गए तो इस संघ का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। दस्तकारी के द्वारा शिक्षा देने वाला तभी गुणकारी चरित्र निर्णायक शिक्षा दे पाएगा जब वह 'सत्य' और 'अहिंसा' में निष्ठा रखने वाला होगा। 14 दिसंबर, 1947 की प्रार्थना-सभा में बापू ने बताया- ''नई तालीम को शुरू हुए आठ साल हुए हैं। इस संस्था का उद्देश्य राष्ट्र को नए आधार पर शिक्षा देना है।'' उन्होंने विद्या की प्राचीन परिभाषा देते हुए कहा कि 'सा विद्या या विमुक्तये।' नई तालीम की गहरी जड़ सत्य, अहिंसा से जुड़ी है। ''यह सच्ची शिक्षा हर एक को सुलभ होनी चाहिए। वह चंद लाख शहरियों के लिए ही

नहीं मगर करोड़ों देहातियों के लिए उपयोगी होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा कोरी पोथियों से थोड़े मिल सकती है।... वह तो धर्म के उन विश्वव्यापी सिद्धांतों की शिक्षा देती है जिनमें से सब सम्प्रदायों के धर्म निकले हैं। यह शिक्षा तो जीवन की किताबों से मिलती है।" 'नई तालीम' पर यदि अमल किया जाता तो कोई कारण नहीं है कि भारत का हर व्यक्ति आज साक्षर होता। बापू ने राष्ट्रोत्थान का केन्द्र 'गांव' को बनाया और देश की शैक्षणिक-सांस्कृतिक प्रगति को 'नई तालीम' से जोड़ा। आजादी के प्रारम्भिक वर्षों में कुछ गांधीवादी इस रचनात्मक कार्यक्रम से जुड़े और खुद गांवों में जाकर ठोस काम भी किया पर धीरे धीरे सरकारी-तंत्र पर निर्भरता बढ़ती गई निष्ठावान शिक्षकों की जगह भरने वाले न रहे।

बापू के ग्रामोदय में ग्रामसेवक केन्द्र था। बापू गांवों का शहरीकरण करने के स्थान पर उन्हें स्वावलंबी, शिक्षित, स्वस्थ, कला-कौशल प्रवीण और सबसे बढ़ कर विकेन्द्रित सत्ता की सबल नींव बनाना चाहते थे। गांव के हस्तशिल्प को शहर की उपभोक्ता सामग्री बनने से बचाना चाहते थे। न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। पर नौकरशाही, के हस्तक्षेप के कारण पंचायती राज अभी भी सपना ही है। बिचौलिए आज भी ग्रामोत्थान की राशि का अंश बीच में ही हड़प लेते हैं। यह स्थिति इसलिए बनी हुई है कि हम ग्राम विकास को टुकड़ों में बांट कर देखते हैं– समग्रता में नहीं। बापू के जन्म के 125वें वर्ष को चित्र प्रदर्शनी, राष्ट्रीय-संगोष्ठी से नहीं मनाया जा सकता। उन्हें 'मूर्ति' बना कर अपने से दूर नहीं करना है अपितु उन्होंने अपने अन्तिम 'वसीयतनामे' में ग्राम विकास का जो रचनात्मक कार्यक्रम दिया है, उसे सर्वांश में लागू करके ही हम वास्तविक 'पंचायती राज्य' ला सकते हैं।

3/39 रूप नगर,
दिल्ली-7

हमें ग्रामीणोन्मुखी होना पड़ेगा। अपनी जरूरतों और अपने परिवार की जरूरतों को हमें गांवों के नजरिए से देखना पड़ेगा। इस कार्य में ज्यादा व्यय भी नहीं होगा। स्वयंसेवियों को पास के गांवों में जाकर यह विश्वास दिलाना पड़ेगा कि उनके द्वारा बनाए गए माल को नगरों और शहरों में तैयार बाजार खड़ा मिलेगा।

–महात्मा गांधी

ग्रामीण विकास का गांधी जी का सपना

✍ डा. संध्या चौधरी

गांवों के विकास से ही देश का विकास होगा, गांधी जी की इस मान्यता का जिक्र करते हुए लेखिका ने इस लेख में बताया है कि गांधी जी किस तरह से गांवों का विकास करना चाहते थे। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए किये गए प्रयासों और कार्यक्रमों का उल्लेख करते हुए लेखिका ने गांवों की वर्तमान दशा का वर्णन किया है और कहा है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधी जी का सपना अभी साकार नहीं हुआ। लेख के अंत में लेखिका ने सुझाव दिया है कि गांवों के विकास कार्यों के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए और ग्रामीणों की भागीदारी प्राप्त की जानी चाहिए।

भारत कृषि प्रधान देश है और इसकी 70 प्रतिशत से ज्यादा आबादी अब भी गांवों में रहती है। देश के विकास का प्रश्न ग्रामीण विकास से अभिन्न रूप से जुड़ा है। गांवों के महत्व को देखते हुए गांधी जी ने ग्रामीण-पुनर्निर्माण और विकास पर विशेष जोर दिया। उनका पक्का विश्वास था कि अगर गांव नष्ट होंगे तो देश भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए वह कहते थे कि हमें 'गांवों के भारत' और 'शहरों के भारत' में से एक को चुनना है। दुर्भाग्यवश, आज शहरों का गांवों पर दबदबा है और ग्रामीण संसाधनों को शहरों ने चूस लिया है। अहिंसा और न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था कायम करने के लिए हमें गांवों को उनका उचित स्थान दिलाना ही होगा।

ग्राम स्वराज सच्चे लोकतंत्र का आधार है। इसके महत्व को समझते हुए गांधी जी ने गांवों के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया। गांवों के विकास और उत्थान के लिए उन्होंने विस्तृत कार्यक्रम दिया। उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि मानव-जाति का हित ही सबसे बड़ा उद्देश्य है। इसीलिए उन्होंने कहा कि हमारा अंतिम लक्ष्य मानव-मात्र की खुशी के साथ-साथ उसका पूर्ण मानसिक तथा नैतिक विकास होना चाहिए। इसमें मानव-जीवन के सभी पक्षों (सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक) का नये सिरे से विकास शामिल है और इसका लक्ष्य आत्म-निर्भर और स्वशासी गांवों का विकास है जहां लोग शुद्ध और सादा जीवन जिएं तथा जहां जीवन-यापन के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं सभी को हवा-पानी की तरह सहज सुलभ हों। गांधी जी के सपनों के स्वराज के चार पक्ष हैं—राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक तथा नैतिक। गांधी जी के राजनैतिक स्वराज की कल्पना ऐसी सरकार बनाने की थी जो ऐसे सामान्य जनों की सहमति से बने जिन्होंने कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करके राष्ट्र सेवा की हो और मतदाता के रूप में स्वयं को पंजीकृत किया हो, चाहे वे पुरुष हों या महिला, जन्म से ही इस देश के नागरिक हों या यहां निवास करते हों, गांधी जी ने कहा है, "सच्चा स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता ग्रहण करने से नहीं आएगा। वह तो सत्ता के दुरुपयोग के प्रतिरोध की शक्ति जन-जन में जाग्रत हो जाने से ही आएगा।" दूसरे शब्दों में, सत्ता को नियमित और नियंत्रित करने की चेतना लोगों तक पहुंचाकर ही सच्चा स्वराज आ सकता है।

गांधी जी की स्वराज की कल्पना सत्ता के न्यूनतम नियंत्रण वाले राज्य विहीन समाज की कल्पना है। ऐसे स्वराज में नियंत्रणों की आवश्यकता इसलिए नहीं रहेगी क्योंकि लोग अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति पूरी तरह सजग होंगे और गांवों के प्रशासन के मामलों में सही निर्णय ले पाने में समर्थ होंगे।

गांधी जी के सपनों के गांवों में जाति-पाति का भेदभाव और अस्पृश्यता पूरी तरह मिट चुकी होगी। यहां हर पुरुष और महिला अपनी आवश्यकताओं का सही आकलन कर सकेगा और कोई भी अपने श्रम के जायज परिणाम से ज्यादा की मांग नहीं करेगा।

आत्म-निर्भरता ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की बुनियाद है। गांधी जी के सपनों में गांवों में, जीने के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं का उत्पादन होगा। वह तो यह भी चाहते थे गांवों के लोग अपने-अपने गांव में मिलने वाली वस्तुओं के ही इस्तेमाल की आदत डाल लें। इसलिए वह ग्रामोद्योगों, लघु कुटीर उद्योगों तथा हस्तशिल्प का विकास चाहते थे ताकि लोग आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर हो सकें और उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए शहरों की ओर न देखना पड़े। उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में गांवों में स्वास्थ्य और सफाई पर विशेष बल दिया। ग्रामीण

* प्रमुख, गांधी अध्ययन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय

स्वच्छता के लिए उन्होंने सरल, किफायती और कारगर तरीकों का सुझाव दिया। इन तरीकों से गांवों में सफाई बनी रह सकती है और मल, गंदगी आदि का खाद के रूप में उपयोग भी किया जा सकता है।

मात्र भौतिक विकास पर आधारित सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था कायम करना उनका लक्ष्य नहीं था। वह तो 'सादा जीवन, उच्च विचार' के सिद्धांत में आस्था रखते थे। वह चाहते थे कि भारत के लोगों का मात्र भौतिक जीवन-स्तर ही न सुधरे, उनका समूचा जीवन ही उच्च आदर्शों से ओत-प्रोत हो।

दुर्भाग्य से, आधुनिक अर्थशास्त्री ज्यादा से ज्यादा मशीनीकरण और औद्योगीकरण को अधिकतम विकास का मूल-मंत्र समझ बैठे हैं। इस औद्योगीकरण का अधिकतम लाभ शहरी लोग उठा रहे हैं जबकि गांवों के गरीब लोग अब भी गरीबी की रेखा के नीचे तकलीफों में गुजर-बसर कर रहे हैं।

हमारे गांवों के लिए उनकी स्थितियों के अनुरूप विशेष टेक्नोलाजी चाहिए। पूंजी-केन्द्रित, श्रमिकों की संख्या में कटौती करने वाली अत्याधुनिक पाश्चात्य टेक्नोलाजी हमारे गांवों के लिए उपयुक्त नहीं है। हमारे गांवों के लिए किफायती, ज्यादा श्रमिकों को खपाने वाली और रोजगार जुटाने वाली टेक्नोलाजी चाहिए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, सरकार ने गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक कदम उठाए। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए ताकि गांवों को समानता और सामाजिक न्याय के लाभ मिल सकें, उत्पादन बढ़ें और सुख-समृद्धि आए।

गांधी जी के राजनैतिक स्वराज की कल्पना ऐसी सरकार बनाने की थी जो ऐसे सामान्य जनों की सहमति से बने जिन्होंने कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करके राष्ट्र-सेवा की हो और मतदाता के रूप में स्वयं को पंजीकृत किया हो, चाहे वे पुरुष हों या महिला, जन्म से इस देश के नागरिक हों या यहां निवास करते हों।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाया गया। इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों की विशाल जनसंख्या को राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रियाओं शामिल करना था ताकि लोगों और सरकार के एकजुट प्रयासों से गांवों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में सुधार हो और उन्हें राष्ट्र की प्रगति में पूरी भागीदारी का मौका मिल सके। पंडित जवाहरलाल नेहरू का मानना था कि सामुदायिक विकास के जरिए नये भारत का निर्माण हो सकता है। उन्होंने इस कार्यक्रम को मील का पत्थर बताया। यह ग्राम कल्याण तथा 'नये भविष्य' की ओर भारत की यात्रा का शुभारम्भ था।

इस कार्यक्रम के तहत प्रारंभ में देश भर में 55 परियोजनाएं शुरू की गईं। हर परियोजना के अंतर्गत 300 गांव शामिल किए गए। 1964 तक पूरा देश इस कार्यक्रम के दायरे में आ चुका था। 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखंड कार्यक्रम चलाया गया, इसके अंतर्गत सफाई, कुटीर उद्योग, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क-निर्माण जैसी ग्राम-विकास की अनेक गतिविधियां शामिल की गई। इस योजना के अंतर्गत गांवों में सड़कें, स्कूल, पंचायत घर और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बनाने जैसे उपयोगी कार्य हुए पर इसमें कुछ कमियां भी रह गई। यह ऊपर से थोपी हुई योजना बन गई और इससे अनुसूचित जातियों, जनजातियों और गांवों के कमजोर वर्गों के लोगों की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। यह योजना अंत्योदय की भावना के अनुरूप नहीं थी। इसके लाभ गांवों के अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति वाले लोगों को मिले।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में गहन कृषि विकास कार्यक्रम चलाया गया। इसका उद्देश्य कृषि उत्पादन बढ़ाना था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम से यह उद्देश्य पूरा नहीं किया जा सका था।

1969 में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सुधार समिति ने सुझाव दिया कि छोटे किसानों की मदद के लिए तुरंत अग्रगामी परियोजनाएं (पाइलट प्रोजेक्ट्स) चलाना आवश्यक है। गांवों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए चौथी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण रोजगार के लिए त्वरित योजना (क्रैश प्लान) बनाई गई। आर्थिक वृद्धि दर तेज करने, गहन खेती और कृषि उत्पादों में विविधता लाने तथा ग्रामोद्योगों के विकास के लिए अनेक कार्य-नीतियां अपनाई गई—ताकि गांवों में मूलभूत सुविधाओं का विकास हो सके।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के जरिये गरीबी की रेखा के नीचे गुजर-बसर कर रहे लोगों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने के प्रयास किए गए। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा, गांवों में पेयजल पहुंचाने, पक्के रास्ते बनाने और भूमिहीन श्रमिकों के लिए घर बनाने की योजनाएं भी रखी गई ताकि गांवों के 30 से 40 प्रतिशत तक बेहद गरीब लोगों की स्थिति सुधारी जा सके। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनीसेफ) के सहयोग से 1960 के दशक में व्यावहारिक पोषण योजनाएं भी चलाई गईं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाए जाने के बाद कमजोर

वर्गों, खासतौर से महिलाओं और बच्चों के लिए, सामाजिक कल्याण कार्यक्रम चलाए गए। कुछ सामाजिक कल्याण बोर्डों ने गांवों में महिलाओं को घरेलू शिल्पों, मातृत्व-संबंधी जानकारी, स्वास्थ्य-शिक्षा, पोषण और बच्चों की देखभाल के बारे में बुनियादी प्रशिक्षण देने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में बाल कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई। बच्चों की देखभाल की विभिन्न सेवाओं की एक समन्वित योजना चलाई गई जिसमें पोषण, रोग-प्रतिरक्षण, स्वास्थ्य की जांच और पोषण संबंधी शिक्षा शामिल थीं। महिलाओं को व्यावहारिक बातों की जानकारी के साथ-साथ साक्षर बनाने का कार्यक्रम भी शुरू किया गया ताकि उन्हें बच्चों की देख-भाल, पोषण, स्वास्थ्य की देख-भाल और घर का हिसाब-किताब ठीक रखने की जानकारी मिल सके। महिला मंडल इस दिशा में उपयोगी कार्य कर रहे हैं लेकिन ये कार्यक्रम ग्रामीण लोगों के जीवन-स्तर में अपेक्षित सुधार लाने में विफल रहे।

ग्रामीण जनसंख्या के विशिष्ट समूहों का आर्थिक स्तर सुधारने के उद्देश्य से 1976-77 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में विचार किया गया।

1978-79 में यह कार्यक्रम 2300 विकास-खंडों में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य छोटे तथा बहुत छोटे किसानों, भूमिहीन श्रमिकों, खेतिहर मजदूरों और गांवों के कारीगरों को लाभ पहुंचाना था। इसमें लाभ पाने वाले परिवारों की पहचान की गई और समाज के कमज़ोर वर्गों को लाभ पहुंचाने के प्रयास किए गए। इस कार्यक्रम का उद्देश्य कमजोर वर्गों में आत्म-निर्भरता बढ़ाना, पर्याप्त उत्पादन और इन वर्गों को अपनी मदद खुद करने लायक बनाना है।

छह वर्ष तक के बच्चे, गर्भवती स्त्रियों और स्तनपान कराने वाली माताओं की देखभाल के लिये समन्वित बाल विकास सेवा

1978-79 में यह कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम 2300 विकास खंडों में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य छोटे तथा बहुत छोटे किसानों, भूमिहीन श्रमिकों, खेतिहर मजदूरों और गांवों के कारीगरों को लाभ पहुंचाना था। इसमें लाभ पाने वाले परिवारों की पहचान की गई और समाज के कमजोर वर्गों को लाभ पहुंचाने के प्रयास किए गए।

नाम की महत्वाकांक्षी योजना शुरू की गई। इस समय इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देशभर में 3066 परियोजनाएं चलायी जा रही हैं जिनका लाभ 1 करोड़ 63 लाख बच्चों और 32 लाख माताओं को मिल रहा है। 1993 में घोषित राष्ट्रीय पोषण नीति में बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम और बहुत छोटे बच्चों के शिक्षण को प्राथमिकता दी गयी है।

समन्वित ग्रामीण विकास योजना का लाभ पाने वालों में 40 प्रतिशत और जवाहर रोजगार योजना में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए रखे गये हैं ताकि उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर की जा सके। महिलाओं को वित्तीय सहायता देने के लिए राष्ट्रीय महिला कोष और महिला समृद्धि योजना चलाई गई है।

अनुसूचित जातियों और जनजातियों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं। इनमें इन्दिरा आवास योजना तथा जवाहर रोजगार योजना के तहत बड़ी संख्या में कुएं खोदने के कार्यक्रम शामिल हैं। समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत जिन परिवारों को मदद की जानी है उनमें 50 प्रतिशत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के होने चाहिए। जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत जुटाये जाने वाले रोजगार के अवसरों में 30 प्रतिशत इन जातियों के लिए आरक्षित किये गये हैं; पिछले दिनों केन्द्र सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में पिछड़ी जातियों के लिये 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

इन प्रयासों के बावजूद, हमें अब भी इस प्रश्न का उत्तर देना है कि क्या हम गांधी जी के रास्ते पर चल रहे हैं या उससे भटक रहे हैं। क्या विभिन्न उत्थान कार्यक्रमों का लाभ गांवों के गरीब और पिछड़े लोगों को वाकई मिला है या इन लाभों को सत्ता से जुड़े चंद लोगों ने हड़प लिया है? ये कार्यक्रम अच्छी तरह विचार-विमर्श के बाद चलाए गए और इसका स्वरूप भी अच्छा था लेकिन समाज के सबसे कमजोर वर्गों, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और गरीब लोगों को इनका उचित लाभ नहीं मिल सका। इस तरह ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधी जी का सपना अब भी अधूरा है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधी जी का स्वप्न सामाजिक ही नहीं, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी अभी साकार होना है। गांवों के उत्थान की गांधी जी की जो कल्पना थी, राज्य के नियंत्रण और प्रशासन के केन्द्रीकरण से इस कल्पना के साकार होने में बाधा पड़ी है।

पंचायतों को प्रशासनिक तथा वित्तीय क्षेत्रों में पर्याप्त स्वतंत्रता नहीं मिली है। गांधी जी का लोकतंत्र का सपना प्रशासन तंत्र के शिखर पर बैठे चंद लोगों द्वारा साकार नहीं हो सकता। इसे तो गांवों के आम लोगों के सहयोग से ही साकार किया जा सकता है। गांव को विकास की बुनियादी इकाई बनाया जाना चाहिए और इसका प्रशासन ग्राम पंचायत को चलाना चाहिए। यह पंचायत गांव के वयस्क लोगों द्वारा हर वर्ष निर्वाचित की जानी

चाहिए। इसलिये गांधी जी राजनैतिक तथा आर्थिक-दोनों क्षेत्रों में प्रशासन के विकेंद्रीकरण पर बल देते थे। जब तक गांवों की अर्थ व्यवस्था आत्म-निर्भर और विकेंद्रीकृत नहीं हो जाती, आर्थिक-विकास मात्र खोखला नारा रह जाएगा।

सहकारी संस्थाएं ग्रामीण विकास के लिए बुनियादी तौर पर आवश्यक संस्थाएं हैं। ऐसी संस्थाएं या तो हैं ही नहीं, या ठीक से काम नहीं कर रही हैं। इन संस्थाओं में कुशलता, समानता और लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम करने की क्षमता है और इनके सही तरीके से चलने से केन्द्रीय नियंत्रण और कम किया जा सकता है।

क्या इन सारे प्रयासों के बावजूद गांवों के गरीब और पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों सहित) को विभिन्न कार्यक्रमों का लाभ मिला है अथवा सत्ता से जुड़े चंद लोग ही इन

गांव के लोग अपना प्रशासन खुद संभाल सकें इसके लिए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण अनिवार्य है। ऐसे विकेंद्रीकरण के जरिये जिम्मेदार स्थानीय नेता तैयार किये जा सकते हैं जो गांव के विकास के लिए कार्य कर सकें और विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी शामिल कर सकें। ये नेता लोगों में नई पहल करने और आत्मनिर्भरता की भावना जगा सकते हैं।

फायदों को हड़प गए हैं? दुर्भाग्य से, दूसरी बात ही सच साबित हुई है। ये सभी सुनियोजित कार्यक्रम थे लेकिन कार्यान्वयन के दौरान अनुसूचित जातियों, जन-जातियों और समाज के सबसे कमजोर वर्गों को इनका अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका। इस तरह ग्राम स्वराज अथवा ग्रामीण पुनर्निर्माण का गांधी जी का सपना साकार नहीं हो सका। गांवों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने का गांधी जी का विचार अब भी कल्पना-मात्र ही है। आज गांव अपनी तमाम आवश्यकताओं के लिए राज्य की उच्च प्रशासनिक इकाइयों पर निर्भर है।

गांधी जी के आदर्श गांव का चित्र कल्पना-मात्र ही रह गया। महात्मा जी ने कल्पना की थी, "पुरुष और महिलाएं मुक्त जीवन बिताएंगे। किसी को भी हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने या ऐशो-आराम में जीवन बिताने की इजाजत नहीं होगी।" गांधी जी चाहते थे कि गांवों के लोगों को बुनियादी जरूरतों की चीजें मिलें। उनका कहना था कि, "अगर मैं गांवों के लोगों को अनिवार्य वस्तुएं मिलना सुनिश्चित कर सकूंगा, अन्य वस्तुएं कुछ समय में अपने आप मिलने लगेंगी। लेकिन अगर मैं अनिवार्य वस्तुएं मिलने की बात भी छोड़ दूं, मुझे सभी बातें छोड़नी होंगी।"

वास्तव में, गांधी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में ग्रामीण विकास का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया था जिसमें 18 बातें शामिल थीं। इन बातों में साम्प्रदायिक एकता, छुआछूत दूर करना और समाज का ताना-बाना बनाए रखने के लिए मद्य निषेध शामिल था, समाज के आर्थिक पुनर्निर्माण में खादी, ग्रामोद्योग और आर्थिक समानता शामिल है। राजनीतिक पक्ष में विद्यार्थी, किसान और श्रमिक सम्मिलित हैं। शैक्षिक और पर्यावरण सम्बन्धी पक्षों पर भी उचित ध्यान दिया गया है। गांधी जी की विचारधारा के मूल स्तम्भ सत्य और अहिंसा रहे हैं जिन्हें गांवों में शोषण रहित समाज बनाकर वहां तक पहुंचाना है। रचनात्मक कार्यक्रम का अन्तिम लक्ष्य ग्राम स्वराज की प्राप्ति है। वास्तव में ग्रामीण विकास की गांधी जी की धारणा राष्ट्रीय विकास से अभिन्न रूप से जुड़ी है।

गांव के लोग अपना प्रशासन खुद संभाल सकें, इसके लिए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण अनिवार्य है ऐसे विकेंद्रीकरण के जरिये जिम्मेदार स्थानीय नेता तैयार किए जा सकते हैं जो गांव के विकास के लिए कार्य कर सकें और विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी हासिल कर सकें। ये नेता लोगों में नई पहल करने और आत्म-निर्भरता की भावना जगा सकते हैं।

शिक्षा से भी जागरूकता पैदा की जा सकती है। गांवों में और अधिक स्कूल खोले जाने चाहिए, जिनमें प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था हो। शिक्षा का उद्देश्य मात्र साक्षरता नहीं होना चाहिए बल्कि लोगों को जीवन भर के लिए ऐसी शिक्षा देना होना चाहिए जिससे वे अपने अधिकारों, कर्तव्यों और सामाजिक स्थितियों के प्रति सजग हो सकें। इस क्षेत्र में, कुछ अपवादों को छोड़कर अच्छा काम हुआ है। सबको शिक्षा पहुंचाने के लक्ष्य के प्रति सरकार सजग लगती है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास के गांधी जी के दृष्टिकोण को इन वर्षों में काफी तोड़-मरोड़ा जा चुका है। गांधी जी का उद्देश्य दरिद्रनारायण की निस्वार्थ सेवा था लेकिन ग्राम विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में सत्ताधारियों का गुणगान मात्र होता है। कार्यक्रम ग्रामीणजनों के उत्थान के लिए नहीं, राजनैतिक लाभ के लिए चलाए जाते हैं। औपचारिक शिक्षा से वंचित गांवों के अनपढ़ या मामूली पढ़े-लिखे लोग भी अब चालाक हो गए हैं। ऐसा लगता है कि सारा धंधा उनकी समझ में आ गया है और गांवों के लोगों को लुभाने वाली नीतियों के बीच गांधी जी की कल्पना दूषित हो गई है। इसी वजह से, सारे तमाशे और प्रचार के बावजूद हम गांधीजी के सपनों को साकार कर पाने में विफल रहे हैं।

रास्ते से हटे नहीं, भटके हैं

✍ सुभाष 'सत्य'

लेखक ने लेख में गांधी जी की आज के समय में प्रासंगिकता सिद्ध करते हुए बताया है कि यदि हमने गांधी की राय मानकर छोटे और कुटीर उद्योगों की ओर और ज्यादा ध्यान दिया होता तो आज बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, शोषण, उपभोक्तावाद और पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएं न होती। लेखक ने यह भी बताया है कि कुटीर उद्योगों को अपनाने के गांधी जी के रास्ते पर हम क्यों नहीं चल सके।

हर राष्ट्र का एक महापुरुष ऐसा होता है जिनके नाम से समूचे देश की पहचान हो जाती है। हमारे देश में महात्मा गांधी ऐसे ही व्यक्ति हैं। वे भारत की मनीषा, संस्कृति, चिंतन एवं आचरण का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। शायद इसलिए यह कहा जाता है कि महात्मा गांधी जैसा मनुष्य भारत में ही जन्म ले सकता है क्योंकि अनेक प्रकार की विविधताओं, विषमताओं तथा दोषों के बावजूद उच्च आदर्शों को जीवन में उतारने का जिस तरह का परिवेश एवं अवसर यहां मौजूद हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। किंतु इसे विडम्बना ही कहेंगे कि गांधी जी जितना हमारे देश की अस्मिता का प्रतिनिधित्व करते हैं हम भारतवासियों ने उनके आदर्शों को अपनाने का उतना प्रयत्न नहीं किया है। यही कारण है कि गांधी जी के जीवन एवं चिंतन की थोड़ी सी जानकारी और समझ रखने वाला व्यक्ति इस प्रश्न से दो-चार हो रहा है कि क्या देश ने गांधी जी का रास्ता छोड़ तो नहीं दिया है? असल में यही प्रश्न हमारे देश के लिए गांधी जी के जीवन एवं चिंतन की अटूट प्रासंगिकता का प्रमाण भी है। जब भी हमें कोई राह अपनानी होती है तो इस राष्ट्र के बुद्धिजीवी उस रास्ते को गांधीवाद की तुला पर तोल कर परखने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते। गांधीवादी चिंतन हमारे लिए प्रकाश स्तंभ है जिसकी किरणों एवं प्रकाश की सहायता से हम अपनी दिशा तय करना चाहते हैं। यह बात दीगर है कि विश्लेषण एवं अन्वेषण के इस प्रयास के बावजूद हम जो रास्ता चुनते हैं वह गांधीवाद के निकट होता है या नहीं किंतु इतना सच है कि हमारा धर्मकांटा आज भी गांधीवादी चिंतन है।

विकास और गांधीवाद

यह मानने में तो कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि गांधी जी ने आचरण की जो शुद्धता, उच्चता एवं विराटता प्राप्त की थी वहां तक पहुंच पाना आज हमारे लिए लगभग असंभव है। किंतु अच्छे आचरण के लिए उन्होंने जो प्रतिमान कायम किए या जीवन को सुखी बनाने के उपायों के संबंध में जो दृष्टि उन्होंने अपनाई उसे हमने अभी तक नहीं छोड़ा है। यह स्थिति इस बात की परिचायक है कि हमें गांधीवादी चिंतन से बहुत आशाएं है। परंतु यह भी सत्य है कि गांधी जी के रास्ते को प्रेम व श्रेय मानते हुए भी स्वतंत्रता के पश्चात विकास का जो माडल हमने चुना है वो गांधी जी द्वारा सुझाए गए माडल से कुछ भिन्न था और धीरे-धीरे हम गांधीवादी माडल से और दूर होते गए। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि विकास की जो अवधारणा और परिभाषा गांधी जी ने विकसित की थी, हम उसे कायम नहीं रख पाए हैं।

अब भी हमें कोई राह अपनानी होती है तो इस राष्ट्र के बुद्धिजीवी उस रास्ते को गांधीवाद की तुला पर तोल कर परखने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते। गांधीवादी चिंतन हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ है जिसकी किरणों एवं प्रकाश की सहायता से हम अपनी दिशा तय करना चाहते हैं।

उदाहरण के लिए गांधी जी जहां अपरिग्रह तथा विकेन्द्रीकरण पर जोर देते थे—वहां स्वतंत्रता के पश्चात विकास का मूल स्वर संचय और केंद्रीकरण रहा है। किंतु पंचायती राज, गरीबी उन्मूलन, विषमता दूर करना, ग्रामीण विकास आदि कुछ पहलू ऐसे हैं जिन पर गांधी जी ने अपने आचरण एवं कथनों में बल दिया और वे सभी हमारे राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक जीवन में सदैव मौजूद रहे हैं। गांधी जी की प्रासंगिकता का एक उदाहरण यह भी है कि लगभग सभी राजनीतिक दलों के तत्व चिंतन में गांधीवाद को स्थान मिल चुका है। अर्थशास्त्री किसी न किसी रूप में गांधीवादी आदर्शों व सिद्धांतों का मंथन करते हुए नई विचारधाराओं और नए आर्थिक सिद्धांतों को गांधीवादी पैमाने पर आंकते रहते हैं। यहां तक साहित्य, कला एवं संस्कृति कर्मी भी गांधी जी के जीवन एवं चिंतन को आधार बनाकर अपनी

गतिविधियां चलाते हैं। इसका कारण यही है कि गांधी जी महज चिंतक या दार्शनिक नहीं थे बल्कि कर्मयोगी थे जो सोचते और कहते थे वही करते थे।

इन तथ्यों के प्रकाश में यही कहा जा सकता है कि गांधी जी का रास्ता हमने छोड़ा तो नहीं है किंतु उस मार्ग से कुछ भटक अवश्य गए हैं। यह भटकाव किन संदर्भों में और कितना है यह विश्लेपण विकास के उन पहलुओं के आधार पर करेंगे जिन्हें गांधीवादी चिंतन का अभिन्न अंग माना जाता है।

आचरण के प्रतिमान

विकास विशेषकर ग्रामीण विकास के मुख्य मुद्दों पर विचार करने से पहले संक्षेप में गांधी जी के जीवन के कुछ ऐसे पक्षों पर नजर डाल लेना आवश्यक है जिनके आधार पर गांधी जी की छवि अनुकरणीय बनी है। गांधी जी "सादा जीवन उच्च विचार" की उक्ति को शत प्रतिशत चरितार्थ करते थे। किंतु हमारा सामाजिक जीवन, विशेषकर शहरी जीवन इस मूल्य के एकदम विपरीत दिखाई दे रहा है। अब विचारों की उच्चता गौण हो गई है और वैभव प्रदर्शन ही महानता का लक्षण बनता जा रहा है।

गांधी जी की प्रासंगिकता का एक मोटा उदाहरण यह भी है कि लगभग सभी राजनीतिक दलों के तत्व चिंतन में गांधीवाद को स्थान मिल चुका है। अर्थशास्त्री किसी न किसी रूप में गांधीवादी आदर्शों व सिद्धांतों का मंथन करते हुए नई विचारधाराओं और नए आर्थिक सिद्धांतों को गांधीवादी पैमाने पर आंकते रहते हैं। यहां तक कि साहित्य, कला एवं संस्कृति कर्मी भी गांधी जी के जीवन एवं चिंतन को आधार बनाकर अपनी गतिविधियां चलाते हैं।

जिस धर्म निरपेक्षता के लिए गांधी जी अपने प्राणों को दांव पर लगाने में नहीं हिचकिचाए वह अब राजनीति का हथियार बनती दिखाई दे रही है। अपनी भाषा एवं संस्कृति का गौरव नदारद है। सत्य और अहिंसा गांधी जी के सर्वाधिक प्रिय सिद्धांत थे किंतु हमारे सामाजिक जीवन में अब इन मूल्यों को केवल मौखिक समर्थन प्राप्त है, व्यवहार तथा आचरण से ये तेजी से गायब होते जा रहे हैं। धर्म गांधी जी के लिए सर्वोच्च जीवन मूल्य था किंतु अब वह केवल कर्मकांड और दिखावे की वस्तु बनता जा रहा है। और तो और आदर्श शासन के लिए 'रामराज्य' की उनकी कल्पना भी तुच्छ राजनीति का शिकार बन गई है। इस प्रकार इन मूल्यों के आधार पर मूल्यांकन करें तो निराशा ही हमारे हाथ लगती है।

अब हम विकास संबंधी मुद्दों को आधार बनाकर यह जानने का प्रयास करेंगे कि गांधी जी के रास्ते से हम क्यों और कितना भटके हैं।

लोकतंत्र और पंचायती राज

पिछले लगभग चार दशक में भारत में लोकतंत्र की जड़ें निरंतर मजबूत हुई हैं और आंतरिक एवं बाह्य अवरोधों के बावजूद 1950 में लगा लोकतंत्र का पौधा आज पेड़ का रूप ले चुका है। वास्तव में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने लोकतंत्र की अवधारणा को आत्मसात कर लिया था जिससे स्वतंत्रता-प्राप्ति पर शासन तंत्र चुनने में देश को कोई दुविधा नहीं हुई। गांधी जी ने कहा था -"असली स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त करने से नहीं आएगा बल्कि यह सभी के द्वारा इसकी क्षमता हासिल करने से ही आ पाएगा।" लोकतंत्र ही वास्तव में वह व्यवस्था है जो आम आदमी को शासन का भागीदार बनने का अवसर प्रदान करती है। गांधी जी की दृष्टि में लोकतंत्र का अर्थ था गांव में रहने वाले निर्धनतम व्यक्ति को भी शासन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार देना। 18 जनवरी 1948 को 'हरिजन' में गांधी जी ने लिखा था – "सच्चे लोकतंत्र का परिपालन केन्द्र में बैठे 20 व्यक्तियों द्वारा नहीं कराया जा सकता। इसका कार्यान्वयन प्रत्येक गांव के निवासियों द्वारा ही होना चाहिए। मेरे विचार में जन समर्थन प्राप्त पंचायत को कोई भी कानून कार्य करने से नहीं रोक सकता। गांवों का प्रत्येक समूह अथवा उस समूह के सदस्य अपनी पंचायत बना सकते हैं चाहे भारत के अन्य भागों में पंचायतें हों या नहीं। सच्चा अधिकार कर्तव्य से ही मिलता है। ऐसे अधिकारों से कोई भी वंचित नहीं कर सकता। पंचायत लोगों की सेवा करने के लिए है। भारत के सच्चे लोकतंत्र की इकाई गांव ही है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि सच्चा विकास तभी हो सकता है जब उसमें खुद लोगों की भागीदारी हो और विकास योजनाएं उन पर ऊपर से न थोपी जाएं। यद्यपि आज हम यह तो नहीं कह सकते कि निचले स्तर पर लोकतंत्र पहुंच गया है और विकास प्रक्रिया में लोगों की शिरकत पूरी तरह होने लगी है किंतु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस दिशा में प्रारंभ से ही प्रयास किए जाते रहे हैं। प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से लेकर वर्तमान प्रधान मंत्री श्री पी. वी. नरसिम्ह राव तक सभी नेताओं की पंचायती राज में अटूट निष्ठा रही है। राजीव गांधी ने तो पंचायतों को अधिकार-सम्पन्न बनाने के लिए संविधान में

संशोधन का भी प्रयास किया। संसद में 25 मई 1989 को संविधान विधेयक प्रस्तुत करते हुए राजीव गांधी ने इस विधेयक को संविधान के निर्माण के समान ऐतिहासिक और क्रांतिकारी बताया और कहा...''यह विधेयक भी उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके जरिए सबसे निचले स्तर पर लोकतंत्र के विकेंद्रीकरण की व्यवस्था को संविधान में स्थान दिया गया है।'' उस समय कुछ कारणों से यह विधेयक संसद की स्वीकृति नहीं पा सका था किंतु नरसिम्ह राव सरकार ने इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए दिसम्बर 1992 में 73वां संविधान संशोधन विधेयक पारित करके पंचायती राज के संबंध में गांधी जी के चिंतन को साकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया। यह नई व्यवस्था समूचे देश में लागू हो गई है और मध्यप्रदेश तथा त्रिपुरा में नई पंचायत प्रणाली के अंतर्गत चुनाव भी संपन्न हो चुके हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज की दिशा में किए गए इस ऐतिहासिक उपाय को यदि ईमानदारी से लागू किया गया तो हम कह सकेंगे कि गांधी जी द्वारा बताए गए रास्ते को हमने अपना लिया है। परंतु यदि पंचायतों को राजनीतिक जातीय व साम्प्रदायिक गुटबंदी का अखाड़ा बनने दिया गया तो हम उस रास्ते से भटक जायेंगे।

नरसिम्ह राव सरकार ने इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए दिसम्बर 1992 में 73वां संविधान संशोधन विधेयक पारित करके पंचायती राज के सम्बन्ध में गांधी जी के चिंतन को साकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया। यह नई व्यवस्था समूचे देश में लागू हो गई है और मध्य प्रदेश तथा त्रिपुरा में नई पंचायत प्रणाली के अंतर्गत चुनाव भी संपन्न हो चुके हैं।

स्वदेशी भावना और उद्योग धंधे

स्वदेशी की भावना को गांधी जी ने स्वाधीनता आंदोलन के अभिन्न अंग के रूप में अपनाया तथा उसे जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। गांधी जी की स्वदेशी भावना कोई संकीर्ण राष्ट्रवादी सोच की उत्पत्ति नहीं बल्कि देश के आर्थिक विकास और कुशल कारीगरों व श्रमिकों के रोजगार से जुड़ी हुई थी। उनका मानना था कि अपने लिए बढ़िया और सुंदर वस्तु प्राप्त करने के लिए अपने देशवासियों के हितों को चोट पहुंचाना पाप है। इसी दृष्टि पर जोर देते हुए उन्होंने खादी और चर्खा आंदोलन चलाया क्योंकि देश में कपास और बुनकरों की बहुतायत के बावजूद विदेशी मिलों में बना कपड़ा खरीदने से देश की गरीबी और बढ़ती है। इसीलिए अहिंसा और सत्याग्रह का रास्ता अपनाने वाले बापू को विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का आह्वान करने में भी बुराई दिखाई नहीं दी।

मशीनों का वे इसलिए विरोध करते थे क्योंकि उनसे जितने लोगों को काम मिलता है उसे कई गुना कारीगर बेकार हो जाते हैं। इसके अलावा बड़े उद्योगों में उत्पादन वास्तविक आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि प्रतिस्पर्धा के कारण होता है। बड़ी कंपनियां कृत्रिम मांग पैदा करती हैं और लोगों की इच्छाएं जगाने का प्रयास करती हैं।

साथ ही गांधी जी लघु और कुटीर उद्योगों के पक्षधर थे। वे कहते थे कि मनुष्य को मशीन का गुलाम नहीं होना चाहिए। मशीनों का वे इसलिए विरोध करते थे क्योंकि उनसे जितने लोगों को काम मिलता है उससे कई गुना कारीगर बेकार हो जाते हैं। इसके अलावा बड़े उद्योगों में उत्पादन वास्तविक आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि प्रतिस्पर्धा के कारण होता है, बड़ी कंपनियां कृत्रिम मांग पैदा करती हैं और लोगों की इच्छाएं जगाने का प्रयास करती हैं। गांधी जी ने कहा – ''सामूहिक उत्पादन में लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता ... मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि यह विश्व के संकट के लिए जिम्मेदार है।'' आज जिस गति से उपभोक्तावाद की संस्कृति बढ़ रही है उसे देखते हुए गांधी जी की चेतावनी ठीक लगती है। यह सही है कि आज के युग में औद्योगीकरण के बिना विकास तथा प्रगति कर पाना कठिन है किंतु यदि हम गांधी जी की राय मानकर छोटे, कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास पर अधिक ध्यान देते तो बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, शोषण और उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ जैसी समस्याएं इतना विकराल रूप न ले पातीं। इसके अलावा पर्यावरण के प्रदूषण का जो खतरा आज मानवता पर मंडरा रहा है, उससे भी हम मुक्त होते। यह देखते हुए कि आर्थिक विकास, विशेषकर औद्योगिक विकास के पश्चिमी माडल की अब स्वयं पश्चिम में आलोचना होने लगी है, गांधी जी का रास्ता अधिक अनुकूल एवं लाभकारी प्रतीत हो रहा है। यद्यपि छोटे तथा कुटीर उद्योगों के विकास की नीति हमने छोड़ी नहीं है और उस दिशा में भी काफी प्रयास हुए हैं परंतु बड़े उद्योगों तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रोत्साहन देने से तो यही लगता है कि उद्योग धंधों और स्वदेशी के बारे में गांधी जी ने जो रास्ता सुझाया था उस पर हमारे पांव फिसल रहे हैं।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि वास्तविक भारत गांवों में बसता है। सच तो यह है कि गांवों में रह रहे करोड़ों लोगों का जीवन स्तर सुधारने के उद्देश्य से ही उन्होंने स्वराज प्राप्ति का बीड़ा उठाया था। 26 मार्च 1939 को "यंग इंडिया" में अपनी इस धारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "मैं स्वराज प्राप्ति के लिए काम कर रहा हूं.....उन करोड़ों बेरोजगार तथा मेहनतकश लोगों के लिए जिन्हें एक जून का खाना भी नसीब नहीं होता और जो थोड़े से नमक के साथ रोटी खाकर गुजारा कर रहे हैं।"

गांधी जी ने खेतों में काम करने वाले कृषि मजदूरों, कारीगरों तथा उपेक्षित गांववासियों की दशा सुधारने के लिए ही खादी जैसे आर्थिक कार्यक्रमों का पक्ष लिया और मशीनों के इस्तेमाल का विरोध किया। उनका स्पष्ट मत था कि औद्योगीकरण से शहरीकरण को बढ़ावा मिलता है जिससे गांवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और लोग प्रकृति से दूर चले जाते हैं। वे गांव को आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे जो शहरों पर निर्भर न हों। गांव के संबंध में उनकी कल्पना इन शब्दों में देखी जा सकती है जो उन्होंने 'हरिजन' के 26 जुलाई 1942 के अंक में व्यक्त किए, "ग्राम स्वराज की मेरी धारणा यह है कि यह पूर्ण गणतंत्र होगा जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा। लेकिन उन अन्य अनेक मामलों में दूसरों पर निर्भर होगा जिनमें निर्भरता आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक गांव की पहली चिन्ता अपनी आवश्यकता का अनाज तथा वस्त्रों के लिए कपास उगाने की होगी।....यदि अधिक जमीन उपलब्ध हो तो उपयोगी व्यापारिक फसलें उगानी चाहिए किंतु गांजा, तम्बाकू, अफीम तथा इसी तरह की अन्य फसलें नहीं उगानी चाहिए।" इससे जाहिर होता है कि गांधी जी कृषि के माध्यम से ग्रामीण जीवन को खुशहाल और अपने आप में पूर्ण इकाई बनाने के समर्थक थे। उन्होंने अपने आचरण से भी यही संदेश दिया। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए वे प्रतिदिन खेती और बागबानी का काम करते थे। अपने आश्रमों में भी गांधी जी कई तरह की फसलें उगाते थे। उनकी प्रेरणा से ही उनके सहयोगी विनोबा भावे ने ग्रामदान एवं भूदान आंदोलन के माध्यम से भूमिहीन व बेसहारा ग्रामवासियों को किसानी करने का अवसर देने की दिशा में अथक प्रयास किए।

देश आज अनाज के मामले में आत्म-निर्भर ही नहीं है अपनी आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न का निर्यात करने की स्थिति में भी आ गया है। किसानों को उनकी उपज के लाभकारी मूल्य मिल रहे हैं और पहले की तुलना में गांवों की संपन्नता एवं समृद्धि बढ़ी है। परंतु गांवों को स्वतंत्र आर्थिक एवं सामाजिक इकाई का रूप देने का गांधी की का सपना साकार नहीं हो पाया है। इसके विपरीत शहरों पर गांवों की निर्भरता बढ़ गई है क्योंकि गांव वालों की आवश्यकता की अधिकांश वस्तुएं शहरों के कल कारखानों में बनती है। इसके अलावा जिस उपभोक्ता संस्कृति से बचने के लिए गांधी जी ने शहरों को आगाह किया था वह आज गांवों में भी दस्तक दे रही है। इस लिहाज से हमारा ग्रामीण समाज गांधी जी के रास्ते से दूर होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं आर्थिक शोषण अन्याय तथा उत्पीड़न की घटनाएं पहले से बढ़ी हैं और सामाजिक बराबरी का उनका सपना पूरा नहीं हो पाया है। दलित उत्थान और सामाजिक न्याय भारतीय समाज जातीय आधार पर सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं की कलंकपूर्ण स्थिति से गांधी जी पूरी तरह अवगत थे। इसलिए उन्होंने इस विषमता को दूर करने के लिए अस्पृश्यता निवारण को अपने राजनीतिक आंदोलन का अंग बनाया। उन्होंने केवल भाषणों और उपदेशों से नहीं बल्कि छोटे समझे जाने वाले काम स्वयं अपने हाथों से करके और अध्यक्ष माने जाने वाले वर्गों के बीच रहकर लोगों को प्रेरित किया।

इसलिए उन्होंने इस विषमता को दूर करने के लिए अस्पृश्यता निवारण को अपने राजनीतिक आंदोलन का अंग बनाया। उन्होंने केवल भाषणों और उपदेशों से नहीं बल्कि छोटे समझे जाने वाले काम स्वयं अपने हाथों से करके और अछूत माने जाने वाले वर्गों के बीच रहकर लोगों को प्रेरित किया।

"सर्व भूमि गोपाल की" उक्ति को दोहराते हुए गांधी जी संपत्ति के न्यायपूर्ण बंटवारे पर बल देते थे। यद्यपि आधुनिक समाजवाद तथा साम्यवाद में उनका विश्वास नहीं था किंतु वे स्वयं को स्वाभाविक समाजवादी मानते थे और दलितों, उपेक्षितों तथा साधनहीन लोगों द्वारा अहिंसा और सत्याग्रह के रास्ते से अपने अधिकार प्राप्त करने के पक्ष में थे। वे मालिक तथा मजदूर के बीच समन्वय चाहते थे ताकि उत्पादन बढ़े और मजदूर को उसका हक मिले। गांधी जी के अनुसार, "मजदूर का कौशल ही उसकी पूंजी है। जिस प्रकार श्रमिक के सहयोग के बिना पूंजीपति अपनी पूंजी से फल प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार श्रमिक पूंजी के सहयोग के बगैर अपने श्रम के लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।" इसीलिए गांधी जी ने ट्रस्टी की अवधारणा दी, जिसमें पूरी संपत्ति किसी एक व्यक्ति या छोटे समूह की न रहकर पूरे समाज या संस्थान की रहती है। परंतु दुर्भाग्यवश गांधी जी की यह अवधारणा

केवल पुस्तकों तथा भाषणों तक ही सीमित रह गई। यद्यपि दलितों के उद्धार के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण तथा शिक्षा व अन्य सामाजिक सेवाओं में रियायतें देकर कुछ किया गया है किंतु सामाजिक समरसता एवं सामाजिक न्याय का लक्ष्य अभी बहुत दूर है। इसके अलावा गांधी जी ने शोषित और शोषक दोनों को बदलने के लिए अहिंसा और सत्याग्रह का जो मार्ग सुझाया उसे छोड़कर दमन और हिंसा के हथियारों का इस्तेमाल होने लगा है। यह सच है कि सामाजिक न्याय अब हमारे राष्ट्रीय एजेंडे का महत्वपूर्ण अंग बन गया है और उपेक्षित वर्गों में पहले से अधिक जागरूकता दिखाई देने लगी है किंतु विकास के लाभों का समान बंटवारा अभी नहीं हो पा रहा है और आर्थिक विषमता दिनों-दिन बढ़ रही है। महात्मा गांधी ने श्रमिक संबंधों में सामाजिक सामंजस्य की कल्पना की थी किंतु वास्तव में सामाजिक कटुता बढ़ रही है।

गांधी जी के अनुसार, ''मजदूर का कौशल ही उसकी पूंजी है। जिस प्रकार श्रमिक के सहयोग के बिना पूंजीपति अपनी पूंजी से फल प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार श्रमिक पूंजी के सहयोग के बगैर अपने श्रम का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।''

भटकाव के कारण

इस प्रकार विकास के कुछ प्रमुख प्रतिमानों की परख करने पर हम पाते हैं कि गांधी जी का रास्ता हमारे सामने भले ही रहा है उस पर चलने में हम कामयाब नहीं हो पाए हैं। रास्ता सामने होते हुए भी यदि हम उधर नहीं बढ़ पाए तो इसके पीछे अवश्य कुछ ठोस कारण होने चाहिए। इन कारणों का विश्लेषण किए बिना हमारी यह चर्चा अधूरी रहेगी।

सबसे पहला और प्रमुख कारण यह रहा है कि हमारा राजनीतिक नेतृत्व गांधी जी के चिंतन एवं आचरण को पूरी निष्ठा के साथ देशवासियों के सामने प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो पाया। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की विशेषताएं अपने जीवन में उतार पाने की कठिनाई तो समझ में आती है क्योंकि वैसी उच्चता तक पहुंचना सबके बस में नहीं है। सच तो यह है कि गांधी जी को अतिमानव मानकर उनके नाम के नारे लगते रहे, उनके रास्ते पर चलने की घोषणाएं होती रहीं और कुछ हद तक उनके सिद्धांतों के अनुरूप कानून भी बनाए गए परंतु उन्हें व्यावहारिक रूप देने के लिए जिस निष्ठा, समर्पण तथा वचनबद्धता की आवश्यकता थी वो नदारद रही। इसलिए गांधी जी का नाम चलता रहा और काम पिछड़ता रहा।

इसी से जुड़ा दूसरा पहलू है प्रशासनतंत्र या नौकरशाही की विवशता। हमें परकीय शासन से जो नौकरशाही विरासत में मिली थी वह भारतीय हितों तथा गांधीवादी मूल्यों पर अमल करना तो दूर उसे अपने गले उतार पाने में भी अक्षम थी। उसका दृष्टिकोण, सोच एवं प्रशिक्षण ऐसा नहीं था कि वह इस देश के आम आदमी की भलाई के कार्यों को चला पाती जबकि गांधीवादी चिन्तन का अंतिम लक्ष्य सत्ता नहीं बल्कि जनता जनार्दन था। उदाहरण के लिए पंचायती राज का सामुदायिक विकास और गांवों में गरीबी दूर करने की विविध योजनाएं बड़े उत्साह से तैयार की गईं किंतु उन्हें लागू करने वाले तंत्र के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं किया गया जिससे हम उन उपायों को क्रियान्वित नहीं कर पाए और धीरे-धीरे उन योजनाओं में ही दोष ढूंढा जाने लगा। इस उदासीनता और अधूरे मन से चलाई गई योजनाओं के फलस्वरूप राजनीतिक तथा प्रशासनिक दोनों स्तरों पर गांधी जी द्वारा दिखाए गए मार्ग से दूरी बढ़ती गई और लोगों की आकांक्षाओं की तुष्टि के लिए गांधीवाद का मौलिक समर्थन तो होता रहा परंतु व्यावहारिक धरातल पर हम दूसरी ही पगडंडी पर चलते रहे।

गांधी जी के रास्ते से भटकाव का तीसरा महत्वपूर्ण कारण रहा है हमारी शिक्षा प्रणाली। शिक्षा किसी भी समाज की नींव होती है। शिक्षा प्रणाली की रचना में गांधीवादी मूल्यों को कोई स्थान नहीं मिला जिसका नतीजा यह निकला कि आने वाली पीढ़ियों में गांधीवाद तो दूर स्वयं गांधी जी के व्यक्तित्व का आकर्षण कम होता गया। इसके अलावा पिछले लगभग पांच दशकों में जो आर्थिक नीतियां अपनाई गई हैं उससे भोगवादी तथा भौतिक समृद्धि की प्रवृत्ति को बल मिला है और शहरीकरण एवं औद्योगीकरण का वातावरण बना है जिस कारण आध्यात्मिक एवं नैतिक पहलू पूरी तरह उपेक्षित हो गए हैं। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में आज हम जिस मोड़ पर खड़े हैं वह गांधी जी के रास्ते से दूर तो है किंतु गांधीवादी चिन्तन की रोशनी उस पर पड़ रही है। बदली परिस्थितियों में समूचा गांधीवादी चिन्तन हमारे लिए निश्चय ही सार्थक और प्रासंगिक नहीं हो सकता किंतु जिन समस्याओं का न केवल हमारा देश बल्कि समूची मानवता इस समय सामना कर रही है उसके समाधान में गांधी जी का रास्ता काफी हद तक सहायक हो सकता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

1370, सैक्टर-12,
आर. के. पुरम, नई दिल्ली-110022

गांधी जी का मार्ग अपनाना जरूरी

✍ रश्मि सुधा पुरी

आज विश्व भर में विकासशील देश राष्ट्रीय संसाधनों के विकास के लिए जोरदार प्रयास कर रहे हैं। वे ऐसे कार्यक्रम बना रहे हैं जिनकी मदद से समाज का समग्र विकास हो सके। इन देशों के अधिकतर लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। उनके जीवन स्तर में सुधार के लिए कई सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। पिछले अनुभव से पता चलता है कि जिन सरकारी कार्यक्रमों में जनता की भागीदारी नहीं होती, उनमें लोगों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की दशा सुधारने में बहुत अधिक सफलता नहीं मिल पाती। ग्रामीण क्षेत्रों में शोषण, बीमारी, अत्याचार जैसी बातें बड़ी आम हैं। व्यापक अज्ञानता ने समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण विकास संबंधी गांधी जी के विचार बहुत ही प्रासंगिक हैं। उन्होंने ग्रामीण विकास के बारे में बहुत ही स्पष्ट और तर्कसंगत बातें कही हैं। यह लेख ग्रामीण विकास पर गांधी जी की विचारधारा की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इसमें स्वैच्छिक प्रयासों की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है।

महात्मा गांधी का पक्का विश्वास था कि भारत जैसे कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों की प्रधानता वाले देश का विकास गांवों की दशा सुधारने से ही संभव हो पाएगा। उनके अनुसार

"हम ग्रामीण सभ्यता के वारिस हैं। हमारा देश जितना विशाल है, हमारी आबादी जितनी ज्यादा है और यहां की जलवायु में जो विविधता पायी जाती है, मेरा ख्याल है कि उसे देखते हुए हमारी सभ्यता को ग्रामीण सभ्यता होना ही था। इसकी कमियां हम सब अच्छी तरह जानते हैं लेकिन कोई भी कमी ऐसी नहीं है जिसका समाधान न किया जा सके। इस ग्रामीण सभ्यता के स्थान पर शहरी सभ्यता कायम करना मुझे नामुमकिन लगता है। जबतक जनसंख्या में भारी कमी करने के कोई कारगर उपाय नहीं कर लिए जाते हैं, तब तक यह एक असंभव बात ही नजर आती है। इसलिए मैं यह मान कर चलता हूं कि हमें अपनी वर्तमान ग्रामीण सभ्यता को ही बचाये रखना चाहिए और इसकी जो कमियां हमें पता हैं उनको दूर करने के प्रयास करने चाहिए।"

ग्रामीण पुनर्निर्माण की गांधी जी की धारणा अपने समय से काफी आगे थी। यह आज की शहरी औद्योगिक विकास की सोच पर आधारित नहीं थी बल्कि यह जीवन स्तर की उस आधुनिकतम अवधारणा पर आधारित थी जिसे आम तौर पर स्वीकार किया जाता है। गांधी जी गांवों के समग्र विकास पर जोर देते थे और उन्हें पूरा विश्वास था कि अगर हमारे गांवों का विकास हो जाता है तो उनमें प्रतिभा संपन्न लोगों की कोई कमी नहीं होगी। "उनमें ग्राम कवि, कलाकार, भाषाशास्त्री, वास्तुविद और अनुसंधानकर्ता उपलब्ध होंगे। संक्षेप में जीवन में हासिल करने योग्य ऐसी कोई चीज नहीं होगी जिसका गांवों में अभाव हो। आज हमारे गांव गोबर का ढेर, बनकर रह गये हैं। लेकिन कल ये ही गांव ऐसे स्वर्ग लोक में बदल जाएंगे जहां बहुत ही बुद्धिमान लोग रहा करेंगे।......"

यह धारणा बड़े व्यापक पैमाने पर फैली हुई है कि गांधी जी भारत को आगे ले जाने की बजाय पीछे की ओर ले जा रहे थे। लेकिन वास्तविकता इससे एकदम उलट है। उन्होंने इस बारे में जो कुछ लिखा है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे बड़े प्रगतिशील थे। "गांवों में थियेटर, स्कूल और सभागार जैसी चीजें उपलब्ध होंगी। स्वच्छ जल की आपूर्ति के लिए गांव में पानी सप्लाई करने की अपनी प्रणाली होगी कुओं और जलाशयों के उचित रख-रखाव से यह संभव हो सकेगा। शिक्षा बुनियादी तालीम के रूप में सबके लिए अनिवार्य होगी। जहां तक संभव होगा गांवों की प्रत्येक गतिविधि सहकारिता के आधार पर संचालित की जाएगी।" इसी तरह "गांवों के लोगों को ऐसी सभी आधुनिक मशीनों और उपकरणों के उपयोग में कोई आपत्ति नहीं होगी, जो वे बना सकते हैं और प्रयोग में ला सकते हैं।"

इसी के अनुसार ग्रामीण विकास के गांधी जी के कार्यक्रम में खादी को बढ़ावा देना, ग्राम उद्योगों का विकास, सामाजिक-आर्थिक समानता को बढ़ावा देना, साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव, अस्पृश्यता-निवारण, शिक्षा का प्रसार, ग्रामीण स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, व्यक्तिगत स्वास्थ्य और साफ सफाई, ग्राम पंचायत, नशाबंदी और गोवंश की रक्षा जैसी बातें शामिल थीं।

स्पष्ट है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें गांवों के लोग अपने संसाधनों और आवश्यकताओं के अनुसार पिछड़ेपन से विकास की स्थिति में पहुंच जाते हैं। इसके लिए इस कार्य में ग्रामीण और शहरी लोगों की लगातार सीधी भागीदारी जरूरी है। उन्हें गांवों में नयी जान फूंककर सशक्त रूप देने के अभियान में शामिल होने के लिए एकजुट होना होगा।

ग्रामीण पुनर्निर्माण की गांधी जी की धारणा के चार महत्वपूर्ण

तत्व हैं : (क) स्वयंसेवी संगठन, (ख) कार्यक्रम, (ग) तकनीक और (घ) अभियान।

लोग किसी बाहरी सहायता की बजाय आम तौर पर (संभवतया पूरी तरह) अपने ही संसाधनों में भरोसा करेंगे।"... ....अपने गांवों को साफ-सुथरा रखना और उन्हें आत्मनिर्भर बनाना गांव के लोगों की जिम्मेदारी होगी। वे स्वराज सरकार से ये कार्य करने की आशा नहीं रखेंगे।" गांधी जी चाहते थे कि स्वयंसेवकों के छोटे-छोटे संगठन बनाए जाएं। प्रत्येक गांव में ऐसा एक संगठन हो। उन्हें पक्का भरोसा था कि जिस संगठन या आंदोलन में जीवंतता होती है बाहरी खतरों से उसका कुछ नहीं बिगड़ता।

गांधी जी मानते थे कि ग्रामीण विकास के आंदोलन को अंदर से मजबूत होना चाहिए। अगर यह अंदर से मजबूत नहीं होगा तो ज्यादा देर चल नहीं सकेगा और बन्द हो जाएगा। स्वयंसेवकों के बारे में गांधी जी कहते थे कि "जो चीज जरूरी है वह यह है कि चरित्र पर किसी भी प्रकार का संदेह न किया जा सके, काम की तकनीक के बारे में लगातार अथक प्रयास करने वाले हों तथा जीवन में सादगी हो।" स्वयंसेवकों को गांवों के लोगों के साथ पूरी तरह घुलमिल जाना चाहिए। स्वयंसेवकों का जीवन-स्तर आम आदमी के जीवन-स्तर से बहुत ऊंचा होता है और जिन्हें अपने काम की आवश्यक जानकारी नहीं होती है वे गांव वालों पर कोई छाप नहीं छोड़ सकते। गांधी जी का विचार था कि गांवों में काम करने वाले स्वयंसेवकों के साथ सबसे बड़ी अड़चन यह आती है कि वे अपने ऊंचे जीवन-स्तर की वजह से गांवों के जीवन-स्तर के अनुसार नहीं रह पाते। अगर प्रत्येक स्वयंसेवक अपने काम के लिए ऐसा दाम मांगने लगे जिसे चुकाना गांव वालों के बूते से बाहर है तो ऐसे संगठन को बंद कर दिया जाना चाहिए। एक आध मामले को छोड़कर, अगर सभी ग्रामीण कार्यकर्त्ता यदि शहरों के हिसाब से भुगतान की मांग करने लगे तो गांवों और शहरों के बीच की खाई बढ़ती ही जाएगी और इसे पाटना कभी संभव नहीं ही होगा।

"गांवों में थियेटर, स्कूल और सभागार जैसी चीजें उपलब्ध होंगी। स्वच्छ जल की आपूर्ति के लिए गांव में पानी सप्लाई करने की अपनी प्रणाली होगी। कुओं और जलाशयों के उचित रख-रखाव से यह संभव हो सकेगा। शिक्षा बुनियादी तालीम के रूप में सबके लिए अनिवार्य होगी। जहां तक संभव होगा गांवों की प्रत्येक गतिविधि सहकारिता के आधार पर संचालित की जाएगी।"

गांधी जी का विचार था कि गांवों के विकास का आंदोलन शहरों के लोगों के लिए भी उतना ही ज्ञानवर्धक है जितना गांवों के लोगों के लिए। शहरों से आए कार्यकर्त्ताओं को गांवों के लोगों के समान दृष्टिकोण को विकसित करना होगा। उन्हें ग्रामीणों की तरह रहने की कला सीखनी होगी।...........जहां एक ओर गांवों के लोगों का जीवन स्तर उठाया जाना चाहिए वहीं कार्यकर्त्ताओं को अपने शहरी जीवन के अपने तौर-तरीकों में ऐसे बदलाव करने होंगे जिससे स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़े बिना वे नयी जीवन पद्धति को अपना सकें।

गांधी जी का संकेत इस बात की ओर है कि यह बदलाव आसानी से स्वीकार्य नहीं होगा। परम्परावादियों द्वारा इनका विरोध हो सकता है। सामाजिक कार्यकर्त्ता गांवों के माहौल में सुधार तथा वहां के लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव लाने में तभी कामयाब हो सकते हैं जब वे उनके साथ घनिष्ठ अनौपचारिक संबंध कायम करें। स्वयंसेवी को अपने पास एक डायरी रखनी चाहिए जिसमें उसे उन सब कार्यों का ब्यौरा दर्ज करना चाहिए जो उसे करने हैं। स्वयंसेवकों को गांधी की सलाह थी कि वे जो भी सामाजिक कार्य करें वह उपयोगी होना चाहिए। उदाहरण के लिए उनका, विचार था कि गांवों में दवाएं बांट देने भर से स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को सुलझाया नहीं जा सकेगा। उनके अनुसार तो इस तरह का सामाजिक कार्य आलस्य से की गई सेवा है और कई बार तो यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है, क्योंकि इससे बीमार व्यक्ति रोग के बारे में लापरवाह हो जाता है। इस क्षेत्र में ऐसे सक्षम और समर्पित सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है जो बीमार व्यक्ति को रोग का कारण समझने में मदद करने के साथ-साथ उसे इसकी रोकथाम के लिए प्रेरित भी कर सकें। इस तरह का कार्यकर्त्ता लोगों को स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छता, आदि के बारे में बताएगा और बीमारी से छुटकारा दिलाने में मदद करेगा। सामाजिक कार्यकर्ता को ग्रामीण लोगों को एहतियात के उपाय करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। गांधी जी के ही शब्दों में :

"यह कार्य सफाई, गांवों की स्थिति के बारे में सर्वेक्षण और लोगों को शिक्षित करने के प्रयासों के रूप में हो सकता है। उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि अपने स्वास्थ्य और आर्थिक दशा सुधारने के लिए वे बिना अधिक खर्च किए क्या कुछ कर सकते हैं।"

ग्रामीण विकास के हमारे किसी भी कार्यक्रम का उद्देश्य भारतीय ग्रामीण जीवन के हर पक्ष में सुधार होना चाहिए।

किसानों की दरिद्रता दूर करने के लिए गांधी जी ने जमींदारों और किसानों के बीच मानवीय संबंधों का सुझाव दिया। और अगर गांवों के लोगों के हर संभव प्रयास के बावजूद शोषण करने वाले अपना रवैया नहीं बदलते तब शांतिपूर्ण असहयोग का रास्ता बाकी रह जाता है क्योंकि समाज के गरीब लोगों की मदद के बिना अमीरों का काम नहीं चल सकता।

गांधीवादी मॉडल पर एक अन्य आरोप यह लगाया जाता है कि इसे व्यक्तिगत स्तर पर तो अपनाया जा सकता है लेकिन सामूहिक स्तर पर इसे नहीं अपनाया जा सकता। जबकि गांधी जी का विचार था कि सभी सामाजिक विकास सामूहिक प्रयासों का परिणाम है। यह गलतफहमी इस कारण पैदा हुई है क्योंकि इस संबंध में बड़े पैमाने पर परीक्षण नहीं किए गए हैं। किसानों की दरिद्रता दूर करने के लिए गांधी जी ने जमींदारों और किसानों के बीच मानवीय संबंधों का सुझाव दिया। और अगर गांवों के लोगों के हर संभव प्रयास के बावजूद शोषण करने वाले अपना रवैया नहीं बदलते तब शांतिपूर्ण असहयोग का रास्ता बाकी रह जाता है क्योंकि समाज के गरीब लोगों की मदद के बिना अमीरों का काम नहीं चल सकता। वे सत्य और अहिंसा को सामाजिक गुण मानते थे। उनका कहना था :

"मनुष्य जब अपने आप को समाज का सेवक समझने लगता है, समाज के लिए कमाता और उसी की भलाई के लिए खर्च करता है तो उसकी आमदनी पवित्र होती है तथा उसके कार्यों में अहिंसा का समावेश हो जाता है। अगर मनुष्य अपने जीवन में यह दृष्टिकोण अपना ले तो समाज में बिना कड़ुवाहट पैदा हुए शांतिपूर्ण क्रांति हो सकती है।"

"मनुष्य जब अपने आप को समाज का सेवक समझने लगता है, समाज के लिए कमाता और उसी की भलाई के लिए खर्च करता है तो उसकी आमदनी पवित्र होती है तथा उसके कार्यों में अहिंसा का समावेश हो जाता है। अगर मनुष्य अपने जीवन में यह दृष्टिकोण अपना ले तो समाज में बिना कड़ुवाहट पैदा हुए शांतिपूर्ण क्रांति हो सकती है।"

इसलिए सहकारिता की भावना ग्रामीण पुनर्निर्माण की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इस तरह की भावना पर जो विकास आधारित होगा उससे ग्रामीण लोग सामूहिक रूप से (न कि व्यक्तिगत रूप से) आत्म निर्भर बन सकेंगे।

उद्देश्य यह होना चाहिए कि :

(1) संतुलित विकास और प्रगति के लिए शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा दिया जाए।

(2) विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक व्यक्ति का पूरा-पूरा सहयोग लिया जाए। और

(3) समाज के आम आदमियों को अपनी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का मौका देकर सामाजिक न्याय को बढ़ावा दिया जाए।

स्वैच्छिक ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम से तात्कालिक तथा दीर्घकालिक उद्देश्यों का पता लगाने में मदद मिलती है। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उसे लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। किसी बाहरी एजेंसी अथवा अधिकारी द्वारा इस तरह का कार्यक्रम लोगों पर थोपा नहीं जाना चाहिए।

देश-काल के अनुसार परिवर्तन भी विकास का अनिवार्य अंग है। ग्रामीण विकास के अभियान को समय स्थान और लोगों की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप बदला जाना चाहिए।

आज के किसी भी ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए। उसमें गरीबी, अज्ञानता, बीमारी और निरक्षरता दूर करने, लोगों की शराब और मादक पदार्थों की लत छुड़ाने, पर्यावरण के बारे में जन-चेतना जगाने, व्यक्तिगत तथा आम जीवन को साफ-सुथरा रखने, जन-शिक्षा तथा हस्त शिल्प के माध्यम से स्वरोजगार को बढ़ावा देने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। स्व रोजगार के ऐसे कार्यक्रमों से गांवों के संसाधनों का बाहर जाना रुकेगा और गांवों के युवा भी शहरों की ओर पलायन करना बंद करेंगे। इस तरह गांवों के दलित, शोषित तथा निर्धन लोगों के जीवन-स्तर में सुधार तथा सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अवसर उपलब्ध कराने के लिए अहिंसा पर आधारित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम तथा परियोजना बनाना बहुत जरूरी है।

चमड़े का सामान और चीनी मिट्टी की वस्तुएं बनाने, लकड़ी का काम, कताई-बुनाई, मधुमक्खी पालन जैसे कार्यों से स्व-रोजगार और आमदनी के अच्छे साधन जुटाये जा सकते हैं। स्वयंसेवी कार्यकर्ता गांवों में बनी हस्तशिल्प की वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था करके ग्रामवासियों की अच्छी मदद कर सकते हैं।

इसी तरह स्कूली शिक्षा अधूरी छोड़ देने वालों के लिए वे शिक्षा केन्द्र खोलकर सहायता कर सकते हैं। ग्रामीण विकास की दृष्टि से सबसे उपयुक्त सामाजिक-वर्ग में युवा वर्ग के लोग और महिलाएं आती हैं।

इन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए गांवों में स्थानीय संगठन बनाए जाने चाहिए। इनसे बिना किसी अनावश्यक व्यवधान के परिवर्तन की प्रक्रिया को जारी रखने में मदद मिलेगी।

ग्रामीण पुनर्निर्माण का एक शैक्षिक पक्ष यह है कि इससे लोगों में अच्छे मूल्यों और रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। इनसे योजना बनाने, संगठित करने और समाज में सुधार लाने की लोगों की क्षमता विकसित तथा सुदृढ़ होती है। सेवा की भावना, आत्म निर्भरता घटनाओं को समझने की क्षमता, दूसरों के प्रति आदर और सहयोग की भावना—ये कुछ ऐसे गुण हैं जिनको बढ़ावा दिया जाना चाहिए। समाज में सिर्फ भौतिक स्थिति में सुधार सब कुछ नहीं है, बल्कि इस सुधार के लिए लोगों की क्षमता में सुधार ज्यादा महत्वपूर्ण है। अपना काम खुद करने के कार्यक्रम के लिए जरूरी है कि गांवों के लोग बताई गई बातों को स्वीकार करें और कार्यक्रम को कारगर तथा सफल बनाने के लिए उसमें भागीदार बनें।

इस तरह का दृष्टिकोण किसी भी समाज के पुनर्निर्माण के लिए बहुत जरूरी है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के शैक्षिक पक्ष के फायदों के बारे में गांधी जी इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने ग्रामीण समाज में नई जान फूंकने की कार्रवाई योजना के रूप में इसकी जोरदार वकालत की।

ग्रामीण पुनर्निर्माण के बारे में

गांधी जी का स्पष्ट मत था कि इसे राष्ट्रीय विकास का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए। साथ ही वे यह भी मानते थे कि कोई भी कार्यक्रम अनिवार्य रूप से लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं, परम्पराओं और संसाधनों पर आधारित होना चाहिए अन्यथा हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रम अवास्तविक और केवल विद्वानों की बहस का विषय बनकर रह जाएंगे। अक्सर यह कहा जाता है कि भरपूर वित्तीय संसाधन उपलब्ध होने पर ही विकास संभव है। लेकिन गांधी जी का मानना था कि सिर्फ पैसे से सब कुछ हासिल नहीं किया जा सकता। उनके विचार में अपार धन से भी ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते। घनश्यामदास बिड़ला जी के साथ बातचीत में उन्होंने जो कुछ कहा था उससे यह बात एकदम साफ हो जाती है : अगर यह (ग्रामीण विकास) इतना आसान होता तो आप पैसे से सब कुछ कर लेते। लेकिन मैं जानता हूं कि यह आसान नहीं है। आप पैसे की जादुई छड़ी घुमाकर आदर्श गांव का निर्माण नहीं कर सकते।"

ग्रामीण विकास की गांधी जी की धारणा मानवीय प्रयास पर आधारित थी। इसका आधार सिर्फ वित्तीय या आर्थिक क्षमता न होकर मूलतः सामाजिक-सांस्कृतिक क्षमता और देश, काल और समाज के संदर्भ में व्यक्तिगत क्षमता था। उन्हें यह अहसास था कि "इस तरह के गांव का निर्माण पूरा जीवन प्रयत्न करके ही किया जा सकता है।" लेकिन गांधी जी जन्मजात आशावादी थे। इस कारण आदर्श गांव का जो नक्शा उन्होंने बनाया था उसमें उन्हें कुछ भी असंभव नहीं लगता था।

(पृष्ठ 24 का शेष)

में जाये और ग्रामीण विकास बिल्कुल दूसरी दिशा में, यह सम्भव नहीं है। वह सर्वथा गलत है, और कभी सफल नहीं हो सकता। यदि हमें राजनैतिक विकेंद्रीकरण करना है तो आर्थिक विकेंद्रीकरण अनिवार्य है। राजनैतिक और आर्थिक एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं। पिछले चालीस-पैंतालीस वर्षों में हमने इस बुनियादी बात का ध्यान नहीं रखा। कृत्रिम तरीके से गांव को विश्व-बाजार से जोड़ने की कोशिश कुछ इने-गिने लोगों के घर में दौलत भले ही भर दे, गांव का छोटा किसान, दस्तकार, मजदूर और बेरोजगार युवक, ये सब विकास की गंगा के किनारे एक चुल्लू पानी के लिए खड़े तरसते रह जायेंगे।

हमारे देश में ग्राम-निर्माण समाज-निर्माण है। हमें अपने देश में सड़कों, रेलों, स्कूलों, अस्पतालों को समाज-निर्माण की एक समग्र योजना के अंग के रूप में देखना चाहिए। ये चीजें पूरक हैं एक नयी राष्ट्रीय जीवन-पद्धति विकसित करने में। अगर हमें एक ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें युद्ध न हो, तो एक ऐसा राष्ट्र चाहिए जिसमें हिंसा न हो और ऐसा पड़ोस चाहिए जो विग्रह-मुक्त हो। दुनिया ने भले ही विश्व-युद्ध से मुक्ति की दिशा में कुछ कदम उठा लिये हों, लेकिन राष्ट्र तो हिंसा से और पड़ोस विग्रह से जर्जर होते जा रहे हैं। यदि इस स्थिति पर काबू पाना हो तो आर्थिक विकेंद्रीकरण की नीति अपनानी ही पड़ेगी। राष्ट्र का पुनर्निर्माण उसके बिना सम्भव नहीं दीखता। कम-से-कम गांधी जी को नहीं दीखा था।

श्रम भारती, खादीग्राम,
जमुई (बिहार)-811313

आज गांधी जी के ग्रामीण विकास संबंधी विचारों की उपादेयता

✍ डा० गणेश कुमार पाठक

लेखक का मानना है कि सात पंचवर्षीय योजनाएं पूरी होने पर भी देश में संतुलित विकास नहीं हो पाया है क्योंकि हम गांधी जी के बताए रास्ते पर नहीं चले। गांधी जी ग्रामीण उद्योग और ग्रामीण शिल्पों के विकास, साम्प्रदायिक सद्‌भाव, छुआछूत निवारण, नशाबंदी और पंचायती राज पर विशेष बल देते थे। वे कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को शारीरिक श्रम करके रोटी कमानी चाहिए। गांधी जी कुटीर उद्योगों के समर्थक थे। वे औद्योगीकरण केवल वहां चाहते थे जहां श्रमिकों की कमी हो। लेखक का कहना है कि आज जब देश में आबादी बढ़ रही है तो लोगों को रोज़गार देने के लिए ग्रामोद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

"भारत का हृदय कलकत्ता की गलियों में नहीं है और न ही बम्बई की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में है। उसका हृदय देहात में है, किसानों की टूटी-फूटी झोपड़ियों में है। हरे-भरे खेतों को देखकर ही उसे शान्ति मिलती है।"

गांधी जी ने भारत के जिस क्षेत्र को भारत का हृदय कहा, उस क्षेत्र में देश की 78.2 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जिनमें से अधिकांश की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। यही कारण है कि गांधी जी ने इस ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए कुछ योजनाएं प्रस्तुत कीं, कुछ नीतियां और कार्यक्रम प्रस्तुत किए। किन्तु क्या हम आजादी के सैंतालीस वर्ष बाद भी ग्रामीण विकास पर गांधी जी के विचारों को अपना सके हैं? क्या हमारा ग्रामीण क्षेत्र इसीलिए पूर्णतः विकास नहीं कर सका क्योंकि हमने गांधी जी द्वारा बताए गए रास्ते पर अमल नहीं किया?

हालांकि ऐसी बात नहीं है कि देश ने प्रगति नहीं की। आज देश की गिनती विश्व के गिने-चुने औद्योगिक देशों में होने लगी है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हमारा स्थान दुनिया के बड़े देशों में है। खाद्यान्न में भी हम आत्म निर्भर हो गए हैं। फिर क्या कारण है कि हम विदेशी कर्जे के जाल में जकड़ते जा रहे हैं। हमारा व्यापार घाटा बढ़ता ही जा रहा है। मंहगाई आसमान छू रही है, बेरोजगारी तथा गरीबी बढ़ती ही जा रही है। आखिर ऐसा क्यों? जबकि स्वतंत्रता के पश्चात से अब तक सात पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं। इन सभी योजनाओं में ग्रामीण विकास की अनेक परियोजनाएं बनाई गई और उनका क्रियान्वयन भी किया गया। अब आठवीं योजना के भी दो वर्ष पूरे हो चुके हैं। इसके बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया और अमीरों तथा गरीबों के मध्य खाई पटने के बजाय, बढ़ती ही जा रही है। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? इस सबको देखते हुए तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य रह गई है जिसमें से एक कमी तो यह दृष्टिगोचर हो रही है कि शायद हम गांधी जी के बताए गए रास्ते से हट गए हैं। इसके लिए यह देखना और विश्लेषण करना आवश्यक है कि गांधी जी के ग्रामीण विकास संबंधी विचार क्या हैं और आज हमारे लिए उनकी क्या उपादेयता है।

गांधी जी का साबरमती कार्यक्रम और सेवाग्राम कार्यक्रम

गांधी जी के ग्रामीण विकास संबंधी विचार और कार्यक्रम उनके 18 सूत्रीय साबरमती कार्यक्रम, 1920 और सेवा ग्राम कार्यक्रम, 1934 में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। गांधी जी सर्वोदय का सपना देखते थे। वे चाहते थे कि गांव आत्म-निर्भर बनें और लोगों में स्वदेशी की भावना जाग्रत हो। अमीर और गरीब के मध्य आर्थिक विषमता में कमी लाई जाए और गांवों के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। वे गरीब से गरीब का उत्थान चाहते थे। इसलिए उनका विचार था कि देश का आर्थिक भविष्य ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर आधारित हो। इसीलिए वे कुटीर और ग्रामोद्योग पर बल देते थे। उन्होंने "हाथ से कमाओ और सीखो" पर बल दिया। उनका विचार था कि गांवों को स्वावलम्बी होना चाहिए तथा प्रत्येक गांव एक गणतन्त्र की तरह हो जहां एक पंचायत हो, जिनके माध्यम से ही ग्रामवासी अपनी समस्याओं का निपटारा करें।

इस तरह गांधी जी ग्रामीण उद्योग और ग्रामीण शिल्पकारी के विकास, सामाजिक एकता और साम्प्रदायिक सद्‌भाव, छुआछूत निवारण, नशाबंदी, गांव संगठन के विकास (पंचायती राज) पर विशेष बल देते थे।

ग्रामीण क्षेत्रों के कल्याण के लिए गांधी जी ने जो कार्यक्रम

तैयार किये वे इस प्रकार थे—खादी का प्रयोग, ग्रामोद्योग में धान कूटकर चावल तैयार करना, गुड़ बनाना, नीम का तेल निकालना, हाथ से कपड़ा बुनना, मृत पशुओं का उपयोग, हाथ द्वारा कागज बनाना, ऊनी कम्बल तैयार करना, प्रारंभिक और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाना, नारी कल्याण कार्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य और आरोग्य शास्त्र की शिक्षा, आर्थिक समानता लाने की गतिविधियां, छुआछूत दूर करना, साम्प्रदायिक शांति, नशाबन्दी, मातृ और राष्ट्रभाषा का प्रसार आदि।

अब हम यहां गांधी जी के ग्रामीण विकास से संबंधित सामाजिक और आर्थिक विचारों का विश्लेषण अलग-अलग कर रहे हैं ताकि हम यह समझ सकें कि हमने गांधी जी के विचारों को कितना अपनाया है।

गांधी जी के समाज, स्त्री, पुरुष, श्रम पूंजी, औद्योगीकरण, मशीनीकरण, विकेन्द्रीकरण संबंधी विचारों को ही उनके सामाजिक और आर्थिक दर्शन की संज्ञा दी जाती है, जिनकी मूल विशेषताएं इस प्रकार है :

1. समाज

गांधी जी एक वर्ग विहीन, शोषण रहित, शांतिपूर्ण प्रजातांत्रिक आदर्श समाज के पोषक थे। उन्होंने लिखा है कि ''मैं एक ऐसे भारत के निर्माण हेतु कार्य करूंगा जिसमें निर्धनतम व्यक्ति भी यह गौरव अनुभव करेगा कि यह देश उसका है और इसके निर्माण में उसकी प्रभावपूर्ण आवाज है। मैं ऐसे भारत की रचना चाहूंगा जिसमें ऊंच-नीच का भेदभाव न हो। वह भारत ऐसा होगा जिसमें सभी वर्ग प्रेम से रह सकें। ऐसे भारत में छुआछूत और मद्यपान और नशीली वस्तुओं के सेवन हेतु कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार होंगे। सभी देशों से मैत्री रखने के कारण हम विश्व के देशों के साथ शांतिपूर्वक रह सकेंगे। हम न किसी का शोषण करेंगे और न कोई हमारा शोषण करेगा। हमारे देश में कम से कम सेना रहेगी। करोड़ों की संख्या में मूक जनता के हितों का ध्यान रखा जाएगा। व्यक्तिगत रूप से मैं देशी और विदेशी के भेद को घृणा की दृष्टि से देखता हूं। मेरी कल्पना का भारत यही है।''

मैं ऐसे भारत की रचना चाहूंगा जिसमें ऊंच-नीच का भेदभाव न हो। वह भारत ऐसा होगा जिसमें सभी वर्ग प्रेम से रह सकें। ऐसे भारत में छुआछूत और मद्यपान और नशीली वस्तुओं के सेवन हेतु कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार होंगे। सभी देशों से मैत्री रखने के कारण हम विश्व के देशों के साथ शांतिपूर्वक रह सकेंगे। हम न किसी का शोषण करेंगे और न कोई हमारा शोषण करेगा।

गांधी जी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि गांधी जी एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमें जाति और वर्ण भेद समाप्त हो और सभी व्यक्ति समान समझे जाएं। वे उत्तराधिकार से प्राप्त जाति को नहीं मानते थे। उनका विचार था कि ''वर्तमान जाति प्रथा पूर्व की वर्णाश्रम व्यवस्था से पूर्णतः विपरीत है। जनता जितनी ही शीघ्र इसको नष्ट करे, उतना ही श्रेयस्कर है। जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो राष्ट्रीय और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति में घातक है।'' इस प्रकार गांधी जी के अनुसार समाज का कर्त्तव्य है कि वह व्यक्ति पर कोई बन्धन न डालकर उसके आध्यात्मिक उत्थान हेतु आदर्श वातावरण का सृजन करें। ऐसे समाज की रचना का आधार सत्य, अहिंसा, प्रेम और न्याय होगा। व्यक्ति की जाति उसकी कार्यकुशलता के आधार पर ही निश्चित होगी। उनका कहना था कि ''एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था तभी स्थापित की जा सकती है जब इस वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह समझ कर क्रियान्वित किया जाए।''

किन्तु क्या आज हम गांधी जी के उक्त विचारों को अमल में ला रहे हैं। आज स्थिति ठीक इसके विपरीत हो गई है। आज जाति और धर्म का जो विद्वेष देश में फैल गया है, वह देश को विनाश की ओर ले जा रहा है।

2. श्रम और पूंजी

गांधी जी श्रम के महत्व को स्वीकार करते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करके रोटी कमाए। गांधी जी ने कहा है कि ''यदि सब अपनी रोटी के लिए खुद मेहनत करें, तो ऊंच नीच का भेद दूर हो जाए और फिर जो धनी वर्ग रह जायेगा, वह अपने को मालिक न मानकर उस धन का केवल रक्षक या ट्रस्टी मानेगा तथा उसका उपयोग मुख्यतः लोक सेवा के लिए करेगा। मजदूरी न करने वाले को खाने का क्या अधिकार हो सकता है।'' वे बाइबिल का उद्धरण देते हुए कहते हैं कि ''तू अपनी भौहों के पसीने से अपना भोजन पायेगा।''

गांधी जी श्रम को पूंजी से श्रेष्ठ मानते थे। उनका विचार था कि श्रम और पूंजी में वैवाहिक संबंध जैसा सामंजस्य होना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने पूंजीपतियों को सलाह दी कि वे अपने धन को जनता की धरोहर समझें और मजदूरों को सलाह दी कि वे अपना कार्य सुचारु रूप से करते हुए देश का नव-निर्माण करें।

गांधी जी ने कहा है कि–"यदि सब अपनी रोटी के लिए खुद मेहनत करें, तो ऊंच-नीच का भेद दूर हो जाए और फिर जो धनी वर्ग रह जायेगा, वह अपने को मालिक न मानकर उस धन का केवल रक्षक या ट्रस्टी मानेगा तथा उसका उपयोग मुख्यतः लोक सेवा के लिए करेगा। मजदूरी न करने वाले को खाने का क्या अधिकार हो सकता है।"

आज की स्थिति तो यह है कि जिसके पास जितना ही अधिक पैसा है वह उतना ही बड़ा शोषक है। आज रुपये की आर्थिक व्यवस्था मनुष्य को अंधा बनाकर उसे असत्य, शोषण और हिंसा की ओर ले जा रही है और झूठ फरेब तथा ठगी का बाजार गर्म करती है। आज धन का महत्व जो बढ़ा हुआ है, उसका कारण यही है कि वह विनिमय का माध्यम बनाया हुआ है अन्यथा वह मनुष्य की रोजमर्रा की किसी जरूरत को पूरा नहीं करता। इसलिए धन का महत्व कम करने के लिए उसकी जगह श्रम को माध्यम बनाया जाना चाहिए। वह श्रम ऐसा होना चाहिए जिससे सब परिचित हों, जिसके परिमाण का हिसाब आसानी से लगाया जा सके। ऐसे श्रम का स्थूल रूप कोई जीवनोपयोगी वस्तु ही हो सकती है। कहां किस वस्तु को प्राथमिकता दी जाए, यह देश काल का विचार करके निश्चित किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में गांधी जी ने कहा है कि "धातु के सिक्के या कागज के नोट मूल्य का सच्चा माप नहीं है, क्योंकि उनकी कीमत कृत्रिम है। फिर भी बड़े पैमाने पर व्यापार करने के लिए यह माप आवश्यक है। ग्रामोद्योग के पीछे उल्टी कल्पना है। हम बड़े पैमाने का व्यवहार नहीं चाहते, हम देहात की स्वतंत्रता एवं स्वावलम्बन चाहते हैं। देहातों में पारस्परिक व्यवहार के लिए धातु की या अन्य किसी कृत्रिम माप की आवश्यकता नहीं हो सकती। हमारा माप तो कोई ऐसी देहाती चीज होनी चाहिए जिसे हर कोई बना सकता है और जिसका दाम हर रोज बदलता नहीं है तथा जिसको आसानी से संग्रह किया जा सकता है। ऐसी वस्तु क्या हो सकती है। साबुन नहीं, तेल नहीं, तरकारी नहीं। इस तरह गिनते गिनते खाली सूत रह जाता है, उसे सब उत्पन्न कर सकते हैं, उसकी हमेशा जरूरत रहती है। अगर सूत माप हम देहात में दाखिल कर सकें तो देहात की बहुत उन्नति कर सकेंगे और शीघ्रता से स्वावलम्बी बन सकेंगे।

इस योजना में प्रत्येक घर टकसाल बन सकता है और जितने चाहिए उतने पैसा बना सकता है। साफ है कि ऐसी दुकानों में मादक पदार्थ विदेशी पदार्थ, नुकसान कारक पदार्थ आदि नहीं बिक सकते। इस तरह इसका सम्बन्ध पवित्र होगा।"

निश्चित ही यह प्रयोग अव्यावहारिक नहीं, सम्भव है। थोड़ा प्रयत्न करने पर इसमें बहुत बड़ी सफलता मिल सकती है और यह ग्रामीण विकास का आधार बन सकता है।

3. औद्योगीकरण और मशीनीकरण :

गांधी जी कुटीर उद्योगों के समर्थक थे। किन्तु जहां श्रमिकों की कमी हो वहां तो औद्योगीकरण के पक्षधर थे। उनका विचार था कि औद्योगीकरण अनेक बुराइयों, यांत्रिक दासता और अनैतिक कार्यो का वृहत भंडार है, जिससे मानव को यथासंभव बचना चाहिए। गांधी जी का कहना था कि "मैं ऐसी मशीन का स्वागत करूंगा जो झोपड़ों में रहने वाले करोड़ों मनुष्यों के बोझ को हल्का करती है। करोड़ों सजीव मनुष्यों के मुकाबले जो भारत के सात लाख गांवों में है, निर्जीव मशीनों को स्थान नहीं दिया जा सकता।"

गांधी जी श्रम को पूंजी से श्रेष्ठ मानते थे उनका विचार था कि श्रम और पूंजी में वैवाहिक संबंध जैसा सामंजस्य होना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने पूंजीपतियों को सलाह दी कि वे अपने धन को जनता की धरोहर समझें और मजदूरों को सलाह दी कि वे अपना कार्य सुचारु रूप से करते हुए देश का नव-निर्माण करें।

किन्तु आज स्थिति यह है कि यंत्रोद्योग का इतना विकास हो गया है कि उसमें कई दोष होते हुए भी उससे पूरे तौर पर बचा नहीं जा सकता, एक सीमा तक तो मशीनों को रखना ही होगा। फिर भी उन्हें उतना ही अपनाया जाए, जितना अनिवार्य हो। यंत्रोद्योग का प्रारंभ और विकास पश्चिमी देशों में हुआ था, जहां मानव-श्रम की कमी थी। अब तो आधुनिक तकनीकी ने वहां भी बेकारी की समस्या उत्पन्न कर दी है। भारत जैसे देश में तो आबादी घनी होने से यहां समस्या मानव श्रम को कम करने की है ही नहीं, यहां तो सब लोगों को काम देने का प्रश्न है। अपने देश में तो खाने वाले मुंह और काम करने वाले हाथ बढ़ते ही जा रहे हैं। इसलिए अपने देश में ग्रामोद्योग पद्धति को ही प्रधानता मिलनी चाहिए। हां, उसके साथ ऐसी उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों को काम में लाया जाए कि लोगों को बहुत थकाने वाले या अरुचिकर कार्य न करने पड़े। बल्कि हमारी अर्थ व्यवस्था ग्रामोद्योग प्रधान हो, बड़े-बड़े यंत्रोद्योग उसी सीमा तक चलाए जाएं, जब और जहां तक वे बहुत ही आवश्यक हों। ये यंत्रोद्योग ग्रामोद्योग के प्रतिद्वंद्वी न होकर उनके पूरक हों।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधी जी मशीनीकरण के विरोधी नहीं थे बल्कि मशीनीकरण को महत्व देते हुए कहते थे, "मशीन अपना महत्व रखती है, वह तो संसार में ठहरेगी ही। परन्तु इसका उपयोग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह मानव श्रम को हटाकर उसका स्थान स्वयं ग्रहण कर ले। मैं मशीनरी का विरोध नहीं करता, मैं तो मशीनरी के उत्पाद का विरोध करता हूं। मेरा उद्देश्य मशीनों को हटाना नहीं, अपितु उन्हें सीमित करना है। मेरा सर्वोपरि विचार मनुष्य की भलाई में है।" इस प्रकार गांधी जी मशीनों के विरोधी नहीं थे लेकिन उनका उपयोग सीमित रूप में करने के पक्षधर थे।

4. विकेन्द्रीकरण :

गांधी जी का विचार था कि विकास के लिए आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण हो। इसी आधार पर वे नव-भारत का निर्माण करना चाहते थे। उनका विचार था कि, "यदि भारत अहिंसात्मक मार्ग पर चलना चाहता है तो मेरे सुझाव में उसे बहुत-सी चीजों को विकेन्द्रित करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण को न तो अधिकतम समय तक ठहरने देना ठीक है और न ही उपयुक्त बल के अभाव में उसकी रक्षा करनी ही ठीक है। झोपड़ी जिसमें चोरी के लिए कोई वस्तु ही नहीं होती, पुलिस की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं समझते।"

गांधी जी का कहना था कि "मैं ऐसी मशीन का स्वागत करूंगा जो झोपड़ों में रहने वाले करोड़ों मनुष्यों के बोझ को हल्का करती है। करोड़ों सजीव मनुष्यों के मुकाबले जो भारत के सात लाख गांवों में हैं, निर्जीव मशीनों को स्थान नहीं दिया जा सकता।"

गांधी जी का विचार था कि केन्द्रीकरण से ही युद्धों और हिंसा को बल मिलता है। अतः अहिंसात्मक प्रणाली के सम्यक विकास हेतु केन्द्रीकरण त्यागना अपरिहार्य है।

जबकि आज स्थिति यह है कि चाहे कोई भी क्षेत्र हो, केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ही पनप रही है, जिसके चलते चोरी, भ्रष्टाचार, अराजकता, अनैतिकता आदि की वृद्धि हो रही है, जो देश के विकास में बाधक है।

आज यह निर्विवाद है कि जितना अधिक मानव अपनी मूल-भूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम से कम स्वावलम्वी और अधिकाधिक परावलम्बी होगा, खाने-पहनने के मामले में वह किसी केन्द्रीय सत्ता या साधन पर अवलम्बित होगा, वह अधिकाधिक शोषण का शिकार होगा। अर्थ, सत्ता और साधनों के इस केन्द्रीकरण से असमानता बढ़ेगी तथा उस केन्द्रीकरण तथा उससे उत्पन्न विषमता की रक्षा के लिए अधिकाधिक हिंसा की शक्तियों के युद्ध दैत्य को खुलकर खेलने के अवसर बढ़ते जाएंगे और इस तरह देश का विकास बाधित होगा।

5. आर्थिक समानता :

गांधी जी सबको समान पारिश्रमिक देने के हिमायती थे। उनका विचार था कि वकील, डाक्टर और अध्यापक सफाई कर्मचारी से अधिक पारिश्रमिक पाने के अधिकारी नहीं है। किसी राष्ट्र अथवा विश्व को श्रम विभाजन ही ऊंचा उठाता है। सच्ची सभ्यता अथवा प्रसन्नता हेतु इससे अधिक सम्मानित मार्ग कोई नहीं हो सकेगा। उनका विचार था कि यदि सबको समान पारिश्रमिक देने की स्थिति पैदा कर दी जाए तो प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व लगन और कौशल से सम्पन्न करेगा जिससे समाज का उत्थान होगा और राष्ट्र की कीर्ति बढ़ेगी।

गांधी जी ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, "धनी के घर उसके लिए अनावश्यक चीजें पड़ी रहती हैं, मारी-मारी फिरती हैं, खराब होती रहती हैं, जबकि दूसरी तरफ उसके अभाव में करोड़ों मनुष्य भटकते फिरते हैं, भूखों मरते हैं, जाड़े से ठिठुरते हैं। यदि सब लोग अपनी आवश्कयता भर को ही संग्रह करें तो किसी को तंगी न हो और सबको संतोष हो।"

आर्थिक समानता से गांधी जी का मतलब यह नहीं था कि सबको समान वेतन दिया जाए बल्कि उनका तात्पर्य यह था कि सबको उतना वेतन अवश्य मिले जितने से उसका भरण पोषण हो सके। उन्होंने कहा भी है कि, "आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नहीं है कि हरेक को शब्दशः एक ही रकम दी जाए। उसका सीधा मतलब यह है कि हरेक को उसकी जरूरत की रकम मिलनी चाहिए। मगर कोई अकेला आदमी, एक औरत और चार बच्चों वाले आदमी के बराबर मांग करता है तो इसको आर्थिक समानता का भंग कहा जायेगा।"

किन्तु ठीक इसके विपरीत आज अपने देश में स्पष्ट आर्थिक विषमता देखने को मिलती है। इस आर्थिक विषमता के चलते आज समाज में कुछ लोग बहुत अधिक धनवान और कुछ बहुत अधिक दरिद्र हो गए हैं, जिसके चलते भुखमरी और कुपोषण में वृद्धि हुई है तथा नैतिक पतन होता जा रहा है। आज धनवान

और धनी होते जा रहे हैं, और गरीब और गरीब। आज यह स्थिति है कि एक तरफ तो गरीब दाने-दाने को तरस रहा है दूसरी तरफ धनवानों के कुत्ते तक दूध-भात खा रहे हैं। गांधी जी ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा कि, "धनी के घर उसके लिए अनावश्यक चीजें पड़ी रहती हैं, मारी मारी फिरती हैं, खराब होती रहती हैं, जबकि दूसरी तरफ उसके अभाव में करोड़ों मनुष्य भटकते फिरते हैं, भूखों मरते हैं, जाड़े से ठिठुरते हैं। यदि सब लोग अपनी आवश्यकता भर को ही संग्रह करें तो किसी को तंगी न हो और सबको संतोष हो।" किन्तु आज विडम्बना यह है कि सभी स्वार्थी हो गए हैं जिसके पास है, वह और अधिक चाहता है।

यहां एक बात दृष्टव्य है कि जब गांधी जी ने आर्थिक समानता संबंधी उपर्युक्त बातें कहीं थी तो उनका दृष्टिकोण व्यवस्था का था, सत्ता का नहीं। लेकिन उनकी यह चाह थी कि जब भारत में अपना राज हो तो उसमें पारिश्रमिक की व्यवस्था ऐसी बने जो समाजवाद का प्रतीक हो। दुख है कि वेतनमानों और आमदनियों की आज जो व्यवस्था है उसमें अंतर काफी अधिक है।

आज हम इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि देश में विषमता की बहुत बड़ी खाई है। भारत में दुनिया के सबसे बड़े धनी भी हैं और सबसे बड़े गरीब भी हैं। हमारी जनसंख्या का चालीस प्रतिशत भाग गरीबी की रेखा से नीचे गुजर बसर कर रहा है और जब तक उत्पादन तथा आवश्यकता का मेलजोल नहीं बैठता तब तक हमारी गरीबी नहीं मिट सकती।

अल्पविकास और असमानता हमारी दो बाधाएं हैं, जिनसे

गांधी जी के समाजवाद का मूल्य आधार गरीब भारत के साथ साधारणीकरण और तादात्म्य स्थापित करना ही था। इसीलिए गांधी जी ने गरीबी को ओढ़ लिया था, उसे वरण किया था तभी दरिद्र उनकी दृष्टि में नारायण था।

हमें जूझना है। विदेशी कर्जों के बोझ से हम दबते जा रहे हैं, अतः इससे हमें बचना होगा और हमें आत्म-निर्भर होना होगा। आज देश संक्रमण काल की स्थिति से गुजर रहा है। हममें दायित्व बोध का अभाव है। राष्ट्रीय चरित्र की बेहद कमी है। नेतृत्व में रचनात्मक शक्ति की कमी है। इन सबके लिए आखिरी इलाज गांधीवाद ही है। जब तक हम अपनी गलतियां नहीं महसूस करेंगे और लौट कर सही रास्ते को नहीं पकड़ेंगे, भटकते ही रह जायेंगे।

गांधी जी के समाजवाद का मुख्य आधार गरीब भारत के साथ साधारणीकरण और तादात्मय स्थापित करना ही था। इसीलिए गांधी जी ने गरीबी को ओढ़ लिया था, उसे वरण किया था तभी दरिद्र उनकी दृष्टि में नारायण था। क्या हमने ऐसा किया है?

गांधी जी ने कहा था कि "आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है जगत के सब मनुष्यों के पास एक समान सम्पत्ति का होना यानी सबके पास इतनी सम्पत्ति होना जिससे वे अपनी कुदरती आवश्कताएं पूरी कर सकें।" किन्तु क्या ऐसा संभव हो पाया है।

आवश्यकता आज इस बात की है कि हम अपनी भूलों की मजार पर एक सुनहला महल खड़ा कर सकें और ऐसा तभी संभव है जब हम गांधी जी के बताए हुए रास्ते पर चलें।

प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
महाविद्यालय, दूबे छपरा,
बलिया (उ० प्र०)

सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है।

–महात्मा गांधी

('हिन्दी नवजीवन' 29 जनवरी, 1925)

मैं यह जानना चाहूंगा कि वे डाक्टर और वैज्ञानिक लोग देश के लिए क्या कर रहे हैं? वे हमेशा खास-खास बीमारियों के इलाज के नये-नये तरीके सीखने के लिए विदेशों में जाने के लिए तैयार दिखाई देते हैं। मेरी सलाह है कि वे हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों की तरफ ध्यान दें। ऐसा करने पर उन्हें जल्दी ही मालूम हो जायेगा कि डाक्टरी की डिग्रियां लिये हुए सारे मर्द और औरतों की, पश्चिमी नहीं बल्कि पूर्वी ढंग पर, ग्रामसेवा के काम में जरूरत है। तब वे इलाज के बहुत से देशी तरीकों को अपना लेंगे। जब हिन्दुस्तान के गांवों में ही कई तरह की जड़ी-बूटियों और दवाइयों का अखूट भण्डार मौजूद है, तब उसे पश्चिमी देशों से दवाइयां मंगाने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन दवाइयों से भी ज्यादा इन डाक्टरों को जीने का सही तरीका गांववालों को सिखाना होगा।

–महात्मा गांधी

('हरिजन सेवक', 15 जुलाई 1947)

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/94
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/94
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

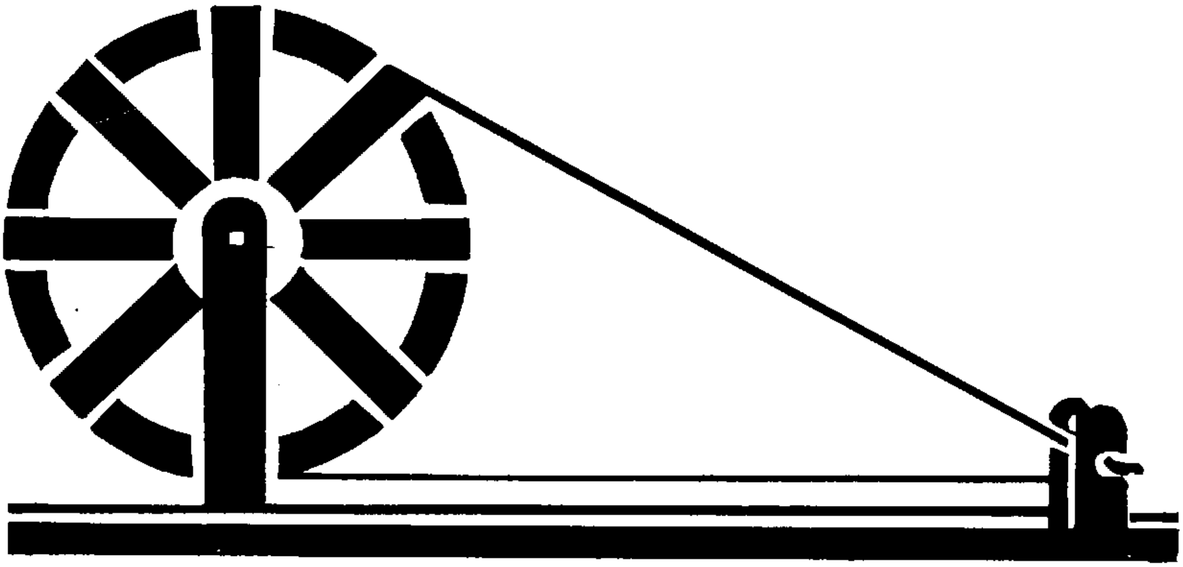

यदि भारत की दिनों दिन बढ़ती गरीबी की समस्या को कोई चीज हल कर सकती है तो वह केवल चरखा ही है।

--महात्मा गांधी

(सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड-26, पृष्ठ 288)

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित